पुरानी दुनिया

संपादक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
(सुधा-संपादक)

ऐतिहासिक अन्य ग्रंथ-रत्न

गंगा-पुस्तकमाला का १४१वाँ पुष्प

पुरानी दुनिया

[८ चित्रों-सहित]

लेखक

श्रीरामचंद्र वर्मा

[भूकंप, भारतीय स्त्रियाँ आदि के रचयिता]

मिलने का पता—

गंगा-ग्रंथागार

३६ लाटूश रोड

लखनऊ

सजिल्द [illegible] सं० १९९१ वि० [सादी १)]

भूमिका

इस ग्रंथ में संसार के प्राचीन कालों और निवासियों के संबंध की मुख्य-मुख्य बातें बहुत ही सरल रूप में बतलाने का प्रयत्न किया गया है। इसके लिखने का ढंग ऐसा रक्खा गया है कि सामरिक और राजनीतिक विवरण तो जहाँ तक हो सका है, बहुत ही कम दिए गए हैं; और विशेषतः यही बतलाने का प्रयत्न किया गया है कि प्राचीन काल के निवासियों की क्या-क्या विशेषताएँ थीं, उनकी संस्कृति कैसी थी, और हम लोगों पर उनका जो ऋण है, उसका स्वरूप कैसा है। यह पुस्तक विशेष रूप से ऐसे लोगों के लिये लिखी गई है, जो प्राचीन इतिहास का अध्ययन आरंभ करना चाहते और यह जानना चाहते हैं कि संसार की सभ्यता के निर्माण में प्राचीन जातियों ने क्या सहायता की थी। यद्यपि यह कहानी बहुत ही सीधी-सादी भाषा में कही गई है, और इसमें केवल मोटी-मोटी बातें बतलाई गई हैं, तो भी मैं आशा करता हूँ, इसमें जो विवरण दिए गए हैं, वे लोगों को बहुत ही ठीक और प्रामाणिक मिलेंगे, और वे समझ लेंगे कि इसमें मानव-जीवन के भिन्न-भिन्न अंगों के संबंध में जो बातें कही गई हैं, वे न कहीं बहुत ज़्यादा हैं और न बहुत कम।

लेखक

विषय-सूची

पुरानी दुनिया

तूताखामेन की कुरसी

पुरानी दुनिया

पहला भाग

प्राचीन पूर्व

१. बैबिलोन का साम्राज्य

हम लोग यह नहीं जानते कि संसार के किस भाग अथवा किन भागों में पहलेपहल मनुष्यों का निवास था। हाँ, इतना हम अवश्य जानते हैं कि उनकी जीवनचर्या पशुओं से कुछ ही अच्छी रही होगी। हमें आदिम निवासियों की और कोई वस्तु तो मिलती नहीं, केवल कहीं उनकी खोपड़ी और कहीं हड्डी पड़ी हुई मिलती है, और उसी से हम लोग अनुमान कर सकते हैं कि वे लोग कैसे थे।

धीरे-धीरे मनुष्य अधिक चतुर और कार्य-कुशल होते गए। उन्होंने आग जलाना सीखा, पत्थरों के टुकड़ों को एक दूसरे से रगड़कर कुल्हाड़ी और भाले के फलों के आकार के हथियार बनाने आरंभ किए, और उन्हें लकड़ी के दस्तों पर जड़ना शुरू किया। इन सब हथियारों का प्रयोग वे लोग लड़ाई और शिकार आदि में करते थे। यह काल प्रस्तर-युग कहलाता है, और हज़ारों वर्षों तक चलता रहा। पर सदा से यही बात चली आती है कि मनुष्य दिन-पर-दिन अधिक चतुर होता गया, और उसका पशुत्व दिन-पर-दिन घटता और मनुष्यत्व दिन-पर-दिन बढ़ता गया। इसके

कुछ और आगे चलकर हम यह देखते हैं कि उन्होंने चट्टानों पर और गुफाओं में चिह्न तथा चित्र आदि अंकित करना और खोदना सीखा। इस काल के उपरांत वे बहुत ही जल्दी-जल्दी उन्नति करने लगे, और शीघ्र ही ऐसी अवस्था में पहुँच गए कि हम कह सकते हैं कि वे सभ्य हो गए। अब उन लोगों ने जंगलियों की तरह जीवन-निर्वाह करना छोड़ दिया, और उनके यहाँ शासन-प्रणालियाँ, नियम और विधान आदि स्थापित हो गए, उनमें तरह-तरह के शिल्पों का प्रचार हुआ, और परस्पर नियमित रूप से संबंध और व्यवहार होने लगे। अब वे लोग सुप्रतिष्ठित 'समाज' में अर्थात् आपस में एक दूसरे के साथ मिलकर रहने लगे।

एशिया की ओर तो मनुष्य सभ्यता की इस अवस्था तक बहुत जल्दी पहुँच गए, पर योरप में अपेक्षाकृत अधिक देर से पहुँचे। यही कारण है कि सभ्य मनुष्यों का इतिहास एशिया से ही आरंभ होता है। जिस स्थान से यह इतिहास आरंभ होता है, उस स्थान पर, हम देखते हैं, मनुष्य पहले से ही तीन बड़े-बड़े विभागों में विभक्त थे। वे विभाग सेमिटिक, हैमिटिक और आर्य अथवा इंडो-योरपियन कहलाते हैं। बाइबिल में ये लोग क्रम से शेम, हैम और जेफेथ की संतान कहे गए हैं। पूर्व में और आगे बढ़ने पर अर्थात् चीन में इसी प्रकार के और भी बड़े-बड़े विभाग या दल थे। पर जहाँ तक हम जानते हैं, पूर्वीय एशिया के निवासियों का उस समय पश्चिमी एशिया के निवासियों के साथ कोई संबंध नहीं स्थापित हुआ था। उनमें जो संबंध स्थापित हुआ था, वह इसके हज़ारों वर्ष बाद हुआ था। इस पुस्तक में उन्हीं तीनों विभागों का वर्णन है, जिनके नाम ऊपर दिए गए हैं। पहले विभाग से वे लोग निकले, जो बैबिलोनियन, असीरियन और हिब्रू कहलाते हैं। दूसरे विभाग से मिस्र के आदिम निवासी निकले,

और तीसरे विभाग से वे लोग निकले, जिनकी संतान आजकल एक ओर तो सारे योरप में फैली हुई है, और दूसरी ओर फ़ारस तथा भारत में बसती है। जिस समय से हमारा इतिहास आरंभ होता है, उस समय इन विभागों के लोग किसी एक स्थान पर या एक देश में जमकर नहीं बसे थे, बल्कि संसार के भिन्न-भिन्न भागों में रहते थे। सेमाइट लोग अरब में बसे हुए थे, हेमाइटों ने आफ़्रिका को अपना निवास-स्थान बनाया था, और इंडो योरपियन लोग कैस्पियन समुद्र के चारों ओर फैले हुए थे। अब तक इन लोगों में से अनेक नई-नई शाखाएँ निकलती हैं, और इनके नए-नए विभाग बनते हैं, जो अपनी जन-संख्या के दिन-पर-दिन बढ़ते रहने के कारण भोजन और निवास-स्थान आदि की तलाश में भिन्न-भिन्न दिशाओं में हटते-बढ़ते रहते हैं, और संसार के भिन्न-भिन्न भागों में जिस स्थान पर उन्हें अपनी आवश्यक वस्तुएँ मिलती हैं, उस स्थान पर वे अंत में बस जाते हैं।

परंतु पूर्व* में रहनेवाले लोग संस्कृति और सभ्यता आदि में सबसे आगे बढ़ गए थे, और पूर्व के एक विशिष्ट भाग में सभ्यता का सबसे अधिक शीघ्रता से विकास हुआ था। यदि हम उत्तर से दक्षिण की ओर ऐसी दो सीधी रेखाएँ खींचें, जिनमें से एक तो एशिया माइनर के तट और मिस्र की पश्चिमी सीमा पर से होती हुई जाय, और दूसरी कैस्पियन समुद्र के पूर्वी तट से होती

---

* आजकल पश्चिम ही सभ्यता और विद्या का केंद्र हो रहा है, इसलिये योरप के लेखक अपने देश में बैठकर भौगोलिक दृष्टि से एशिया को 'पूर्व' कहते हैं। पर जिसे योरपवाले 'निकट पूर्व' कहते हैं, वह हम लोगों की दृष्टि से निकट पश्चिम और फ़्रांस, जरमनी तथा इँगलैंड आदि 'सुदूर पश्चिम' कहे जाने चाहिए।

हुई फ़ारस की खाड़ी के निम्न भाग तक जाय, और पूर्व से पश्चिम की ओर दो ऐसी सीधी रेखाएँ खींचें, जो पहलेवाली दोनो रेखाओं से मिलती हों, और उनमें से एक रेखा तो बालकन-पर्वत से होती हुई कैस्पियन समुद्र के ऊपरी भाग तक जाय, और दूसरी लाल समुद्र के दक्षिणी भाग से होती हुई अरब के दक्षिणी तट तक जाय, तो हमको एक प्रकार का चौकोर क्षेत्र-सा मिलेगा। यही चौकोर क्षेत्र (योरपीय दृष्टिकोण से) 'निकट पूर्व' कहलाता है, और एशिया के इसी भाग में सबसे पहले बहुत बड़ी-बड़ी सभ्यताओं और संस्कृतियों का उत्थान हुआ था।

यदि हम इस क्षेत्र में और भी अधिक ध्यान से देखें, तो हमें सभ्यता के कुछ विशिष्ट केंद्र भी मिल जायँगे। यदि हम निकट पूर्व का मान-चित्र देखें, तो हमें एक अर्द्धचंद्राकार मेखला या पट्टा-सा मिलेगा। यह मेखला फ़ारस की खाड़ी के ऊपरी भाग से आरंभ होती है, और उत्तर की ओर बढ़ती हुई टाइग्रिस-नदी के उद्गम के पास तक चली जाती है। वहाँ से वह पश्चिम की तरफ़ मुड़कर यूफ़्रेटीस या फ़रात-नदी तक पहुँचती है, और तब वहाँ से दक्षिण की ओर मुड़कर सीरिया और पैलेस्टाइन में से होती हुई सिनाई के रेगिस्तान तक चली जाती है। यह अर्द्धचंद्राकार पट्टा या मेखला बहुत ही उप-जाऊ भूमि की है, और पूर्व की समस्त आरंभिक सभ्यताओं का आरंभ तथा विकास इसी स्थान से हुआ है।

इस मेखला में दो बड़े और बहुत उपजाऊ मैदान हैं, और वे दोनो इसके दोनो सिरों पर हैं। इनमें से एक मैदान तो मिस्र में है, और दूसरा टाइग्रिस तथा यूफ़्रेटिस-नदियों के मुहानों के पास है। यह दूसरा मैदान किसी समय शिनार का मैदान कहलाता था। इसके बाद यह बैबिलोनिया कहलाने लगा, और आजकल लोग प्रायः इसे मेसोपोटामिया कहते हैं, जिसका अर्थ है नदियों के

बीच का प्रदेश। इस मेखला के शेष भागों में भी मैदान हैं; पर या तो वे उतने अधिक उपजाऊ नहीं हैं, और या उनमें बीच-बीच में पहाड़ियाँ और तराइयाँ आदि पड़ती हैं, जिनके कारण हम उन्हें मैदान कह ही नहीं सकते। पर ऊपर जिन दो मैदानों का हमने ज़िक्र किया है, वे बहुत बड़े और उपजाऊ हैं। उनमें सिंचाई आदि के लिये नदियाँ भी यथेष्ट हैं, और वे इस योग्य भी हैं कि उनमें बहुत-से लोग एक साथ मिलकर सुख से रह सकें, और सब प्रकार की उन्नति कर सकें।

पर एक बात और है। इस मेखला में रहनेवालों पर भीतरी और बाहरी दोनो ही प्रकार की बहुत-सी विपत्तियाँ भी आ सकती हैं। सबसे पहली बात तो यह है कि वे आपस में ही बहुत कुछ लड़-झगड़ सकते हैं; और विशेषतः दोनो बड़े-बड़े मैदानों के निवासी एक दूसरे के साथ बहुत कुछ ईर्ष्या-द्वेष भी कर सकते हैं। व्यापारियों के दलों के आने-जाने का मार्ग भी इसी मेखला पर से होकर है, क्योंकि इसके दोनो ओर या तो पहाड़ हैं या रेगिस्तान; और उनमें से होकर यात्रियों आदि का आना-जाना बहुत ही कठिन है। इसलिये इन दोनो ही स्थानों के निवासी, जहाँ तक हो सकेगा, इस मेखला के अधिकांश भाग को अपने अधिकार में रखने और उससे लाभ उठाने का प्रयत्न करेंगे। इस प्रकार अधिकार-प्राप्ति के लिये वे आपस में लड़-भिड़ भी सकते हैं।

इसके सिवा यहाँ के निवासियों पर बाहर से भी विपत्तियों के आने की संभावना होती है। इस मेखला के किनारों पर समुद्र, पर्वत और रेगिस्तान हैं, और इनमें से हरएक के कारण इनके निवासियों पर आपत्तियाँ आ सकती हैं। इस प्रकार की विपत्तियों पर हम यहाँ संक्षेप में अपने कुछ विचार प्रकट कर देना चाहते हैं।

(क) समुद्र की ओर से तो कोई बहुत बड़ी विपत्ति आने

की विशेष संभावना नहीं थी। प्राचीन काल में जहाज़ बहुत ही छोटे-छोटे होते थे, और उन पर बड़ी-बड़ी सेनाएँ नहीं जा सकती थीं। फिर प्राचीन काल में दिग्दर्शक यंत्र भी नहीं होते थे, इसलिये नाविक लोग बड़े-बड़े समुद्रों को पार करने और अपने तट से समुद्र में बहुत अधिक दूर जाने का साहस भी नहीं कर सकते थे। अतः यदि कोई शत्रु पश्चिम की ओर से इस मेखला पर चढ़ाई करता, तो उसे स्थल के मार्ग से यहाँ आना पड़ता। पर वस्तुतः इस मेखला के पश्चिम में बहुत दिनों तक कोई ऐसी बड़ी शक्ति ही नहीं उत्पन्न हुई, जो इस पर आक्रमण कर सकती। यदि ऐसी कोई शक्ति उत्पन्न हुई थी, तो वह विजयी सिकंदर की थी, और उसका समय ईस्वी चौथी शताब्दी का दूसरा चरण है।

(ख) एशिया माइनर से लेकर एलम (फ़ारस की खाड़ी के सिरे का पूर्वी भाग) तक इस मेखला के ऊपरी भाग में पहाड़ और ऊँची-ऊँची अधित्यकाएँ हैं। इन स्थानों पर बहुत आरंभिक काल से ही इंडो-योरपियन वर्गों का निवास था। इन वर्गों के संबंध में यही समझा जाता है कि ये दक्षिणी रूस और कैस्पियन समुद्र के आस-पास के प्रांतों से यहाँ आए थे। इन वर्गों में पुरुषों, स्त्रियों और बालकों के बहुत बड़े-बड़े दल होते थे, जो बराबर भोजन और निवास-स्थान की चिंता में इधर-उधर घूमा करते थे; और जब दक्षिणी रूस से इस प्रकार के और नए दल आते थे, तब पहले के दलों के लोग और आगे बढ़ते चलते थे। इनमें से कुछ दल बहुत पहले ही एलम में बस गए थे। इसके उपरांत जो और दल आए, उन्होंने एशिया माइनर और आरमेनिया में अपने राज्य स्थापित किए। इन सब लोगों का समूह एक ऐसी बड़ी लहर के समान था, जो इस उपजाऊ मेखला पर सदा फैलने का प्रयत्न करती रहती थी। बारी-बारी से बैबिलोनिया, असी-

रिया और खाल्डिया के साम्राज्यों का जो अंत हुआ था, वह इसी प्रकार से।

(ग) मिस्र के दक्षिण और पश्चिम में आफ्रिका के रेगिस्तान थे, जहाँ से रेगिस्तानी वर्गों के लोग नील-नदी के तट पर रहनेवाले लोगों पर आक्रमण कर सकते थे। उधर मेखला की गोद में अरब का बड़ा रेगिस्तान पड़ता था, जहाँ सेमिटिक वर्गों के लोग बराबर इधर-उधर घूमते रहते थे। वे लोग ख़ानाबदोश या बद्दू कहलाते हैं, जिसका अर्थ है बराबर इधर-उधर घूमते रहनेवाले लोग। वे लोग स्वयं अपने लिये जल और भोजन तथा अपने पशुओं के लिये घास आदि की तलाश में एक शाद्वल से दूसरे शाद्वल में घूमा करते थे। साधारणतः उन लोगों की बहुत ही छोटी-छोटी टुकड़ियाँ हुआ करती थीं, क्योंकि रेगिस्तान में कहीं किसी एक स्थान पर इतने अधिक मनुष्यों के लिये भोजन आदि नहीं होता। बीच-बीच में ऐसा भी होता था कि क्षुधा की निवृत्ति के लिये अथवा सभ्य जीवन के सुख-भोग की लालसा से ये लोग बहुत बड़े-बड़े दल बाँधकर इस उपजाऊ भूमि पर टूट पड़ते थे। मिस्र पर तो इस प्रकार के आक्रमण कई बार हुए थे। बैबिलोनिया, असीरिया और खाल्डिया के साम्राज्य तथा फ़िनीशियन, सीरियन और हिब्रू राज्य इसी प्रकार स्थापित हुए थे।

निकट पूर्व या पश्चिमी एशिया के प्राचीन इतिहास में मुख्यतः यही बात देखने में आती है कि इस उपजाऊ मेखला के निवासियों पर रेगिस्तानों, पहाड़ों और समुद्रों का ही विशेष प्रभाव पड़ा था, और इन्हीं के कारण उनमें अनेक प्रकार के परिवर्तन होते रहते थे। अब ज़रा इतिहास के संबंध की कुछ बातें लीजिए।

ईसा से प्रायः पाँच हज़ार वर्ष पूर्व की बात है कि एक जाति के लोग, जो सुमेरियन कहलाते हैं (संभवतः मध्य एशिया से), आकर

शिनार के मैदान में और विशेषतः उसके दक्षिणी भाग में, जो सुमेर कहलाता था, बस गए थे। इस मैदान का उत्तरी भाग अक्कद कहलाता है (उसका यह नाम या तो उसी समय पड़ा था, या, संभव है, पहले से भी रहा हो)। अभी तक इस बात का पता नहीं चला है कि सुमेर में आकर बसने से पहले वे लोग कहाँ तक सभ्य थे। पर सुमेर में जिस समय उन लोगों का पहले-पहल पता चलता है, उस समय उन लोगों ने वहाँ कई बड़े-बड़े नगर-राज्य स्थापित कर लिए थे, जिनके प्रधान अधिकारी और शासक उनके धर्म-पुरोहित हुआ करते थे। वे लोग सदा आपस में एक दूसरे से लड़ा करते थे। हमें यह भी पता चलता है कि वे लोग बहुत बड़े व्यापारी होते थे। वे बाहर से और बहुत-सी चीज़ें तो अपने यहाँ लाया ही करते थे, और शायद सिनाई या एशिया माइनर से बहुत-सा ताँबा भी लाया करते थे। उन्होंने ज़मीन को जोतना और सींचना, पत्थरों को काटना और उनमें नक़्क़ाशी करना और धातुओं की चीज़ें तैयार करना सीखा था। उन्होंने लेखन-कला का भी ज्ञान प्राप्त किया था। उनके पास किसी प्रकार का काग़ज़ तो होता नहीं था, पर वे गीली मुलायम मिट्टी के चौकोर टुकड़ों पर एक प्रकार की नुकीली क़लम से गावदुम चिह्न अंकित करते थे, और तब मिट्टी की उन ईंटों को पकाकर इस रूप में ले आते थे कि उन पर अंकित चिह्न स्थायी हो जाते थे। सुमेरियन लोग समय या काल की गणना भी अच्छी तरह करते थे। वर्ष को उन्होंने बारह मासों में विभक्त किया था, और चांद्र गणना के अनुसार उनके मास अट्ठाइस दिनों के होते थे। पर इस प्रकार की गणना के कारण उनका वर्ष कुछ छोटा पड़ता था, और उसमें सब ऋतुएँ ठीक तरह से नहीं आ सकती थीं, अतः इस त्रुटि की पूर्ति करने के लिये वे बीच-बीच में अपने वर्ष में एक और मास मिला

दिया करते थे। वे गीली मिट्टी की ईंटें बनाकर धूप में सुखा लिया करते थे, और तब उन्हीं ईंटों से मकान बनाकर उनमें रहते थे (मेसोपोटामिया में पत्थर नहीं होता)। इसी प्रकार की ईंटों से वे अपने देवता के मंदिर भी बनाते थे। उनके मंदिरों का आकार ऐसे गुंबद का-सा होता था, जो ऊपर की ओर बराबर पतला होता जाता था *।

ईसा से प्रायः तीन हज़ार वर्ष पहले सेमिटिक वर्ग के कुछ दल रेगिस्तान में से निकल पड़े, और उन्होंने असीरिया (शिनार के मैदान के उत्तर में) और अक्कद पर अधिकार कर लिया। एक बार अक्कद के सारगोन-नामक सरदार की अधीनता में (ईसा से पूर्व लगभग २,०५०) सेमाइट लोगों ने सारे मैदान पर विजय प्राप्त कर ली। ऐसा जान पड़ता है, इसके कुछ दिनों बाद सुमेर और अक्कद ने मिलकर एक ही राजा की अधीनता में एक युग्म राज्य स्थापित किया था। यह राज्य शायद बहुत कुछ उसी तरह का था, जैसा इधर कुछ दिनों तक आस्ट्रिया और हंगरी में था। अर्थात् वे दोनो दो अलग-अलग राज्य थे, और उनकी शासन-प्रणाली और नियम आदि भी एक दूसरे से भिन्न थे, पर उन पर अधिकार एक ही राजा का था। फिर संभवतः एक ऐसा समय आया (ई० पू० २३५०-२१५०), जब एलमवालों ने आकर दोनो दलों पर अधिकार कर लिया। पर सेमाइट लोगों की नई-नई टुकड़ियाँ बराबर आती रहीं, जिससे आक्रमणकारियों की संख्या बढ़ती गई, और

* बहुत-से बड़े-बड़े विद्वान् मेसोपोटामिया के प्राचीन नगरों की खुदाई कर रहे हैं, और सुमरियनों के संबंध में बहुत-सी नई-नई बातों का पता लगा रहे हैं। अतः, संभव है, शीघ्र ही हम लोगों को उनके संबंध में और भी बहुत-सी नई और काम की बातें मालूम हो जायँ।

अंत में यहाँ तक नौबत आई कि एलमवाले वहाँ से भगा दिए गए। सुमेरियन लोगों ने उन पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली, और एक सेमिटिक साम्राज्य की स्थापना की। उस साम्राज्य का केंद्र बैबिलोन में था, और अब यह नगर सारे मैदान में मुख्य और सर्व-प्रधान हो गया था।

पर सुमेरियन लोगों ने जो बातें सीखी या निकाली थीं, उनका सेमाइट लोगों ने नाश नहीं किया था। उन्होंने उन सब बातों को ग्रहण कर लिया, उनका उपयोग किया, और उनमें नए-नए सुधार किए। यों तो वे सुमेरियनों के साथ कई सौ वर्षों तक बराबर लड़ते-झगड़ते रहे, पर साथ ही वे उनसे बहुत-सी बातें सीखते भी रहे। वे भी धूप में सुखाई हुई ईंटों के मकान आदि बनाने लगे, गावदुम अक्षर लिखने लगे, पत्थरों पर नकाशी करने और मूर्तियाँ बनाने लगे, और सुमेरियन लोगों के निश्चित किए हुए सिद्धांतों आदि के अनुसार काल तथा दूसरे पदार्थों की गणना और नाप-जोख आदि करने लगे। कुछ समय के उपरांत उन्होंने ताँबे और टीन के योग से काँसा बनाना भी सीख लिया। उन्होंने सुमेरियन लोगों के धर्म की बहुत-सी बातें भी अपने धर्म में सम्मिलित कर लीं, और दोनो के योग से एक नए बड़े धर्म की स्थापना की, जिसमें बहुत-से देवता और बहुत बड़े-बड़े मंदिर होते थे, और बहुत-से ऐसे पुरोहित भी होते थे, जिनका समाज तथा राज्य पर बहुत कुछ अधिकार तथा प्रभाव होता था। वे लक्षणों और शकुनों आदि की सहायता से देवताओं की इच्छाएँ जानने का भी ढोंग रचने लगे। पक्षियों के उड़ने आदि से वे अनेक प्रकार के अनुमान करते थे, और अपने देवताओं के आगे बलि भी चढ़ाते थे। अपने मंदिरों में उन्होंने विद्यालय भी स्थापित किए थे। उन्होंने व्यापार-संबंधी भी बहुत-सी नई बातें

निकाली थीं। इस प्रकार उनकी कृपा से निकट पूर्व में बैबिलोन व्यापार का एक बहुत बड़ा केंद्र बन गया।

बैबिलोन के शासकों में सबसे अधिक प्रसिद्ध हम्मूरबी है, जिसका समय ईसा से प्रायः २१०० वर्ष पूर्व माना जाता है। उसने अपने राज्य के लिये बहुत-से नए नियम और क़ानून बनाए थे, और वे सब नियम आदि पत्थर के एक खंभे पर खुदवा दिए थे। वह खंभा भी मिल गया है, और अब विद्वान् लोग हम्मूरबी के बनाए हुए क़ानून आदि पढ़ सकते और यह जान सकते हैं कि उसके समय में न्याय के संबंध में लोगों के कैसे ऊँचे विचार थे (चाहे वे विचार आरंभिक प्रकार के ही क्यों न हों)। पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि अब तक संसार में जितने नियमों और विधानों या धर्मशास्त्रों का पता चला है, उनमें हम्मूरबी के ये नियम आदि सबसे पुराने हैं। यह भी माना जाता है कि हिब्रू लोगों का जो क़ानून 'मूसा का क़ानून' कहलाता है, उस पर भी इन नियमों का बहुत कुछ प्रभाव था, अर्थात् उस क़ानून के बनाने में इन नियमों से बहुत कुछ सहायता मिली थी। मिट्टी की वाटिकाओं पर लिखे हुए हम्मूरबी के पचपन पत्र भी मिले हैं। ये सब पत्र उसने अपने राजकर्मचारियों और अफ़सरों को लिखे थे, और इनमें उन्हें यह बतलाया गया था कि पशुओं के झुंडों आदि की रक्षा किस प्रकार करनी चाहिए, खेतों को सींचनेवाली नहरों की रक्षा किस प्रकार करनी चाहिए, न्याय-पूर्वक और ठीक समय पर कर आदि का संग्रह किस प्रकार होना चाहिए, इत्यादि। इन पत्रों से हमें पता चलता है कि उन दिनों भी किसी राजा या शासक को कितने अधिक काम करने पड़ते थे, और कितनी तरह की बातें उसके सामने विचार और निर्णय आदि करने के लिये आती थीं।

जिन आक्रमणों के कारण सेमाइट लोगों ने असीरिया और बैबिलोनिया पर अधिकार कर लिया था, उनका आरंभ तो ईसा से प्रायः तीन हज़ार वर्ष पूर्व ही हो गया था, पर सेमाइट लोगों को पूर्ण विजय जाकर ई० पू० २१०० के लगभग हुई थी। लगभग इसी समय पूर्व की भाँति पश्चिम की ओर के रेगिस्तान से भी सेमाइट लोगों के नए-नए दल वहाँ आने लग गए थे। इस प्रकार उस उपजाऊ मेखला पर दोनो ओर से आक्रमण हुए थे। अब हम यह बतलाना चाहते हैं कि ये आक्रमणकारी कौन थे।

(१) पहले आक्रमणकारी तो फ़िनीशियन थे, जो सीरिया के तट पर बस गए थे। इन के केंद्र टायर और सिडोन में थे। कुछ दिनों बाद ये लोग संसार के सबसे बड़े नाविक बन गए थे। भूमध्य सागर के पश्चिम में इन लोगों ने प्रायः सभी स्थानों में अपने उपनिवेश स्थापित कर लिए थे, जिनमें से कारथेज सबसे अधिक प्रसिद्ध था। ये लोग जिब्राल्टर के जलडमरूमध्य से निकलकर एक ओर स्पेन, फ्रांस और ब्रिटेन तक और दूसरी ओर आफ्रिका के तटों पर बहुत दूर तक आया करते थे। इन लोगों की एक बहुत बड़ी नाविक या जल-शक्ति बन गई थी। पर एशिया में इन लोगों ने दूसरों के आक्रमणों से अपनी रक्षा करने के सिवा और कुछ भी नहीं किया। इनका मुख्य उद्देश्य युद्ध नहीं, बल्कि व्यापार था। वे अपने जहाज़ों पर पश्चिम के सामान पूर्व में लाते थे, और पूर्व के सामान पश्चिम ले जाते थे। इस प्रकार ये लोग आरंभिक संसार के बनिए या व्यापारी बन गए थे।

(२) आरामी या आरामयिन ई० पू० ३,००० और २५०० के मध्य में आरामियों के कुछ सेमेटिक दल फ़रात-नदी से पैलेस्टाइन में आ-आकर रेगिस्तान के सारे किनारे पर जमा होने लगे,

और जहाँ-जहाँ उन्हें उपयुक्त स्थान तथा अवसर मिला, वहाँ-वहाँ वे अपनी बस्तियाँ बसाकर रहने लगे। आगे चलकर इनमें से कुछ बस्तियों के निवासी विशेष शक्तिशाली हो गए। इनमें से दमिश्कवाली बस्ती का महत्त्व और सब बस्तियों से कहीं अधिक था, और उसका यह महत्त्व बहुत दिनों तक बना रहा। पर उस समय तक (जिस समय का हम वर्णन कर रहे हैं, और जिस समय वे आकर रेगिस्तान के किनारे-किनारे बसे थे।) आरामी लोग बहुत कुछ ख़ानाबदोशी की ही हालत में थे, और उससे आगे नहीं बढ़े थे। तब तक उनमें सभ्यता का कोई विशेष प्रचार नहीं हुआ था।

(२) अंत में (शायद ई० पू० २५०० के लगभग) पैलेस्टाइन में कनआनी लोगों के दल आए। ये दल भी मूलतः सेमेटिक वर्ग के ही थे। वे लोग जिस स्थान पर आकर बसे थे, वह कनआन कहलाने लगा। इन लोगों ने शीघ्र ही अपने पहाड़ी क़स्बे बनाने आरंभ कर दिए। बैबिलोन और मिस्र के साथ इनका व्यापार भी आरंभ हो गया, और ये धीरे-धीरे अधिक सभ्य होने लगे। उन्होंने सभ्यता की अधिकांश बातें बैबिलोनवालों से ही सीखी थीं, और वे लिखने में भी बैबिलोनियन अक्षरों और संकेतों आदि का ही व्यवहार करते थे। पर वे लोग कभी मिलकर अपना एक राष्ट्र नहीं बना सके। वे अपने-अपने छोटे और स्वतंत्र नगर-राज्यों में रहा करते थे, और प्रत्येक नगर का एक अलग राजा हुआ करता था। यह भी कहा जा सकता है कि वे लोग एक प्रकार से कुछ अंशों में बैबिलोनियन-शासन के अधीन थे। यदि वास्तविक दृष्टि से देखा जाय, तो इस समस्त उपजाऊ मेखला पर पश्चिमी समुद्र तक बैबिलोन का ही साम्राज्य था।

उस समय तक तो यही अवस्था रही कि रेगिस्तान के निवासी

उस उपजाऊ मेखला में जो कुछ चाहते थे, वही करते थे। पर ई० पू० २००० के लगभग पहाड़ों पर रहनेवाले लोगों की बारी आई। हम्मूरबी की मृत्यु के थोड़े ही दिनों बाद बैबिलोनिया के साम्राज्य का बल घटने लगा। उस समय एशिया माइनर में कुछ इंडो-योरपियन दल, जो हिटाइट कहलाते थे, मिलकर अपना एक स्वतंत्र राज्य बना रहे थे। दक्षिण और पूर्व की ओर उनकी शक्ति का विस्तार हो रहा था; और कनआन तथा पश्चिम के साथ बैबिलोनिया का जो संबंध था, उसे वे धीरे-धीरे तोड़ने का प्रयत्न कर रहे थे। ई० पू० १६२५ में तो हिटाइट लोगों ने बैबिलोनिया पर आक्रमण करके उसे अच्छी तरह लूटा भी था। इसके थोड़े ही दिनों बाद कुछ और दल, जो कस्साइट कहलाते थे, उत्तर की ओर से आने लगे। धीरे-धीरे उन्होंने बैबिलोनिया पर अपना शासन जमा लिया, जो प्रायः ६०० वर्षों तक बना रहा। बैबिलोनिया में ये ही लोग सबसे पहले अपने साथ घोड़े लाए थे। इससे पहले बैबिलोनियावालों ने कभी घोड़ा देखा भी नहीं था। ऐसा जान पड़ता है कि बैबिलोनिया पर अपना शासन जमाकर ये लोग बहुत ही निश्चित और अकर्मण्य होकर शांति-पूर्वक समय व्यतीत करने लगे थे। इसका परिणाम यही हुआ कि बैबिलोन बराबर दिन-पर-दिन बल-हीन ही होता गया। अब तक असीरिया एक प्रकार से बैबिलोन के अधीन ही था, पर अब वह भी धीरे-धीरे स्वतंत्र होने लगा। हिटाइट लोगों की शक्ति भी अभी तक बराबर बढ़ती चली जा रही थी। उन्होंने अपना एक साम्राज्य स्थापित कर लिया, जिसका केंद्र हेलिस-नदी के पूर्व में हटी-नामक नगर में था। ई० पू० १४०० के लगभग पश्चिमी एशिया में इनका राज्य सबसे अधिक शक्तिशाली था। इससे कुछ ही पहले (लगभग १२०० ई० पू०) एक और नया छोटा, पर

दृढ़ राज्य बना था, जो मिटन्नी कहलाता था। यह राज्य हिटाइटों और फ़रात-नदी के बीच में पड़ता था। यद्यपि यह कभी प्रथम श्रेणी का राज्य न बन सका, तो भी इतना ठोस अवश्य था कि अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रह सका; और पश्चिम के साथ बैबिलोन का जो कुछ थोड़ा-बहुत संबंध बच रहा था, उसका भी इसने अंत कर डाला।

इस प्रकार ई० पू० २००० से १५०० तक पश्चिमी एशिया में बसनेवाले सेमेटिक लोगों पर बराबर पहाड़ी दलों के आक्रमण होते रहे, जिससे सेमेटिक लोगों की शांति में बाधा पड़ती रही, और पहाड़ी दल आ-आकर उपजाऊ मेखला में बसने गए। जिस प्रकार एक बड़ी लहर उठने के कारण किनारे तक का पानी हिल जाता है, उसी तरह इन नए आक्रमणकारियों का प्रभाव मिस्र तक पहुँचा था। इसलिये अब हम अगले प्रकरण में मिस्र के संबंध में कुछ बातें बतलाएँगे, और उसके आरंभिक इतिहास का वर्णन करके यह दिखलाने का प्रयत्न करेंगे कि एशिया की इस खलबली के कारण मिस्र के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा था।

---

२. मिस्र का साम्राज्य

जहाँ तक हम लोग जानते हैं, मानव-जाति में सबसे पहले नील-नदी के तट पर रहनेवाले मिस्री लोग ही वास्तव में सभ्य हुए थे। ऐसा जान पड़ता है कि आरंभ से ही वे लोग बहुत शांत-प्रकृति के थे। वे सदा युद्ध आदि से बचना चाहते थे, और कभी अपना साम्राज्य स्थापित करने की इच्छा नहीं रखते थे। इन्होंने अपना सारा समय शांति की कलाएँ सीखने में ही बिताया था। अपने पवित्र शासकों की अधीनता में रहकर ई० पू० ३४०० में अपना एक बड़ा और संघटित राष्ट्र स्थापित किया था; और यही सबसे पहला बड़ा राष्ट्र है, जिसका इतिहास मे हम लोगों को पता चलता है। ई० पू० ३४०० से भी बहुत पहले ही वे लोग बहुत-सी बातें सीख और जान चुके थे; और उसके उपरांत तो वे बहुत ही शीघ्रता से उन्नति करने लग गए थे। अब हम यह बतलाना चाहते हैं कि उन्होंने क्या-क्या सीखा था, और उनका ज्ञान कहाँ तक बढ़ा हुआ था।

मिस्री लोग आरंभ से ही मुख्यतः कृषक थे, और तब से बराबर खेती-बारी ही करते आए हैं। बहुत ही आरंभिक काल से वे लोग बराबर तरह-तरह के अनाज और सन बोते आए हैं। इसी सन के तागों से उन्होंने बहुत जल्दी कपड़ा बुनना भी सीख लिया, और इसीलिये उनके यहाँ कपड़ों पर बेल-बूटे बनाने की कला भी निकल सकी। जल के लिये उन्हें नील-नदी पर निर्भर रहना

हमूराबी के नियम

(पत्थर-स्तंभ पर अंकित)

पड़ता था, और वह जल अपने खेतों में आवश्यकतानुसार लाने अथवा उसे रोकने के लिये वे लोग बीच-बीच में बहुत-सी खाइयाँ आदि खोद लिया करते थे। ई० पू० ४००० तक वे लोग ताँबे का व्यवहार करना भी जान गए थे। और, वे लोग ताँबे के हथियार, आरियाँ और पत्थर काटने के तरह-तरह के औज़ार बनाने लग गए थे। इस प्रकार वे लोग प्रस्तर-युग को पार करके धातु-युग में आ पहुँचे थे। थोड़े ही दिनों में उन्होंने इस बात का भी पता लगा लिया कि ताँबे और टीन के योग से काँसा बनता है।

वे स्थल और जल दोनो के मार्गों से व्यापार करते थे। वे लोग भूमध्य सागर और लाल सागर के किनारों पर रहते थे, इसलिये शीघ्र ही वे जहाज़ भी बनाने लगे। मिस्रियों के बनाए हुए जहाज़ का जो सबसे पहला चित्र मिला है, वह ई० पू० २७५० का है; पर इससे बहुत पहले से ही वे समुद्र-यात्रा करने लगे थे। उनके ये जहाज़ केवल व्यापार के लिये विदेशों में जाते थे। कुछ जहाज़ तो पूर्वी भूमध्य सागर के टापुओं में या लाल सागर के दक्षिणी सिरे पर स्थित पुन्ट-नामक स्थान में जाते थे, और वहाँ से उन देशों की चीज़ें लाते थे, और कुछ जहाज़ लेबनन के पहाड़ों से लकड़ियाँ लाने के लिये सीरिया के तट पर जाते थे। इन लकड़ियों का व्यवहार वे लोग जहाज़ बनाने में करते थे, और इसका कारण यह था कि मिस्र में इमारती काम के लिये या जहाज़ आदि बनाने लायक़ लकड़ी नहीं होती थी। उन्होंने लाल सागर से पश्चिम की ओर नील-नदी तक एक नहर इसलिये बनाई थी कि जिसमें उनके जहाज़ लाल सागर से भूमध्य सागर तक आ-जा सकें। कुछ दिनों बाद उन्हें अपने व्यापारिक जहाज़ों की रक्षा के लिये लड़ाई के जहाज़ों का बेड़ा भी तैयार करना पड़ा था। ऐसा जान पड़ता है कि ई० पू०

२००० से पहले क्रीट और ईजियन सागर के टापुओं पर भी उनका कुछ अधिकार हो गया था।

स्थल-मार्ग से उनके यात्रियों के दल या कारवाँ खच्चरों और ऊँटों पर माल लादकर (क्योंकि तब तक उन्होंने कभी घोड़े नहीं देखे थे।) रेगिस्तानों को पार करके एक ओर एशिया और दूसरी ओर सूडान तक जाते थे। अपनी इन व्यापारिक यात्राओं में उन्हें रेगिस्तान में बसनेवाली जंगली जातियों से भय रहता था, इसलिये मिस्रियों को रास्ते में कई स्थानों पर अपने उपनिवेश रखने पड़ते थे (उदाहरणार्थ सिनाई-प्रांत में उनका एक उपनिवेश था।), जिनमें उनके सैनिक भी रहते थे। यही सैनिक सीमाओं की इन जंगली जातियों के आक्रमणों से रक्षा करते और व्यापारियों के दलों को भी बचाते थे, और जो लोग उनसे छेड़-छाड़ करते थे, उन्हें वे दंड देते थे। एक स्थान पर इस बात का उल्लेख है कि ई० पू० २६०० में मिस्रियों की एक सेना इसी काम के लिये पैलेस्टाइन गई थी। इसके उपरांत मिस्र के राजा सेसोस्ट्रिस प्रथम और सेसोस्ट्रिस तृतीय ने (ई० पू० लगभग १९५० और १८६० में) कई बार अपनी सेनाएँ कनआन और आफ्रिका पर चढ़ाई करने के लिये भेजी थीं, और न्यूबिया का बहुत-सा अंश जीता था, और इस प्रकार नील-नदी के आस-पास का बहुत दूर तक का प्रदेश अपने राज्य में मिला लिया था।

लेखन-कला में भी मिस्रियों ने इसी प्रकार बहुत शीघ्रता से उन्नति की थी। ई० पू० ३५०० में ही वे अपना अभिप्राय प्रकट करने के लिये चित्र बनाने लगे थे। इसके उपरांत शीघ्र ही उन्होंने अपनी एक चित्र-लिपि तैयार कर ली थी, जिसमें एक चित्र या चिह्न किसी एक ही शब्द या वस्तु का बोधक होता था। ई० पू० ३००० से बहुत पहले ही इस विषय में उन्होंने इससे भी और

अधिक उन्नति कर ली थी, और चौबीस चिह्नों की एक लिपि तैयार कर ली थी, जिसमें एक चिह्न किसी एक अक्षर का सूचक होता था। अब तक जितनी लिपियों का पता चला है, उनमें सबसे पहली और पुरानी यही है।

मिट्टी की बनी हुई भारी और भद्दी पटिकाओं की अपेक्षा उन लोगों ने लिखने के लिये एक दूसरे सुंदर और हल्के उपकरण का आविष्कार किया था। नील-नदी के दलदलों में एक प्रकार का नरकट होता है, जो पेपिरस कहलाता है, और जिससे काग़ज़ का अँगरेज़ी पर्याय पेपर निकला है। मिस्रियों ने ही इस बात का पता लगाया था कि इसकी पत्तियों को एक पर एक रखकर चिपकाने से एक ऐसी अच्छी चीज़ तैयार होती है, जिस पर मज़े में लिखा जा सकता है। उन्होंने दीए आदि की कालिख को पानी में घोलकर और उसमें एक प्रकार का गोंद मिलाकर लिखने की स्याही तैयार की थी। इस प्रकार लिखने का कार्य बहुत सुगम हो गया था। बहुत-सा पेपिरस एक में लपेटकर थोड़े-से स्थान में रक्खा जा सकता था, इसलिये अब ग्रंथ आदि सहज में लिखे जा सकते थे, और बहुत-से ग्रंथ थोड़े-से स्थान में सुबीते से रक्खे जा सकते थे। राजाओं और उनके सरदारों (जिनका समय ई० पू० २५०० से बाद आरंभ होता है) के मक़बरों या समाधियों में ऐसे पुस्तकालय मिले हैं, जिनमें संसार की सबसे प्राचीन कथाएँ हमारे लिये रक्षित हैं। केवल कथाएँ ही नहीं, उनमें सबसे प्राचीन काव्य, प्रार्थनाएँ, धार्मिक नाटक और चिकित्सा तथा गणित-शास्त्रों की सबसे प्राचीन पुस्तकों के अतिरिक्त सबसे प्राचीन मनुष्य-गणना की सूचियाँ और वे बहीखाते आदि भी हैं, जिनमें एकत्र किए हुए राजकरों का लेखा रहता था।

मिस्री लोग शीघ्र ही काल-गणना में भी बहुत दक्ष हो गए थे, और इस काम में बैबिलोनवालों से भी बहुत आगे बढ़ गए थे।

वे लोग अपने वर्ष की गणना सूर्य के अनुसार करते थे, चंद्रमा के अनुसार नहीं। उन्होंने वर्ष का विभाग बारह महीनों में किया था, जिनमें से प्रत्येक महीने में तीस दिन होते थे। वर्ष के अंत में वे उत्सव के पाँच दिन और मिला देते थे, और इस प्रकार उनका वर्ष ३६५ दिनों का हो जाता था। उनकी यह काल-गणना ई० पू० ४२४१ से चलती है। इतिहास में यही सबसे पहला संवत् है, जो बिलकुल निश्चित और ठीक तरह से चला था। लौंद या अधिमास का वर्ष भी सबसे पहले मिस्र में ही चला था, पर इसका प्रचार बहुत बाद में अर्थात् सिकंदर के समय के बाद से हुआ था।

अनेक प्रकार की कलाओं में भी मिस्रियों ने आश्चर्य-जनक उन्नति की थी। बहुत पुराने ज़माने की कारीगरी की उनकी जो चीज़ें आजकल मिलती हैं, उन्हें देखकर मनुष्य चकित होकर प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकता। जवाहरात के काम में मोहरों के लिये नगीने काटने में, मिट्टी और शीशे के बर्तन तैयार करने में और सजावट के सामान बनाने और सजाने आदि में प्राचीन मिस्री लोग बहुत अधिक दक्ष थे। उनकी पुरानी इमारतें और मूर्तियाँ आदि आकार और कारीगरी के विचार से बहुत ही अद्भुत और सुंदर हैं। मिस्रियों की तैयार की हुई मूर्तियों में सबसे अधिक प्रसिद्ध स्फिंक्स है, जो गिज़े का दूसरा पिरामिड बनानेवाले राजा खेफ़्रे के सिर की प्रतिकृति है। सारे संसार में चट्टानों को काटकर जितनी मूर्तियाँ आदि बनाई गई हैं, उनमें यह मूर्ति सबसे बड़ी है।

मिस्री लोग बहुत-से देवतों की पूजा करते थे। उनमें से मुख्य 'रा' या सूर्य-देवता और ओसिरिस या संसार की जीवनी शक्ति के देवता हैं। ऐसा जान पड़ता है कि मिस्रियों का यह विश्वास

था कि ओसिरिस की प्रतिवर्ष मृत्यु हो जाती है, और प्रतिवर्ष नील-नदी द्वारा उसे फिर से नवीन जीवन प्राप्त होता है। अपने इन देवताओं के लिये वे पत्थर के बड़े-बड़े मंदिर बनाते थे, यद्यपि स्वयं उनके रहने के मकान बैबिलोनिया के मकानों की तरह प्रायः धूप में सुखाई हुई ईंटों के ही होते थे। इन मंदिरों में खंभों की बहुत-सी पंक्तियाँ होती थीं। पुराने ढंग के चौकोर भद्दे खंभों की जगह सबसे पहले मिस्रियों ने ही गोल और सुंदर खंभे बनाने आरंभ किए थे।

मिस्रियों के धार्मिक विश्वासों में से एक मुख्य विश्वास यह था कि मृत्यु के उपरांत भी आत्मा जीवित रहता है, और मरने के बाद भी मनुष्य का एक जीवन होता है। वे लोग समझते थे कि मरने के उपरांत भी हम लोग जीवित रहते हैं, और उस दशा में भी हमें अपने शरीर, नौकर-चाकरों तथा उन सब पदार्थों की आवश्यकता होती है, जिनसे इस जीवन में हमारा काम चलता है। इसीलिये वे लोग सदा मृत शरीरों को भी मसाले आदि लगाकर रक्षित रखते थे, और मृत पुरुषों की समाधियों या मक़बरों में सब प्रकार की चीज़ें और सजावट आदि के सामान रख दिया करते थे। बहुत प्राचीन काल में तो उनके देश में यहाँ तक होता था कि जब कोई बड़ा आदमी मर जाता था, तब उसके साथ उसके नौकर-चाकर भी यह समझकर मार डाले जाते थे कि अगले जीवन में ये भी उसकी सेवा-शुश्रूषा करेंगे। पर आगे चलकर उन्होंने यह निर्दयता-पूर्ण प्रथा उठा दी थी, और मक़बरों में नौकर-चाकरों की केवल छोटी-छोटी मूर्तियाँ बनाकर रख दिया करते थे। कुछ दिनों बाद उनका यह भी विश्वास हो गया था कि प्रत्येक मनुष्य के मरने पर ओसिरिस उसके पाप-पुण्य आदि का विचार करता है, और जीवन में किए हुए उसके सत्कर्मों या दुष्कर्मों के लिये उसे पुरस्कार या दंड देता है।

मिस्रियों की बनाई हुई सबसे बड़ी इमारतें बड़े-बड़े आदमियों की समाधियाँ या मक़बरे हैं। मिस्र के प्रसिद्ध पिरामिड भी, जो ई० पू० लगभग ३००० से २५०० तक बने थे, बड़े-बड़े राजों की समाधियाँ या मक़बरे हैं। उन्हें देखकर सहसा यह विश्वास नहीं होता कि आज से पाँच हज़ार वर्ष पहले भी ऐसी इमारतें बनती थीं, या बन सकती थीं। गिज़े-नामक स्थान में राजा इमहोटेप का जो बहुत बड़ा पिरामिड (ई० पू० २९५०) है, वह सब मिलाकर तेरह एकड़ ज़मीन पर है, और उसकी ऊँचाई प्रायः ५०० फ़ीट है। उसमें लगभग बीस लाख से ऊपर पत्थर के बड़े-बड़े चौकोर टुकड़े हैं, जिनमें से हरएक का वज़न साठ-सत्तर मन है। मिस्रियों के प्राचीन लेखों में कहा गया है कि एक लाख आदमियों ने बीस वर्ष तक मेहनत करके यह पिरामिड तैयार किया था; और उनके इस कथन पर बहुत सहज में विश्वास किया जा सकता है। मिस्र में इस प्रकार का यही एक पिरामिड नहीं है; ऐसे-ऐसे पिरामिड एक क़तार में प्रायः साठ मील तक चले गए हैं। इससे हम लोग इस बात का कुछ अनुमान कर सकते हैं कि उस समय के राजों के पास कितने अधिक राज-मज़दूर आदि रहा करते थे, और इतने अधिक आदमियों के कामों की ठीक-ठीक व्यवस्था करने के लिये उनकी संघटन-शक्ति कितनी प्रबल थी; और इतनी बड़ी-बड़ी इमारतें तैयार करने के लिये उन्होंने कैसे-कैसे यंत्र बनाए होंगे, तथा पत्थरों के इतने भारी-भारी टुकड़े किस प्रकार इतनी ऊँचाई तक पहुँचाए होंगे!

मिस्र की सभ्यता का प्रभाव पूर्व और पश्चिम दोनो पर पड़ा था। उसकी शक्ति, वैभव और संस्कृति इतनी अधिक बढ़ी-चढ़ी थी कि उसका अनुमान करके आश्चर्य होता है। फिर एक बात यह भी है कि ई० पू० २००० तक या इसके और कुछ दिन बाद

तक कोई बाहरी शक्ति उनकी शांति में बाधा डालने के लिये उनके देश में नहीं पहुँची थी। पर ई० पू० १७०० के लगभग एशिया में कुछ उपद्रव होने लगे, जिनका वर्णन हम पिछले प्रकरण में कर आए हैं; और उन उपद्रवों के परिणाम-स्वरूप मिस्र के वैभव पर आघात पहुँचने की संभावना होने लगी। रेगिस्तान के बद्दू लोग सदा मिस्र में पहुँचकर उपद्रव किया करते थे, और वे लोग या तो वहाँ बस जाते या ग़ुलाम बना लिए जाते थे। शायद इब्राहीम, यूसुफ़ और याक़ूब (अँगरेज़ी नाम अब्राहाम, जोजेफ़ और जैकब) तथा उनके लड़के आदि इसी प्रकार मिस्र पहुँचे थे। पर जब हिटाइट लोगों ने सीरिया में उपद्रव मचाना आरंभ किया, तब एशिया के निवासी बहुत अधिक संख्या में मिस्र पहुँचने लगे। मिस्री लोग इन आगंतुकों को हाइक्सोस कहते थे, जिसका अर्थ कदाचित् 'गड़रिया राजा' है। हम निश्चित रूप से यह तो नहीं कह सकते कि ये हाइक्सोस लोग कौन थे, पर बहुत संभव है कि ये लोग कनआन और सीरिया के सभ्य निवासी हों, जो हिटाइट लोगों के आक्रमणों से बचने के लिये दक्षिण की ओर बढ़ आए हों। इसके अतिरिक्त इस बात की भी बहुत कुछ संभावना है कि इन आगंतुकों के साथ-साथ रेगिस्तान के रहनेवाले बहुत-से जंगली भी चले आए हों। मिस्रवाले इन लोगों को अपने देश में आने से रोक नहीं सके थे, और उन्हें अपने देश से बाहर नहीं रख सके थे। हाइक्सोस लोगों ने वहाँ अपना एक राज्य स्थापित कर लिया, जिसका केंद्र या राजधानी एवरिस-नामक स्थान में थी, जो नील-नदी के डेल्टा या स्रोतंतर में एक नगर था। मिस्र के सब राजा दक्षिण की ओर भाग गए, और दक्षिणी मिस्र पर ही उन्होंने अपना एक प्रकार का शासन रक्खा। पर वस्तुतः हाइक्सोस लोग ही सारे देश पर शासन करते थे। आगे

चलकर ई० पू० १५७५ में मिस्र में एक नया राजवंश उत्पन्न हुआ, और उस राजवंश के पहले राजा अहमोसिस ने बहुत दिनों तक युद्ध करने के उपरांत हाइक्सोस लोगों को मार भगाया, और उनकी शक्ति तोड़ दी। फिर भी कदाचित् कुछ हाइक्सोस मिस्र में गुलामों की भाँति रह गए थे। बाक़ी लोग उत्तर की ओर भगा दिए गए थे, और वे एशिया में पहुँचकर फिर कन-आनियों और सीरियनों के उन्हीं दलों में मिल गए थे, जिनमें से निकलकर वे मिस्र पहुँचे थे।

हाइक्सोस लोग अपने साथ मिस्र में घोड़े और युद्ध करने के रथ भी लेते गए थे, और उन्हीं ने मिस्रियों को यह सिखलाया था कि बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ किस ढंग से लड़ी जाती हैं। जब मिस्र ने उन लोगों को निकाल बाहर किया, तब, ऐसा जान पड़ता है, उन्होंने अपने मन में उन लोगों से बदला चुकाना ठान लिया था। उस समय मिस्र पहलेपहल एक बड़ा योद्धा राष्ट्र बना था। इस नए राजवंश के राजा लोग बहुत बड़े विजेता हुए, जिनमें से थुटमो-सिस प्रथम और थुटमोसिस तृतीय (ई० पू० १५४० और १४७६) बहुत प्रसिद्ध हैं। वे हर साल युद्ध ठानते थे, और उत्तर की ओर बढ़ते जाते थे; यहाँ तक कि अंत में वे फ़रात-नदी के तट पर करकमिश-नामक स्थान पर पहुँच गए थे। उन लोगों ने उपजाऊ मेखला के समस्त पश्चिमी आधे भाग पर मिस्री शासन स्थापित और प्रचलित किया था, और कनआन अब मिस्र का ही एक सूबा बन गया था। करनाक के विशाल मंदिर में (जो उसी स्थान पर है, जहाँ पहले थेबेस-नामक प्राचीन नगर था) हमें पत्थरों पर खोदे हुए अभी तक ऐसे अनेक चित्र मिलते हैं, जिनसे यह सूचित होता है कि इस प्रकार की विजयों के कारण मिस्रियों का वैभव और संपन्नता कितनी अधिक बढ़

गई थी। साथ ही इन चित्रों से यह भी पता चलता है कि जिन मिस्त्रियों ने पत्थरों पर ये चित्र खोदे थे, वे इस काम में कितने होशियार और बढ़े-चढ़े थे।

मिस्री साम्राज्य की सबसे अधिक उन्नति एमेनहोटेप तृतीय के समय में हुई थी (ई० पू० १४११), और यही उसकी चरम उन्नति का काल माना जाता है। इसके बाद ही मिस्र का ह्रास आरंभ हुआ। उसके इस ह्रास के कारण आंतरिक भी थे और बाह्य भी, जिनमें से कुछ कारणों का यहाँ उल्लेख किया जाता है—

(१) राजा थुटमोसिस के बाद मिस्र के सिंहासन पर जो राजा बैठे थे, वे उतने अधिक युद्ध-प्रिय नहीं थे, और वे प्रायः अपने महलों में ही पड़े रहना पसंद करते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि मिस्र के सैनिकों का रोज़गार मारा गया, और वे बहुत अधिक असंतुष्ट हो गए। विदेशों में मिस्र की जो प्रजा थी, उसे लोग क्रांति और विद्रोह करने के लिये उत्तेजित करने लगे, क्योंकि अब उन्हें इस बात का तो कोई भय रह ही नहीं गया था कि मिस्र की सेना हमें शांत करने के लिये आवेगी।

इसके अतिरिक्त राजा एमेनहोटेप ने, जो ई० पू० १३६० में सिंहासन पर बैठा था, राजनीति की ओर से अपना ध्यान हटाकर धार्मिक विषयों में नई-नई उद्भावनाएँ और विलक्षणताएँ निकालने का प्रयत्न आरंभ किया। बहुत-से पुराने देवतों की पूजा बंद करके वह इस बात का प्रयत्न करने लगा कि सब लोग केवल सूर्य-देवता की पूजा करें, जिसे वह 'एटन' कहता था। इस एटन की भक्ति के कारण ही उसने अपना नाम तक बदल-कर नया नाम 'एखनेटन' रक्खा, और एक नया नगर बसाया, जो आजकल 'अमरना' कहलाता है, और इस नए नगर के लिये

उसने अपनी पुरानी राजधानी थेबेस का परित्याग कर दिया। इसमें संदेह नहीं कि धार्मिक विचारों में सुधार करने का उसने जो प्रयत्न किया था, वह बहुत ही महत्त्व-पूर्ण और मनोरंजक था। पर धार्मिक विषयों में ही वह इतना अधिक व्यस्त रहता था कि साम्राज्य के काम देखने के लिये उसे समय ही न मिलता था। फिर धार्मिक विषयों में भी सुधार करके उसने सब पुरोहितों और पुजारियों तथा भक्तों आदि को अपना विरोधी बना लिया था। इन कारणों से मिस्रियों की राजभक्ति जाती रही, और वे लोग राजा की ओर से असंतुष्ट हो गए।

(२) इसी बीच में साम्राज्य पर बाहर से विपत्तियों के आने की संभावना भी बराबर बढ़ती गई।

क—अखनेटन के शासन-काल में हिटाइट लोग बराबर दक्षिण की ओर बढ़ते जा रहे थे, और उन्होंने समस्त उत्तरी सीरिया पर अधिकार कर लिया था। इस समय तक उन लोगों ने कृष्ण सागर के पासवाली अपनी खानों से लोहा निकालना भी सीख लिया था। नई शाखा के जो राजा अखनेटन के उत्तराधिकारी हुए थे, उन्होंने और उनमें से विशेषतः सेथोस प्रथम (ई० पू० १३१३) और रैमेसिस द्वितीय (ई० पू० १२६२) ने हिटाइट लोगों को पीछे हटाने के लिये कई बड़े-बड़े युद्ध किए थे, पर फिर भी वे लोग हिटाइटों को निकाल नहीं सके। उलटे उनके इस प्रयत्न में मिस्र की सारी शांति का अंत हो गया। इस प्रकार पाठकों ने समझ लिया होगा कि पहाड़ी लोग एक ओर से मिस्र-साम्राज्य को दुर्बल करते जा रहे थे।

ख—इसके कुछ ही दिनों बाद हिब्रू लोगों ने, जो पूर्वी रेगिस्तान से आए थे, कनआन पर अधिकार कर लिया (लगभग १२०० ई० पू०), उनकी जाति के कुछ दल मिस्र में गुलाम

बना लिए गए थे। अब वे लोग अपनी गुलामी छोड़कर किसी तरह निकल भागे थे, और जार्डन के पश्चिमी भाग में बसने लग गए थे। कुछ तो लड़-भिड़कर और कुछ शांति-पूर्ण उपायों से उन लोगों ने धीरे-धीरे उस देश पर अपना अधिकार जमा लिया। वे लोग या तो कनआनवालों के साथ मिलकर मिस्रियों से लड़ते थे, अथवा कनआनियों में ही पूर्ण रूप से सम्मिलित हो जाते थे। यद्यपि उन लोगों के पूर्ण स्वतंत्र होने में बहुत दिन लग गए थे, तो भी अब कनआन किसी प्रकार मिस्र का अधीनस्थ प्रांत नहीं माना जा सकता था।

ग—प्रायः इसी समय के लगभग समुद्र और रेगिस्तान दोनों की ओर से मिस्र पर प्रत्यक्ष रूप से आक्रमण होने लगे। ई० पू० तेरहवीं शताब्दी के अंत में क्रीट के राजों की समुद्री शक्ति टूट गई। वहाँ के सैनिक योद्धा अब स्वतंत्र हो गए थे, और उन पर किसी का शासन नहीं रह गया था, इसलिये वे लोग क्रीट-टापू के आस-पास और एशिया माइनर के तटों पर दक्षिण की ओर और पूर्व की ओर भी लूट-पाट और आक्रमण आदि करने लगे। उनमें से कुछ लोग सीधे आफ्रिका में चले आए, और लीबिया में रहनेवाली रेगिस्तानी जातियों के साथ मिलकर पश्चिम की ओर से नील-नदी के डेल्टा या स्रोतांतर पर आक्रमण करने लगे। उनके कुछ दूसरे साथी एशिया के तट पर जा पहुँचे, और वहाँ से बड़े-बड़े दल बाँधकर दक्षिण की ओर बढ़ने लगे। हिटाइट-साम्राज्य उनके मार्ग में पड़ता था। उसे उन्होंने दुर्बल करके तोड़ डाला, और तब वे लोग समुद्र के किनारे-किनारे बढ़ते हुए मिस्र की सीमा पर जा पहुँचे। इस प्रकार ये दो सेनाएँ प्रायः पचास वर्षों तक (ई० पू० १२२९-११७९) बराबर उपद्रव मचाती रहीं, और उत्तरी मिस्र के निवासियों को

तंग करती रहीं। पर अंत में मिस्र के राजों ने किसी प्रकार उन लोगों को परास्त किया, और उन्हें छिन्न-भिन्न कर दिया। पर उनमें से कुछ लोग, जो फ़िलिस्तीनी कहलाते हैं, किसी प्रकार बचे रहे, और कनआन के समुद्र-तट पर जम गए। वे नाम-मात्र के लिये मिस्र की अधीनता में थे, पर कार्य-रूप में उनकी वह अधीनता कहीं दिखाई न पड़ती थी। वे पूर्ण रूप से स्वतंत्र थे।

इस प्रकार एशिया में मिस्र के साम्राज्य का अंत हो गया। पर इसका और भी विशेष दुष्परिणाम यह हुआ कि इन सब लड़ाई-झगड़ों के कारण मिस्री लोग पूर्ण रूप से शिथिल हो गए, और किसी काम के न रह गए। इन युद्धों के अंतिम समय में तो यहाँ तक नौबत आ गई थी कि मिस्रवालों को विवश होकर विदेशियों को धन देना और उन्हें अपनी सेना में सम्मिलित करना पड़ा था। मिस्र का वास्तविक शक्ति या आत्मा का अंत हो चुका था, और दिन-पर-दिन बराबर उसका पतन ही होता जाता था। प्रायः दो सौ वर्षों तक तो उसकी दशा बहुत ही शोचनीय रही। मिस्र में आंतरिक द्वेष और फूट ने घर कर लिया। वहाँ एक दूसरे के विरोधी दो राजवंश स्थापित हो गए थे, जिनमें से एक की राजधानी तो थेबेस में थी, और दूसरा राज्य डेल्टावाले प्रांत में था। और, ये दोनो ही राज्य बिलकुल दुर्बल और अकर्मण्य थे। इसके उपरांत जब पहले लीबियावाले और तब इथोपियावाले इस प्रकार दो विदेशी राजों ने आकर मिस्र के राजसिंहासन पर अधिकार किया, तब कहीं जाकर मिस्रवालों में फिर से जीवन का कुछ संचार होने लगा। पर इस बीच में बहुत दिनों का अंतर पड़ गया था।

---

३. असीरिया का साम्राज्य

ई० पू० ११०० से लेकर प्रायः दो सौ वर्षों तक इस उपजाऊ मेखला के निवासियों पर न तो किसी विशेष व्यक्ति का अधिकार या शासन ही था, और न उन पर बाहर से ही किसी प्रकार की कोई विपत्ति आई। न तो पहाड़ों की ओर से ही, और न रेगिस्तान की ओर से ही उन पर कोई आक्रमण करने आया। आस-पास कोई ऐसा बड़ा राजा भी नहीं था, जिसका उन्हें भय होता। यद्यपि बेबिलोन ने ई० पू० ११८१ में कास्साई राजों से अपना पीछा छुड़ा लिया था, पर फिर भी वह वैसा ही दुर्बल था, जैसा कि मिस्र। हिटाइटों का साम्राज्य बिलकुल नष्ट ही हो चुका था। लक्षणों से ऐसा जान पड़ता है कि ई० पू० १२६० और ११०० के मध्य में असीरिया* अपना स्वतंत्र साम्राज्य स्थापित करना चाहता था। पर उसी अवसर पर वह शिथिल पड़ गया, और उसकी शक्ति नष्ट हो गई।

इन सब बातों का परिणाम यही हुआ कि मेखला में रहनेवाली छोटी-छोटी जातियाँ अबाध्य रूप से अपना काम करने लगीं, और ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई कि उस समय यदि वे चाहतीं, तो अपनी शक्ति बहुत-कुछ बढ़ा सकती थीं। इस बात का सबसे पहला प्रयत्न करनेवाले हिब्रू या यहूदी लोग थे।

---

* इधर कुछ विद्वानों ने नवीन अनुसंधान करके यह सिद्ध किया है कि जिस शब्द का उच्चारण पहले असीरिया किया जाता था, उसका वास्तविक उच्चारण असुरिया या असूरिया है, और इसी देश के निवासियों को भारतवासी 'असुर' कहते थे।—अनुवादक

कनआन में पहुँचने के बाद इबरानी या यहूदी लोगों को अपनी स्वतंत्रता के लिये बहुत समय तक युद्ध करना पड़ा। उनका यह युद्ध विशेषतः फ़िलिस्तीनों के विरुद्ध था। पर जैसे-तैसे वे लोग अंत में स्वतंत्र हो गए, और दाऊद (डेविड) तथा सुलैमान (सोलोमन) की अधीनता में उन्होंने अपना एक राज्य स्थापित कर लिया। उनका यह राज्य लगभग एक सौ वर्षों तक (ई० पू० १००० से ६०० तक) फ़रात-नदी के तट से मिस्र की सीमा तक बना रहा। पर सुलैमान की मृत्यु के उपरांत उनका वह राज्य दो भागों में विभक्त हो गया, जिनमें से एक तो उत्तर का ओर इसराइल का राज्य था, और दूसरा दक्षिण की ओर जुदा का राज्य था। इसके उपरांत फिर कभी यहूदी लोग विशेष शक्तिशाली नहीं हुए, और उनकी गणना दूसरी श्रेणी की शक्तियों या राज्यों में ही की जा सकती है। उनका वास्तविक महत्त्व धार्मिक क्षेत्र में था। यहूदी जाति में ही एक के बाद एक इस प्रकार से बहुत-से ऐसे महापुरुष हुए, जिन्होंने ईश्वर के संबंध में बहुत ही ऊँचे दरजे के विचार प्रकट किए। ईसा के जन्म से पहले यदि संसार में ईश्वर के संबंध में कहीं कोई ऊँचे विचार सुनाई पड़ते थे, तो वह इबरानी या यहूदी लोगों में ही*। ये लोग पैग़ंबर कहे जाते हैं, और इनकी शिक्षाओं ने इबरानियों या यहूदियों के धर्म को संसार में तब तक सर्वश्रेष्ठ बनाए रक्खा, जब तक ईसा का आविर्भाव नहीं हुआ।

---

* हम नहीं कह सकते कि भारतीय सभ्यता और आध्यात्मिक विचारों के संबंध में मूल-लेखक के विचार संकीर्ण क्यों हैं। भारतवासियों ने अध्यात्म विद्या का जितना अधिक विकास किया है, उतना संसार के किसी दूसरे देश ने नहीं किया।—अनुवादक

अब इबरानी या यहूदी लोग दुर्बल हो गए थे, इसलिये आरामियों या सीरियावालों को अपनी शक्ति बढ़ाने का बहुत अच्छा अवसर मिल गया। पैलेस्टाइन के उत्तर में दमिश्क, हमथ और अरपद् आदि स्थानों में इन लोगों ने अपनी कई अच्छी-अच्छी बस्तियाँ बसा ली थीं, जो दिन-पर-दिन बहुत उन्नति करती जाती थीं, और पश्चिमी एशिया में उन दिनों ये लोग बहुत बड़े व्यापारी बन गए थे। उन दिनों स्थल में इनसे बढ़कर व्यापार करनेवाला और कोई नहीं था। इन लोगों ने फिनीशियन लिपि का व्यवहार करना भी सीख लिया था। लिखने में ये लोग मिस्र की स्याही और क़लम का व्यवहार करते थे। अब ये लोग यथेष्ट सभ्य हो गए थे, और साथ ही इन्होंने अपनी शक्ति भी बहुत बढ़ा ली थी। दमिश्क अब एक राज्य का केंद्र या राजनगर हो गया था, और ई० पू० ६०० से प्रायः पचास वर्ष या इससे कुछ अधिक समय तक पश्चिमी तट पर सबसे अधिक बलवान् राज्य था। इस राज्य ने यह भी व्यवस्था कर ली थी कि यदि कोई बाहरी बलवान् शक्ति इस पर आक्रमण करे, तो वह अपने पड़ोसियों से भी सहायता ले सकता था।

पर सीरिया में इस बात की एक कमी थी कि वह अपने इन पड़ोसियों को मिलाकर एक नहीं कर सकता था, और उनका एक सम्मिलित राज्य स्थापित नहीं कर सकता था। उस समय कुछ ऐसी ही अवस्था थी कि सीरिया, इसराइल, जूडा, फिलिस्तीन, एडोम, मोआब, अम्मन तथा और सभी छोटे-छोटे राज्य ज्यों ही अवसर पाते थे, त्यों ही आपस में लड़ना-झगड़ना शुरू कर देते थे। यदि उस समय पश्चिमी एशिया पर कोई बड़ी और प्रबल शक्ति आकर आक्रमण करती, तो बहुत-

कुछ संभावना इसी बात की थी कि सीरिया के ये सब छोटे-छोटे राज्य कभी एक साथ मिलकर उसका मुक़ाबला न करते। इसके अतिरिक्त एक बात यह भी थी कि ये सब राज्य आपस में ही लड़-लड़कर बहुत कुछ बल-हीन हो चुके थे।

पर ई० पू० ९०० के लगभग असीरिया की एक ऐसी नई शक्ति खड़ी हो गई, जो अपना एक नया साम्राज्य स्थापित करने के लिये बिलकुल तैयार हो गई थी। ये असीरियन लोग वस्तुतः सेमाइट थे, जो ई० पू० ३००० के लगभग रेगिस्तान से आए थे, और बैबिलोनिया के उत्तरी प्रदेश में बस गए थे। सबसे पहले इन लोगों ने अस्सुर-नामक स्थान में अपनी राजधानी बनाई थी, पर पीछे से सारगन-नामक एक राजा ने (ई० पू० ७२२) एक दूसरे नगर में राजधानी बनाई, और उसके उत्तराधिकारी सेनाकेरिब (ई० पू० ७०१) ने अंत में निनेवा को स्थायी रूप से अपना राजनगर बना लिया। आरंभ में ये असीरियन लोग साधारणतः या तो बैबिलोन की अधीनता में और या हिटाइट लोगों की अधीनता में रहते थे। पर ज्यों-ज्यों ये लोग बलवान् होते गए, त्यों-त्यों स्वतंत्र होते गए; और ई० पू० ९०० में उनकी स्वतंत्रता तथा शक्ति इतनी बढ़ गई कि ये लोग सारे पश्चिमी एशिया पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिये तैयार हो गए।

अब हम संक्षेप में यह बतला देना चाहते हैं कि ये लोग किस प्रकार के थे। इन लोगों का मुख्य उद्यम खेती-बारी था। ये लोग कभी बहुत बड़े व्यापारी नहीं हुए। उन्होंने अपनी अधिकांश सभ्यता सुमेरियन, बैबिलोनियन, हिटाइट और फिनीशियन लोगों तथा मिस्रियों से ही ग्रहण की थी। ये लोग वास्तु-विद्या में बहुत अधिक निपुण हुआ करते थे, और बहुत बड़े-बड़े महल, मंदिर और नगर आदि

बनाते थे। ये लोग अपना इतिहास भी ठीक तरह से लिखते चलते थे, और मिट्टी की वे पटिकाएँ भी एकत्र करते चलते थे, जो उन दिनों वहाँ पुस्तकों का काम देती थीं। जब विद्वानों ने निनेवा के खँडहरों को खोदना शुरू किया, तब वहाँ के राजा अशुरबनिपल के राजमहल में उन्हें मिट्टी की इस प्रकार की २२,००० पटिकाएँ मिली थीं।

पर असीरियन लोग प्रधानतः सैनिक थे। उन्होंने हिटाइट लोगों से लोहे का काम सीखा था, और इसलिये वे लोग अब लोहे के हथियार आदि बना सकते थे। उनकी सेना में घुड़सवार और रथ भी होते थे, और नगरों पर घेरा डालकर उन्हें नष्ट करने के अनेक प्रकार के यंत्र आदि भी होते थे। वे लोग बहुधा युद्ध ही करते थे, और उनके सब काम युद्ध से ही चलते थे। उनके बड़े-बड़े राजा यथा अशुरनजीरपल, शलमनेसर द्वितीय तथा पंचम, तिगलथ-पलेसर चतुर्थ, सारगन, सेनाकेरीब और एसरहेड्डन बहुत बड़े-बड़े योद्धा थे, और उन्होंने अपना अधिकांश समय बड़ी-बड़ी सेनाओं को साथ लेकर लड़ने और दूसरे देशों तथा जातियों पर विजय प्राप्त करने में ही बिताया था। असीरियन लोग जैसी भीषणता और निर्दयता से युद्ध करते थे, वैसी भीषणता और निर्दयता से उससे पहले कभी किसी जाति ने युद्ध नहीं किया था। प्रायः ढाई सौ वर्षों तक उनकी शक्ति बराबर बढ़ती ही गई, और वे उपजाऊ मेखला के स्वामी बने रहे। इसके बाद उनके साम्राज्य का बल घटने लगा, और पचास वर्ष के अंदर ही वह साम्राज्य टूटकर नष्ट हो गया।

यदि असीरियन लोगों के युद्धों का साधारण वर्णन भी किया जाय, तो उसके लिये बहुत-से समय और स्थान की आवश्यकता होगी। अतः हम उन्हें तीन मुख्य भागों में विभक्त करके यहाँ उनका बहुत ही संक्षेप में कुछ वर्णन कर देते हैं—

(१) असीरियन राजों को अपनी सेनाओं का वेतन चुकाना था, इसलिये उनकी दृष्टि दक्षिण-पश्चिम की ओर गई। उन्होंने निश्चय किया कि सीरिया और पैलेस्टाइन को जीत लेना चाहिए, और यदि आवश्यकता हो, तो मिस्र पर भी अधिकार कर लेना चाहिए। उन्होंने सबसे पहले दमिश्क पर चढ़ाई की। दमिश्क के राजों ने अपने सब पड़ोसियों को अपनी सहायता के लिये बुला लिया, और पचास वर्ष से कुछ अधिक समय तक (ई० पू० ८५४-८००) असीरिया के राजों का बहुत ज़बरदस्त मुक़ाबला किया। पर फिर भी असीरियावाले उनकी अपेक्षा बहुत अधिक बलवान् थे। सीरिया के राज्य धीरे-धीरे निर्बल होने लगे। ई० पू० ७३१ में असीरियावालों ने दमिश्क को जीतकर नष्ट कर डाला। इसके दस वर्ष बाद उन लोगों ने समरिया की भी यही दशा की, और इसराइल के यहूदी-राज्य का अंत हो गया। ई० पू० ६८२ के बाद जुडाका यहूदी-राज्य भी हार मानकर असीरिया का अधीनस्थ हो गया। इस प्रकार असीरियावालों का राज्य मिस्र की सीमा तक जा पहुँचा।

मिस्रवाले पहले से ही देख रहे थे कि यह विपत्ति दिन-पर-दिन समीप आती जाती है, अतः वे उसे रोकने का प्रयत्न करने लगे। जिस समय मिस्र में इथिओपिया के वंश के राजों का शासन था (ई० पू० ७२७ के बाद से), उस समय मिस्रवाले यहूदियों तथा और लोगों को असीरिया के विरुद्ध विद्रोह करने के लिये भड़का रहे थे; और अपने इस प्रयत्न में उन्हें प्रायः कुछ सफलता भी हो जाया करती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि असीरिया के राजा अपने मन में यह बात समझने लगे कि जब तक हम लोग स्वयं मिस्र पर विजय न प्राप्त कर लेंगे, तब तक

पश्चिम में इसे कभी शांति न मिलेगी। इसलिये ई० पू० ६७० में उन्होंने मिस्र पर आक्रमण किया। उन्होंने मेंफिस और थीब्स के बड़े नगर नष्ट कर दिए, और मिस्री शासकों या गवर्नरों को असीरिया के नौकर बनाकर उस देश पर शासन करने के लिये नियुक्त किया। परंतु यद्यपि उन लोगों ने उस देश पर विजय प्राप्त कर ली थी, तथापि वे लोग उसे अपने अधिकार में नहीं रख सके। बात यह थी कि असीरिया से मिस्र बहुत दूर पड़ता था, और जब कभी असीरियन सेनाएँ लौटकर अपने घर चली जाती थीं, तब मिस्रवाले विद्रोह खड़ा कर देते थे। अंत में असीरियनों को इस संबंध में अपना प्रयत्न छोड़ ही देना पड़ा, और समटिक तथा नीको द्वितीय-नामक राजों के शासन-काल में मिस्र फिर स्वतंत्र हो गया।

(२) इधर अपने देश के आस-पास भी असीरियावाले चैन से नहीं रहने पाते थे। एक ओर एलमवाले और दूसरी ओर बैबिलोनवाले उन्हें बराबर तंग करते रहते थे। असीरियावालों ने कई बार एलम पर आक्रमण किए, और अंतिम बार (ई० पू० ६४७) उन्होंने एलम के निवासियों का पूरी तरह से अंत कर डाला, और वहाँ का राजनगर, जो सूसा कहलाता था, जला डाला। पर बैबिलोन को शांत करने में उन्हें अपेक्षाकृत कम सफलता हुई थी। यद्यपि बैबिलोन बहुत अधिक बलवान् नहीं था, पर फिर भी वह असीरिया के इतने पास पड़ता था कि यदि वह विद्रोही हो जाता, तो असीरिया को बहुत कुछ तंग कर सकता था। परंतु बैबिलोनवालों को असीरियावाले किसी तरह राज-भक्त भी नहीं बना सकते थे। उन्हें बार-बार आक्रमण करके बैबिलोन पर विजय प्राप्त करनी पड़ती थी। ई० पू० ६८६ में असीरियावालों ने बैबिलोन का सारा नगर ही नष्ट कर डाला, और फ़रात-नदी का रुख़ इस तरह बदल दिया कि उसकी धारा उसी स्थान से होकर बहने

लगी, जिस स्थान पर बैबिलोन-नगर था। इसके बाद असीरिया में जो दूसरा राजा हुआ (ई० पू० ६७९), उसने फिर से बैबिलोन-वालों के साथ मित्रता स्थापित करने का प्रयत्न किया, और उनका नगर फिर से बनवा दिया। पर इसका भी कोई शुभ फल नहीं हुआ। बैबिलोनियावाले फिर भी पहले की ही तरह सदा विद्रोह करने के लिये तैयार रहते थे।

उनकी इस उद्दंडता के कदाचित् दो मुख्य कारण थे—एक तो यह कि बैबिलोनवाले कभी यह बात भूल नहीं सकते थे कि किसी समय हम भी एक बहुत बड़े साम्राज्य के अधिकारी थे, और वे लोग असीरियावालों की सामान्य प्रजा होकर नहीं रह सकते थे। और, दूसरा यह कि एक नई जाति के लोग, जो खाल्डियन कहलाते थे, बराबर बैबिलोनिया में आ रहे थे, और वहाँ के निवासियों को असीरियावालों का विरोध और मुक़ाबला करने के लिये भड़काते रहते थे। ये खाल्डियन लोग भी वस्तुतः सेमाइट ही थे, और रेगिस्तान से आए थे। इधर सैकड़ों वर्षों से वे लोग फ़ारस की खाड़ी के ऊपरी भाग में बराबर चारो तरफ़ फैल रहे थे। फ़ारस की खाड़ी के उत्तरी भाग के वे ज़िले उन दिनों 'समुद्री प्रदेश' कहलाते थे। उनमें से बहुत-से लोग बराबर बैबिलोनिया में भी जाते रहते थे। यद्यपि असीरियावाले उन लोगों पर भी बराबर आक्रमण करते रहते थे, तो भी धीरे-धीरे वे खाल्डियन लोग बैबिलोनियावालों के नेता बन गए। ई० पू० ६२६ में उन्होंने बैबिलोन में एक नए राजा को सिंहासन पर बैठाया, जिसका नाम नबोपोलस्सर था, और तब अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। और, जब ई० पू० ६१२ में निनेवा-नगर नष्ट कर दिया गया था, तब उसे नष्ट करनेवाली सेनाओं में से एक सेना खाल्डियनों की भी थी।

(३) पर असीरिया के लिये सबसे भारी विपत्ति उत्तर की ओर थी। यदि हम नक़्शा देखें, तो हमें मालूम होगा कि असीरिया देश उपजाऊ मेखला के ठीक उत्तर में पड़ता है। इसके चारो ओर पहाड़ी ज़मीन का एक प्रकार का अर्द्ध-वृत्त-सा है। पहाड़ों पर रहनेवाले इंडो-योरपियन दल अब फिर वहाँ से निकलकर इधर-उधर बढ़ने लगे। उनमें से कुछ लोगों ने ई० पू० ८५० के लगभग असीरिया के उत्तर-पश्चिम में वान-नामक झील के चारो तरफ़ एक नया राज्य स्थापित किया, जिसका नाम उरर्टू या कल्डिया था। यह राज्य उसी स्थान पर था, जिस स्थान पर आजकल आरमेनिया है। असीरिया का यह पड़ोसी राज्य भी उसे सदा तंग किया करता था, और इसका अस्तित्व ई० पू० ७१० तक बराबर बना रहा। पर इनसे भी बढ़कर ख़ानाबदोशों के वे दल थे, जो बराबर पश्चिम और पूर्व की ओर फैलते जाते थे, और असीरियावालों को सदा इस बात की आशंका बनी रहती थी कि ये लोग दक्षिण की ओर भी पहुँच जायँगे, और वहाँ से हमारे देश में प्रवेश करेंगे। इन दलों के दो मुख्य विभाग थे, जो इस प्रकार थे—

(क) पहले विभाग में तो सिम्मेरियन और सीदियन या शक लोग थे। ये लोग बिलकुल जंगली थे, और प्रायः अध-नंगे रहते थे। ये लोग जंगली घोड़ों की नंगी पीठ पर सवार रहते थे, और इनके पास बड़ी-बड़ी तलवारें रहती थीं, जिनके फल लंबे, भारी और पत्ती के आकार के होते थे। ये लोग जहाँ जाते थे, वहाँ लोगों को लूटते-पाटते थे, और उनके घरों आदि को जलाकर नष्ट कर डालते थे। वे लोग बहुत दिनों तक इधर-उधर घूमते रहे। उनके कारण पश्चिमी एशिया के निवासी बहुत ही भयभीत और त्रस्त रहते थे। पहले तो असीरियावालों ने लड़-भिड़कर

उन्हें रोकना चाहा, और जब इसमें उन्हें सफलता नहीं हुई, तब उनके साथ मित्रता स्थापित करने का प्रयत्न किया। पर चाहे लोग उन्हें अपना शत्रु समझते और चाहे मित्र, पर वे करते सदा मनमानी ही थे। ई० पू० ६५० के लगभग या इससे कुछ पहले ही वे लोग दक्षिण की ओर आने लगे, और सीरिया तथा पैलेस्टाइन में लूट-पाट करने लगे। इस प्रकार उन्होंने असीरियन साम्राज्य के पश्चिमी प्रांत नष्ट कर डाले।

(ख) असीरिया के पूर्व और उत्तर-पूर्व में भी कई दल रहते थे, जिनमें से मुख्य मीड और पारसी थे। उस समय तक ये लोग कुछ-कुछ सभ्य हो चुके थे। विशेषतः उनका धर्म कुछ उच्च कोटि का था। ई० पू० १००० के लगभग जो ज़रतुश्त-नामक एक व्यक्ति हुआ था, जिसने उन लोगों को यह सिखलाया था कि जीवन और कुछ नहीं, केवल भले और बुरे या सद् और असद् का संघर्ष है। उसका यह भी कहना था कि एक ओर तो सद् के देवता अहुरमज़्द और उनके फ़रिश्ते हैं, और दूसरी ओर असद् के देवता या दुरात्मा अहरिमन हैं, और उन दोनो में सदा लड़ाई होती रहती है; और उसी लड़ाई के कारण जीवन में भी सद् और असद् का संघर्ष चलता रहता है। ई० पू० ७०० से पहले मीड और फ़ारसवालों का धार्मिक विश्वास मुख्यतः इसी विचार पर निर्भर था, और उनका धर्म इसी सिद्धांत पर आश्रित था।

ये दल असीरिया और बैबिलोनिया के पूर्व तथा उत्तर-पूर्व की ऊँची पहाड़ी भूमि में रहते थे। वे लोग भिन्न-भिन्न दलों को मिलाकर उनका एक संघ बनाने के प्रयत्न में थे, और धीरे-धीरे दक्षिण-पश्चिम तथा पश्चिम की ओर फैल रहे थे। असीरिया के कई राजों ने उनकी गति रोकने का यत्न किया, पर उनकी गति बीच-बीच में कुछ समय के

लिये रुक जाती थी ; पर पूरी तरह से नहीं रुक सकती थी। असीरिया के पूर्व में जेगरोस-नामक पर्वत को पार करके वे लोग आगे बढ़ आए, और एलम के आस-पास के प्रदेश में भर गए। जैसा कि हम पहले बतला चुके हैं, असीरियनों ने पहले ही एलमवालों का पूरी तरह से नाश करके उनका देश ख़ाली कर दिया था ; और उस ख़ाली किए हुए प्रदेश में इन दलों को फैलने का बहुत अच्छा अवसर मिल गया। ई० पू० ६४० में वे इतने पास भी आ गए थे, और इतने बलवान् भी हो गए थे कि निनेवा पर आक्रमण कर सकते थे। एक बार तो वे लोग मार-पीटकर पीछे हटा दिए गए, पर फिर भी वे दिन-पर-दिन अधिक प्रबल होते जाते थे, और उनके कारण विपत्ति की आशंका बढ़ती जाती थी। अंत में ई० पू० ६१४ में उन लोगों ने अपने राजा सायक्सरीज़ के नेतृत्व में फिर निनेवा पर आक्रमण किया, और उसे चारो ओर से घेर लिया ; और दो वर्ष बाद ई० पू० ६१२ में काल्डियन तथा सीदियन या शक-सेनाओं की सहायता से उन्होंने निनेवा-नगर पर अधिकार करके उसे पूर्ण रूप से नष्ट कर डाला।

निनेवा का पतन होते ही असीरिया के साम्राज्य का भी अंत हो गया। यहाँ हम संक्षेप में यह भी बतला देना चाहते हैं कि असीरियन साम्राज्य के नाश के क्या-क्या कारण थे—

(१) वह साम्राज्य बहुत बड़ा और विस्तृत था ; और असीरिया-वालों में इतनी शक्ति नहीं थी कि वे सारा साम्राज्य सँभाल सकते और शत्रुओं से उसकी रक्षा कर सकते। असीरिया के राजा बहुत बड़े विजेता तो अवश्य थे, पर वे अपने साम्राज्य की ऐसी व्यवस्था करना नहीं जानते थे, जिससे सब अधीनस्थ प्रदेश मिलकर एक हो जाते, और असीरिया के राजों के प्रति राजभक्त बने रहते। उन अधीनस्थ प्रदेशों की प्रजा सदा विद्रोह करने के लिये प्रस्तुत रहती

थी ; और इन विद्रोहों को दबाने के लिये असीरियावालों को अपनी बहुत अधिक शक्ति व्यय करनी पड़ती थी।

(२) असीरियावाले सदा दूसरों के साथ युद्ध ही करते रहते थे, और यद्यपि उन युद्धों में प्रायः उनकी जीत ही होती थी, तो भी उनके आदमी धीरे-धीरे मरते और घटते जाते थे । जिस समय सीरियन साम्राज्य का अंत होने लगा था, उस समय सीरिया में बहुत ही थोड़े असली सीरियन बच रहे होंगे, और उन्हें अपनी सेनाओं में दूसरी जातियों के आदमी भरने पड़े होंगे। इसके अतिरिक्त एक बात और थी। सीरियावालों को सदा युद्ध-क्षेत्र में ही रहना पड़ता था, इसीलिये उन्हें अपनी खेती-बारी या व्यापार आदि का काम देखने का बहुत ही कम समय मिलता था, और वे ऐसे काम नहीं कर सकते थे, जिनसे कोई राष्ट्र संपन्न और प्रबल हो सकता है। ये सब काम तो उसी समय हो सकते हैं, जब बीच-बीच में शांति-पूर्वक बिताने के लिये कुछ समय और इन सब बातों पर विचार करने का अवसर मिलता रहे।

(३) बहुत अधिक संभावना इसी बात की है कि असीरियावाले उत्तर की ओर से आनेवाले दलों को सदा के लिये कभी रोक नहीं सकते थे। उत्तरी दल बहुत बलवान् भी थे, और उनमें आदमी भी बहुत अधिक होते थे। पर यदि असीरिया ने इतना बड़ा साम्राज्य स्थापित करने का प्रयत्न न किया होता, और उसने अपनी सारी शक्ति युद्ध में ही व्यय न कर डाली होती, तो वह उत्तरी दलों नी जल्दी अपने यहाँ न घुसने देता । उस दशा में भी असीरिया में उत्तरी दलों का प्रवेश तो अवश्य होता, पर वे लोग धीरे-धीरे आते, और या तो प्रजा बनकर आते या मित्र बनकर । पर उस समय असीरिया की परिस्थिति ही ऐसी हो गई थी कि उत्तरी दलों के सामने उनका राज्य उसी

प्रकार नष्ट हो गया, जिस प्रकार लड़कों का ताश का बनाया हुआ घर ढह जाता है, और असीरियन लोगों का संसार से पूरा-पूरा लोप ही हो गया।

जिस समय निनेवा का पतन हुआ, उस समय सारा एशिया मारे आनंद के फूला न समाया। इस संबंध में पैग़ंबर नहुन का कथन (तीसरा अध्याय, सातवाँ और उसके आगे के पद्य) और पैग़ंबर जेफ़ानिया का कथन (दूसरा अध्याय, तेरहवाँ और उसके आगे के पद्य) देखने-योग्य है। जो बातें इन लोगों के मुँह से निकली थीं, वही सारे एशिया के मुँह से निकली होंगी। अंत में असीरिया का सदा के लिये पूरा-पूरा नाश हो गया, और वह संसार में कोई ऐसी चीज़ नहीं छोड़ गया, जिसके कारण लोग उसके लिये कुछ दुःख करते। मिस्रियों, बैबिलोनियों, फ़िनीशियनों, आरामियों और इबरानियों या यहूदियों का संसार पर कुछ-न-कुछ ऋण है, और इनमें से कुछ का तो संसार बहुत अधिक ऋणी है; पर असीरियावालों ने संसार को एक भी बात नहीं सिखलाई थी। उनका इतिहास और उनका भाग्य बस इसी बात का बहुत अच्छा उदाहरण था कि जो लोग हाथ में तलवार उठाते हैं, वे स्वयं भी तलवार के ही घाट उतरते हैं; और जो साम्राज्य केवल युद्ध करके बहुत बड़ा होता है, उसका अंत भी युद्ध के ही कारण होता है, और वह अपने, पीछे एक भी काम की चीज़ नहीं छोड़ जाता।

---

४. खाल्डिया और पारस के साम्राज्य

असीरिया का पतन तो हो ही चुका था, अब उसके साम्राज्य का उत्तराधिकारी कौन होता ? सबसे पहले मिस्रवालों ने सोचा कि हम लोग उसका कुछ अंश लेने का प्रयत्न करें । ई० पू० ६०४ में, राजा नीको के नेतृत्व में, मिस्र की एक बड़ी सेना उत्तर की ओर बढ़ती हुई फ़रात-नदी तक जा पहुँची । पर वहाँ करकमिश-नामक स्थान में उसे खाल्डियनों का मुक़ाबला करना पड़ा, जो नेबुशद्नज़र के नेतृत्व में उससे लड़ने आए थे। वहाँ मिस्री सेना हार गई, और भागी हुई सीधी मिस्र में आ पहुँची । अब मिस्रियों में इतना साहस ही नहीं रह गया था कि वे फिर इस प्रकार का कोई प्रयत्न करते ।

इस प्रकार असीरिया का साम्राज्य नष्ट होने पर उन्हीं दोनो शक्तियों में बँट गया, जिन्होने मुख्यतः उसका नाश किया था। वे दोनो शक्तियाँ मीडों और खाल्डियनों की थीं । मीड लोगों ने असीरिया पर अधिकार करके उत्तरी एशिया का भी बहुत-सा अंश ले लिया, और वे हेलिस-नदी तक जा पहुँचे, जो लीडिया के राज्य की पूर्वी सीमा थी । इधर उनके चचेरे भाई पारसी एलम के मालिक बन गए । खाल्डियन लोगों ने बैबिलोनिया भी ले लिया, और असीरिया के समस्त पश्चिमी प्रांतों पर भी अधिकार कर लिया, और नेबुशद्नज़र की अधीनता में एक साम्राज्य स्थापित किया, जो प्रायः पचास वर्षों तक रहा । नेबुशद्नज़र ने पश्चिमी प्रांतों की शीघ्र ही बहुत अच्छी व्यवस्था कर डाली । जूडावाले

अभी तक कुछ-न-कुछ उपद्रव मचाए चलते थे, इसलिये उसने उनका भी सदा के लिये अंत कर देना निश्चित किया। ई० पू० ५८६ में उसने जेरूसलम पर अधिकार करके उसे जला डाला, और वहाँ से वह बहुत-से यहूदियों को क़ैद करके बैबिलोनिया ले गया।

नेबुशदनजर बहुत बड़ा राजा था। यद्यपि वह प्रायः सेनाएँ लेकर दूसरे देशों पर चढ़ाइयाँ भी करता था, पर फिर भी वह शांति-काल की कलाओं की उन्नति करने में विशेष रूप से दत्तचित्त रहता था। उसके शासन-काल में बैबिलोन-नगर का विस्तार बहुत बढ़ गया था, और उसने वहाँ अनेक विशाल राजभवन तथा मंदिर आदि बनवाकर और उस नगर को बड़ी-बड़ी दीवारों से घिरवाकर तथा उनमें बड़े-बड़े फाटक बनवाकर नगर का सौंदर्य बहुत अधिक बढ़ा दिया था। उसने अपने राजमहल की छत पर बहुत ही आश्चर्य-जनक और सुंदर बाग़ लगाए थे, जो सीढ़ीनुमा थे, और कई दरजों में विभक्त थे। यूनानी लोग उन बाग़ों को बैबिलोन के 'झूलना बाग़' कहते थे, और उनकी गणना संसार के सात परम आश्चर्य-जनक पदार्थों में की जाती है। उसके समय में वाणिज्य-व्यवसाय और कला-कौशल आदि की बहुत अधिक उन्नति हुई थी। सब प्रकार की पुस्तकें और खाते आदि एकत्र भी किए गए थे, और नए भी तैयार कराए गए थे। आकाशीय ग्रहों आदि की गणना और विशेषतः गणित ज्योतिष में खाल्डियन लोगों ने बहुत अधिक उन्नति की थी। यह ठीक है कि तब तक किसी ने यह सिद्धांत स्थिर नहीं किया था कि ग्रह आदि ही सूर्य की परिक्रमा करते हैं, पर फिर भी खाल्डियन लोगों ने ही पहलेपहल आकाशीय ग्रहों और नक्षत्रों आदि के नक़्शे तैयार किए थे, और उनकी गति-विधि आदि का इतना अधिक निरीक्षण और अध्ययन कर लिया

था कि वे पहले से ही बतला देते थे कि किस दिन और किस समय कौन-सा ग्रहण होगा।

नेबुशदनजर का साम्राज्य बहुत अच्छा और उन्नत था। पर ज्यों ही उसकी मृत्यु हुई (ई० पू० ५६२), त्यों ही वह साम्राज्य खंड-खंड होने लगा। उसकी मृत्यु के बाद के कुछ वर्षों का बेबिलोन का कोई इतिहास हमें नहीं मिलता; पर ऐसा जान पड़ता है कि उन दिनों वहाँ सभी प्रकार के षड्यंत्र आदि आरंभ हो गए थे, क्योंकि उसके बाद जो तीन राजा हुए, उनमें से दो तो मार डाले गए, और तीसरा राजा केवल चार वर्ष राज्य करने के बाद मर गया। खाल्डिया के अंतिम राजा ने, जिसका नाम नबोनिडस था, अपना बहुत-सा समय ग्रंथ आदि पढ़ने और प्राचीन धर्मों का अध्ययन करने में ही बिताया था, और वह अपना अधूरा काम अपने लड़के बेलशजर के पूरा करने के लिये छोड़ गया था। इस प्रकार वह राज्य अंदर-ही-अंदर क्षीण होने लगा।

इस बीच में दूसरे साम्राज्य पर भी, जो मीडों का था, चारो ओर से अनेक प्रकार की विपत्तियाँ आ रही थीं। अब तक तो मीडों के मुक़ाबले में पारसवालों का महत्त्व बहुत ही कम था, पर अब पारसवालों की शक्ति भी धीरे-धीरे बढ़ने लग गई थी। एलम में अनशन नाम का एक ज़िला था, जिसमें साइरस नाम का एक पारसी राजा राज्य करता था। ई० पू० ५५३ में साइरस इतना बलवान् हो गया कि उसने मीडों के राजा को राजसिंहासन से उतार दिया, और मीडों तथा पारसियों का एक संयुक्त राज्य स्थापित करके वह स्वयं उसका राजा हो गया। साइरस अनेक गुणों से संपन्न व महापुरुष था, इसलिये उसने अपना साम्राज्य बहुत जल्दी बढ़ा लिया। असीरिया के प्राचीन देश के पश्चिम में जितने ज़िले थे, उन सब पर उसने तुरंत ही अधिकार कर लिया। ई० पू० ५४५ में

उसने हेलिस-नदी को पार करके लीडिया में प्रवेश किया, वहाँ के राजा क्रोइसस को परास्त किया, उसकी राजधानी सारडिस पर अधिकार कर लिया, और उसका सारा देश अपने साम्राज्य में मिला लिया। इसके उपरांत वह सुख-पूर्वक आगे बढ़ने लगा, और ज्यों-ज्यों अवसर मिलता गया, त्यों-त्यों एशिया माइनर के तट पर बसे हुए यूनानी नगरों पर अधिकार करने लगा। इस प्रकार वह एलम से लेकर ईजियन समुद्र तक समस्त उत्तरी एशिया का स्वामी बन गया।

इसके बाद उसने बैबिलोन की तरफ़ रुख़ किया, और ई० पू० ५३८ में उसने उस नगर में विजेता के रूप में प्रवेश किया। इस प्रकार उस खाल्डियन साम्राज्य का, जो पश्चिमी एशिया के आरंभिक साम्राज्यों में से अंतिम सेमेटिक साम्राज्य था, अंत हो गया। इधर हज़ारों वर्षों से पर्वत-निवासियों और रेगिस्तान के रहनेवालों में जो झगड़ा चला आ रहा था, उसमें अंत में पर्वत-निवासियों की जीत हो गई। इंडो-योरपियन लोगों ने सेमाइट लोगों पर विजय प्राप्त कर ली।

अब साइरस एक पारसी राजा के रूप में बहुत बड़े साम्राज्य पर शासन करने लगा। उसका साम्राज्य एक ओर तो भारत की सीमा के पास तक पहुँच गया था, और दूसरी ओर एशिया माइनर के तट और मिस्र की सीमा तक विस्तृत था। ई० पू० ५३६ में उसने यहूदियों को फिर से उनका देश दे दिया; पर उस समय तक यहूदियों की संख्या बहुत ही घट गई थी, और वे लोग अब उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं दे सकते थे। ई० पू० ५२५ में उसका लड़का कॅबिसस और भी आगे बढ़ गया, और उसने जाकर मिस्र पर आक्रमण किया। उस समय तक मिस्र भी फिर से कुछ अधिक बलवान् और संपन्न हो गया था, और उसने फिर से अपना एक

बड़ा समुद्री बेड़ा तैयार कर लिया था। पर फिर भी पारसी सेना के सामने मिस्रवाले नहीं ठहर सके। कैंबिसेस ने मिस्र पर विजय प्राप्त कर ली, और मिस्र के राजा के रूप में अपना राज्याभिषेक कराया। उस समय पारसी साम्राज्य का जितना अधिक विस्तार था, उतना अधिक विस्तार उससे पहले संसार में और किसी साम्राज्य का नहीं हुआ था।

पारसी लोग सभी दृष्टियों से बहुत अच्छे होते थे। उस समय उनके सैनिक और विशेषतः तीरंदाज़ और घुड़सवार सारे संसार में सबसे बढ़कर थे। जिन राष्ट्रों को उन्होंने जीता था, उनसे भी उन्होंने बहुत-सी बातें सीखी थीं। बैबिलोन और असीरिया से उन्होंने बड़ी-बड़ी इमारतें बनाना सीखा था, और साथ ही आश्चर्य-जनक मूर्तियाँ तथा दरजेदार बाग़ बनाने भी सीखे थे। मिस्रियों से उन्होंने खंभों की श्रेणियाँ बनाना और लुकदार चमकीली ईंटों से अपनी इमारतों की दीवारें सजाना सीखा था। वे जो नगर बनाते थे, वे भी बहुत सुंदर होते थे। यद्यपि उनकी राजधानी सूसा-नामक नगर में थी, पर फिर भी उनके बादशाह बैबिलोन में भी रहा करते थे। उन्होंने एलम में पसरगदई और परसेपोलिस आदि कई नए और अच्छे नगर भी बसाए थे। यद्यपि पारसी लोग अपनी पुरानी पारसी-भाषा का भी व्यवहार करते थे, तथापि उनके सारे साम्राज्य में अधिकतर आरामी-भाषा ही बोली जाती थी।

परंतु पारसियों के लिये सबसे बड़ी और विशेष शोभा की बात यह थी कि वे अपने अधीनस्थ प्रांतों की व्यवस्था बहुत ही अच्छे ढंग से करते थे, और असीरियावालों की तरह उन्हें केवल अपने सैनिक बल से ही अपने अधिकार में नहीं रखते थे। कैंबिसेस की मृत्यु के उपरांत ई० पू० ५२२ में दारा-

नामक प्रसिद्ध बादशाह उसका उत्तराधिकारी हुआ था। दारा ने अपना सारा साम्राज्य बीस प्रांतों में विभक्त किया था। जिन्हें वह 'सत्रपी' (एक सत्रप के अधिकार में रहनेवाला प्रांत) कहता था। प्रत्येक प्रांत में उसका एक गवर्नर या 'सत्रप' (संस्कृत रूप 'क्षत्रप') रहा करता था। इन प्रांतों में अनेक प्रकार की जातियों के लोग बसते थे, और उन सभी लोगों के साथ बहुत ही न्यायपूर्वक व्यवहार होता था; और जब तक वे लोग अपना राज-कर ठीक तरह से देते रहते थे, और पारसी सेना के लिये अपने हिस्से के निश्चित सैनिक भेजा करते थे, तब तक पारसी गवर्नर उनके साथ किसी प्रकार की छेड़-छाड़ नहीं करते थे, और उन्हें स्वतंत्रता का बहुत कुछ भोग करने देते थे। पारसियों ने बहुत बड़ी-बड़ी सड़कें भी बनाई थीं, जो उनके साम्राज्य के भिन्न-भिन्न भागों में गई थीं। उनके राजों के पास प्रांतों से डाक ले आने और प्रांतों में ले जाकर डाक पहुँचाने के लिये हरकारों आदि की भी बहुत अच्छी व्यवस्था थी। इसके अतिरिक्त जब राजा ने अपने समुद्री तटों की रक्षा के लिये एक समुद्री बेड़े की आवश्यकता का अनुभव किया, तब उसने मिस्री और फिनीशियन जहाज़ों का एक बेड़ा तैयार किया, और उसमें दोनो ही देशों के नाविक रक्खे (यहाँ यह बात ध्यान में रखने की है कि यद्यपि फिनीशियनों पर पारसियों ने कभी विजय नहीं पाई थी, तो भी पारसी राजों के साथ उनका मित्रता-पूर्ण व्यवहार रहता था।)। इस प्रकार उस समय एशिया के एक साम्राज्य ने भूमध्यसागर में पहलेपहल अपना एक बहुत बड़ा बेड़ा तैयार किया था, और अपनी समुद्री शक्ति स्थापित की थी।

पारसी लोगों ने ये सब काम बहुत ही सोच-विचारकर और बहुत ही अच्छे ढंग से किए थे। पर फिर भी इसमें संदेह नहीं कि वह

साम्राज्य सदा एक आदमी पर निर्भर रहता था। उसकी सब बातें एकमात्र राजा पर ही निर्भर थीं। यदि राजा सचमुच योग्य और अच्छा शासक होता था, तो सब बातें बहुत अच्छी तरह चली चलती थीं, पर यदि वह अकर्मण्य या मूर्ख होता, तो फिर साम्राज्य का बल भी अवश्य ही बहुत घट जाता। जब ई० पू० ४८५ में दारा की मृत्यु हो गई, तब उसके बाद जितने पारसी राजा हुए, वे सब संयोग से प्रायः बिलकुल ही अयोग्य सिद्ध हुए। इसका परिणाम यही हुआ कि पारसी सैनिक धीरे-धीरे सुस्त होने लग गए, और उनके सेनापति निकम्मे होते चले गए। प्रांतों के निवासी प्रायः विद्रोह करने लगे, और सत्रप लोग राजद्रोही हो गए। इस प्रकार पारसी साम्राज्य धीरे-धीरे क्षीण होने लगा। यदि उसी समय वह पूर्ण रूप से छिन्न-भिन्न नहीं हो गया, तो इसका कारण यही था कि तब तक कोई ऐसा आदमी तैयार नहीं हुआ था, जो उसे छिन्न - भिन्न कर सकता। पश्चिमी एशिया के निवासी बहुत ही शिथिल हो चुके थे, और एशिया एक नए स्वामी की प्रतीक्षा कर रहा था। अभी तक यह निश्चित नहीं हुआ था कि उसका वह नया स्वामी कौन होगा, पर इस बात की बहुत कुछ संभावना थी कि वह स्वामी पश्चिम की ओर से आवेगा। पश्चिमी एशिया के आधिपत्य के लिये रेगिस्तान के रहनेवाले और पर्वत-निवासी प्रायः ढाई हज़ार वर्षों से आपस में लड़ते चले आ रहे थे। पर अब वह समय आ गया था, जब कि समुद्र-तटों के निवासी भी इस झगड़े में हाथ डालते और दोनो पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न करते।

जब साइरस ने एशिया माइनर के यूनानी नगरों पर आक्रमण किया था, तब उसका संपर्क एक योरपियन जाति के साथ हुआ था। उसी समय सबसे पहले एक योरपियन जाति के साथ एक

रोमन-सेना के प्रकार

(रोम में एंटोनिनस के स्तंभ के आधार पर से)

एशियाई शक्ति की मुठभेड़ हुई थी। अगले प्रकरण में हम फिर प्राचीन काल की कुछ बातों का वर्णन करेंगे, और पाठकों को यह बतलावेंगे कि यूनानी लोगों का प्राचीन इतिहास क्या था; और तब पाठक लोग यह जानेंगे कि योरप और एशिया का संघर्ष किस प्रकार चला था। पर इससे पहले हम यहाँ संक्षेप में एक बात और बतला देना चाहते हैं, जिससे पाठक लोग भली भाँति यह समझ लें कि इस प्राचीन इतिहास का, जिसका वर्णन हमने अब तक किया है, यूनान और रोम के इतिहास के साथ क्या और कैसा संबंध था।

यों तो सारा देश यूनान कहलाता है, पर मुख्य यूनान उसका वह प्रदेश है, जो हेल्लास कहलाता है। उस मुख्य यूनान के रहने-वाले यूनानी कभी इतने बलवान् नहीं हुए थे, और न उनमें कभी ऐसा एका ही हुआ था कि वे पारस को कोई भारी क्षति पहुँचा सकते। जैसा कि पाठकों को आगे चलकर मालूम होगा, वे लोग इतने समर्थ अवश्य थे कि पारसियों को पश्चिम में अधिक दूर तक आगे बढ़ने से रोक सकते थे, और ऐसी बाधा खड़ी कर सकते थे, जिसमें वे ईजियन-समुद्र के स्वामी न हो सकते। पर वे पारस-वालों को कोई ऐसी चोट नहीं पहुँचा सकते थे, जिससे पारसवालों की शक्ति घट सकती। पर जब उत्तरी यूनान में मेसिडोनिया का राज्य सुप्रसिद्ध वीर और विजयी सिकंदर के हाथ में आया, (ई० पू० ३३६) और उसने समस्त यूनानियों का नेतृत्व ग्रहण किया, तब पश्चिम में कम-से-कम एक ऐसी बलवती शक्ति अवश्य खड़ी हो गई थी, जिसके पास जल और स्थल दोनो की सेनाएँ थीं, जो एशिया की सीमा पार करके पारस के मर्म-स्थल पर आक्रमण कर सकती थी। और, जब यह घटना घटी, तब पारसी साम्राज्य उस नवीन शक्ति की गोद में उसी प्रकार आ पड़ा, जिस

प्रकार पेड़ से पका हुआ फल गिरकर सामने आ पड़ता है। ई० पू० ३२२ में सिकंदर की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के उपरांत उसका राज्य उसके सेनापतियों में बँट गया, और मेसिडोनिया, मिस्र तथा सीरिया के तीन नए राज्य स्थापित हुए। ये तीनो राज्य आपस में ही लड़ने-भिड़ने और एक दूसरे को कमज़ोर करने लगे। इसके बाद अंत में वे रोमन लोग रंगस्थल पर आए, जो इस बीच में बराबर दिन-पर-दिन बलवान् हो रहे थे, और बढ़ते जा रहे थे। वही रोमन लोग क्रम-क्रम से आगे बढ़े, और यूनानी तथा पूर्वी संसार पर विजय प्राप्त करने लगे। अतः हम कह सकते हैं कि इस आरंभिक संसार में एशिया का सबसे बड़ा और अंतिम साम्राज्य पारसवालों का था। इसी समय से संसार का भविष्य योरपियन लोगों के हाथ में आने लगा था।

दूसरा भाग

यूनान

१. यूनान का आरंभिक युग

ग्रीस या यूनान का पुराना नाम हेल्लास था। आजकल के यूनान की अपेक्षा यह एक बहुत छोटा देश था। आधुनिक यूनान में मेसिडोनिया, थिसली, अकरनेनिया और एटोलिया आदि जो कई प्रांत हैं, वे प्राचीन काल में इतने अधिक जंगली और असभ्य थे कि वे मुख्य हेल्लास के प्रांत ही नहीं माने जाते थे। हाँ, यह बात दूसरी थी कि उन प्रांतों में भी यूनानी रक्त से ही उत्पन्न जातियाँ बसती थीं। मुख्य हेल्लास उस रेखा के दक्षिण में पड़ता था, जो कोरिंथियन खाड़ी पर के नोपेक्टस-नामक स्थान से मेलियक खाड़ी के थरमापिली-नामक स्थान तक गई है। इस रेखा के बाहर संसार का जो शेष भाग था, वह सब यूनानियों की दृष्टि से बर्बरों का था, क्योंकि जो लोग यूनानी नहीं होते थे, उन सबको यूनानी लोग बर्बर ही कहा करते थे।

पर जिस प्रकार मिट्टी के ढेर में भी कहीं-कहीं जवाहरात छिपे हुए पड़े रहते हैं, उसी प्रकार उन बर्बर देशों में भी असली और सभ्य यूनानियों की कुछ बस्तियाँ बसी हुई थीं। ईजियन समुद्र के टापू, सिसली और दक्षिणी इटली के यूनानी नगर तथा एशिया माइनर और कृष्ण सागर के तटों पर के यूनानी नगर आदि यद्यपि हेल्लास के अंतर्गत नहीं थे, पर फिर भी वे हेल्लास के ही बाहरी भाग माने जाते थे। और, इसका कारण

यही था कि उन स्थानों में भी ऐसे यूनानी लोग बसे थे, जो यूनानी भाषा बोलते थे, और जिनकी सभ्यता भी यूनानी ही थी।

हेलेंज़ाम में यूनानियों के पहुँचने से पहले ही वहाँ के मूल तथा प्राचीन निवासी और उसके आस-पास के टापुओं के रहनेवाले लोग बहुत कुछ संपन्न और सभ्य हो चुके थे। जान पड़ता है, ईसा से तीन हज़ार वर्ष पूर्व, और शायद इससे भी कुछ पहले से ही, क्रीट एक सुंदर और अच्छी सभ्यता का केंद्र था, जो सभी टापुओं और सारे यूनान में फैली हुई थी। इन लोगों के नाम का तो अभी तक पता नहीं चला है, पर फिर भी इतना ज्ञात है कि ये लोग उस समय भी एशिया माइनर और मिस्र के साथ व्यापार आदि करते थे। क्रीट में भी कई स्थानों पर और उसके आस-पास भी अनेक स्थानों पर उन अद्भुत राजमहलों के खँडहर पाए गए हैं, जो उन लोगों ने बनाए थे; और साथ ही उन खँडहरों में अनेक प्रकार के बहुत सुंदर मिट्टी के बरतन, कमरे आदि सजाने के सामान, हथियार, गहने और पत्थर पर की हुई नक़ाशियाँ आदि मिली हैं। वे लोग मुख्यतः काँसे का ही व्यवहार करते थे। हमें पता चलता है कि उन लोगों ने सभ्य जीवन की बहुत-सी कलाओं और शिल्पों आदि का बहुत अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। फिनीशिया के व्यापारी तथा स्वयं उनके यहाँ के व्यापारी भी मिस्र और एशिया तक से उनके लिये तरह-तरह की चीज़ें लाया करते थे, और उन चीज़ों को देख-देखकर वे लोग अपने व्यवहार के लिये वैसी ही चीज़ें तैयार करते थे। यह सभ्यता आजकल साधारणतः मिनोअन सभ्यता कहलाती है। यह नाम राजा मिनोस के नाम पर रक्खा गया है, और प्राचीन कथानकों के अनुसार मिनोस प्राचीन काल के क्रीट के एक राजा का नाम था। इन लोगों के प्राचीन

नगरों के खँडहरों में जो बची-खुची चीज़ें मिली हैं, उनके आधार पर जो कुछ कहा जा सकता है, वह तो यहाँ कह ही दिया गया है। पर इसके अतिरिक्त इनके संबंध में निश्चित रूप से और कोई बात नहीं बतलाई जा सकती, और न यही कहा जा सकता है कि ये लोग किस प्रकार जीवन-निर्वाह करते थे। हाँ, यूनान के सुप्रसिद्ध अंध कवि होमर की कविताओं में (जो संभवतः ई० पू० ८०० में लिखी गई थी) कहीं-कहीं इस विषय का कुछ वर्णन अवश्य मिलता है कि उन लोगों की रहन-सहन कैसी थी।

ई० पू० १२०० और १००० के मध्य में यह मिनोअन सभ्यता पहले तो क्रीट में और तब अंत में हेलास में भी नष्ट हो गई। इस सभ्यता का नाश उन आक्रमणकारियों ने किया था, जो उत्तर की ओर से आए थे। ये लोग स्थल के मार्ग से भी आए थे, और जल के मार्ग से भी। और, आते ही सारे हेलास तथा उसके आस-पास के टापुओं में बिलकुल भर गए थे। ये आक्रमणकारी वही यूनानी थे; और अब हम आगे उन्हीं के उत्तराधिकारियों के संबंध की कुछ बातें बतलाएँगे।

हम लोग इस बात का केवल अनुमान ही कर सकते हैं कि यूनानी लोग वहाँ किस प्रकार आए, क्योंकि इसका कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता। पुराने कथानकों में हमें डोरियन, आयोनियन और आयोलियन आदि कई भिन्न-भिन्न दलों या वर्गों आदि के नाम मिलते हैं। जिस समय से इन सब दलों या वर्गों का एक सम्मिलित नाम 'यूनानी' पड़ा है, उस समय इस जाति के सब लोग रूप-रंग और गुण आदि में भी एक समान न थे। इन सब बातों में उनमें परस्पर बहुत भेद थे। एथीनियन लोग फुर्तीले और चालाक थे, स्पार्टावाले मितभाषी और गंभीर थे, बोयोशियावाले सुस्त और नासमझ थे और

आरकेडियन लोग बोदे तथा अक्खड़। पर यह बात निश्चित है कि यूनानियों के सभी वर्ग मूलतः एक ही थे, और सब एक ही वंश की भिन्न-भिन्न शाखाएँ थे। वे सभी अपने को हेल्लेनीस कहते थे। यद्यपि उन सब वर्गों के बोलने के ढंग अलग-अलग थे, पर फिर भी वे सब एक ही भाषा बोलते थे। बहुत संभव है, तीन-चार शताब्दियों तक यूनानी जाति की भिन्न-भिन्न शाखाएँ उत्तर की ओर से आ-आकर सारे हेल्लास में बसती गई हों। पर यह बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि सबसे अंत में आनेवाली उनकी शाखा डोरियनों की थी। जब यूनानियों का कोई नया वर्ग या नई शाखा कहीं आकर बसना चाहती थी, तब वह उस स्थान पर पहले से बसे हुए वर्ग या शाखा को वहाँ से भगा देती थी। ऐसे वर्गों के बहुत-से लोगों ने एट्टिका-नामक प्रांत में जाकर शरण ली थी। और, वहाँ के मैदान में जो लोग पहले से बसते थे, उन्हीं में ये यूनानी भी जाकर मिल गए थे, और अंत में इन्होंने वहाँ के उन मूल-निवासियों पर अपना प्रभुत्व भी जमा लिया था। पहले से आए हुए जो और यूनानी थे, उनमें से कुछ लोग समुद्र पार करके इयूबिया, आस-पास के दूसरे टापुओं तथा एशिया माइनर में भी चले गए थे, और वहाँ वे मिलेटस, फोकेइया और क्लेजोमेनाई आदि स्थानों में बस गए थे। इस प्रकार जितने यूनानियों ने भागकर और दूसरे स्थानों में जाकर शरण ली थी, वे सब अपने को आयोनियन कहते थे। डोरियन लोग प्रायः पेलोपोनीज़ में ही बसे थे, और आरगोस, स्पार्टा, कोरिंथ, मेगारा और सिसियन आदि उनके प्रधान नगर बन गए। कोरिंथियन की खाड़ी के दक्षिण में एलिस, आरकेडिया तथा अकेइया आदि स्थानों और उक्त खाड़ी के उत्तर में लोकरिस, फोकिस और बोयोशिया-नामक स्थानों में जो लोग बसे थे, वे आयोलियन कहलाते हैं।

यूनानी वर्गों के इस प्रकार एक स्थान से दूसरे स्थान पर हटने-बढ़ने और किसी स्थान पर निश्चित रूप से जमकर बसने का अंत ई० पू० १००० के लगभग हो गया होगा। उसी समय से सब यूनानी लोग अपने-अपने स्थान पर स्थायी रूप से बस गए थे। पर कभी किसी एक शासन-प्रणाली की अधीनता में उनका कोई एक राष्ट्र नहीं बना। डोरियन लोग सदा आयोनियनों को घृणा की दृष्टि से देखा करते थे। यूनानियों की भिन्न-भिन्न बस्तियाँ भी आपस में लड़ने-भिड़ने के लिये सदा तैयार रहा करती थीं। पर फिर भी जो लोग यूनानी नहीं थे, उन्हें यूनानियों की सभी शाखाएँ बहुत ही तुच्छ समझती और घृणा की दृष्टि से देखती थीं। यदि किसी बर्बर शत्रु से उन्हें अपने किसी प्रकार के अनिष्ट आदि की आशंका होती थी, तो वे सब आपस में मिलकर उसका मुक़ाबला करने के लिये भी तैयार रहते थे। पर साथ ही कई बार ऐसा भी हुआ है कि एक वर्ग स्वयं अपने लाभ के विचार से अपने साथियों और सजातियों को धोखा देकर किसी विदेशी आक्रमणकारी के साथ भी मिल गया है। यद्यपि वे लोग आपस में एक दूसरे को भाई-बंद ही समझते थे, तो भी वे आपस में किसी के साथ स्थायी और दृढ़ रूप से मेल नहीं करते थे। वे लोग कभी किसी बड़े राज्य या साम्राज्य के अंगों या सदस्यों के रूप में नहीं रहना चाहते थे। वे अपने छोटे-छोटे नगर-राज्यों में ही रहना अच्छा समझते थे। प्रत्येक नगर-राज्य के केंद्र में एक बड़ा नगर होता था, और उसके चारो ओर कई छोटे-छोटे क़स्बे और गाँव होते थे। वे लोग ऐसे ढंग से रहना पसंद करते थे, जिसमें हरएक आदमी प्रत्यक्ष रूप से यह जान सके कि हम पर कौन-कौन लोग शासन करते हैं, और किस प्रकार का व्यवहार करते हैं। कोई आदमी केंद्र से बहुत दूर नहीं रहना चाहता था। प्रत्येक नगर-राज्य अपने शासन आदि के

सब काम स्वयं ही करता और किसी दूसरे को अपने कामों में दख़ल नहीं देने देता था। जब कभी किसी नगर-राज्य के कुछ लोग कहीं विदेश में या समुद्र-पार चले जाते थे, और किसी दूसरी जगह अपना नया यूनानी नगर बसा लेते थे, तब भी उनका यह नया उपनिवेश तुरंत ही अपनी एक नई सरकार बना लेता था, और उसी से अपने सब शासन-कार्य चलाता था। एक नवीन यूनानी उपनिवेश सदा एक नया स्वतंत्र नगर-राज्य बन जाता था, और उस नगर का अधीनस्थ नहीं होता था, जिस नगर से वह उपनिवेश बसानेवाले लोग आए थे।

संयोग से भौगोलिक दृष्टि से भी यूनान एक ऐसा देश है, जिसमें इस प्रकार की स्थानिक स्वतंत्रता का भली भाँति निर्वाह हो सकता है। यूनान के तट पर प्रायः सभी स्थानों में समुद्र की छोटी-छोटी खाड़ियाँ हैं, जो स्थल के अंदर बहुत दूर तक चली गई हैं, जिससे उस देश के बहुत-से विभाग हो गए हैं। इसके अतिरिक्त वह देश कोरिंथ के भूडमरूमध्य पर बीच से प्रायः आधा-आधा कटा हुआ भी है, और वहाँ चारो तरफ़ ऐसे पहाड़ हैं, जो हरएक तराई या मैदान को दूसरी तराई या मैदान से बिलकुल अलग रखते हैं। ऐसे देश में लोगों को स्वभावतः छोटे-छोटे दलों में रहना पड़ता है। और, इन अलग-अलग दलों के लिये आपस में एक दूसरे को अच्छी तरह जानना या एक दूसरे के साथ मिलकर काम करना बहुत ही कठिन होता है। वहाँ की ज़मीन भी पथरीली है, जिसमें बहुत ही थोड़ी चीज़ें पैदा हो सकती हैं। हेल्लास के यूनानी लोग अनाज, शराब, जैतून और मछली से ही अपना निर्वाह करते थे, मांस बहुत ही कम खाते थे। वे लोग या तो दूसरे देशों पर विजय प्राप्त करके या उनके साथ व्यापार करके ही धनवान् हो सकते थे। और, यदि वे व्यापार करना चाहते, तो उनका व्यापार

समुद्र के मार्ग से ही हो सकता था, क्योंकि यूनान की सड़कें पहाड़ी और ऊबड़-खाबड़ हैं।

जब यूनानी लोग अच्छी तरह जमकर बस गए, और उनके नगर उन्नत हो गए, तब वे लोग भूमध्य के अन्यान्य भागों में अपने नवीन नगर या उपनिवेश स्थापित करने के लिये अपने यहाँ से आदमियों को भेजने लगे। जिस स्थान पर उन्हें अच्छा बंदरगाह और ख़ाली जगह मिलती थी, उस स्थान पर वे अपना एक नया नगर-राज्य स्थापित करके बस जाते थे। कभी-कभी कोई नगर स्वयं भी ऐसे लोगों को दूसरे स्थानों पर नगर-राज्य स्थापित करने के लिये भेजता था, और तब वह नया उपनिवेश अपने पुराने नगर-राज्य के साथ व्यापार आदि करके यूनानी व्यापार बढ़ाता और फैलाता था। कभी-कभी ऐसा होता था कि किसी कारण से कुछ नगर-निवासी मिलकर अपना एक दल बना लेते थे, और किसी नए अच्छे स्थान की तलाश में निकल पड़ते थे। लोगों को इस प्रकार दूसरे स्थानों पर भेजकर उपनिवेश स्थापित करने की यह क्रिया ई० पू० ७५० के लगभग आरंभ हुई थी, और प्रायः दो सौ वर्षों तक होती रही थी। यहाँ हम इस प्रकार के कुछ उपनिवेशों के नाम भी दे देते हैं। सिसली में सायराक्यूज़ और सेलिनस, इटली में टेरेंटम और रहोड्स का टापू (जिसमें डोरियन लोग जाकर बसे थे), सिसली में लियोंटिनी, एशिया माइनर में आयोनियन लोगों के बसाए हुए एबीडोस और लैंप्सैकस (जो कृष्ण सागर के पास थे) तथा इटली में आयोसियंस लोगों के बसाए हुए कोटन और साइबरिस। कभी-कभी ऐसा भी होता था कि ये नए बसे हुए नगर या उपनिवेश उन नगरों की अपेक्षा भी कहीं अधिक संपन्न और विस्तृत हो जाते थे, जिन नगरों के निवासी आकर उन्हें बसाते थे। तब ये नए नगर अपने आदमियों को और भी नए नगर

या उपनिवेश आदि स्थापित करने के लिये बाहर भेजते थे। इस प्रकार यूनानी लोग पूर्वी भूमध्यसागर के समस्त तटों और टापुओं पर फैल गए थे। पूर्व की ओर उनका विस्तार कृष्ण सागर तक और पश्चिम की ओर सिसली तक हो गया था (फोकेइया के यूनानी तो पश्चिम में सिसली से और भी आगे निकल गए थे। उन्होंने दक्षिणी फ्रांस में मस्सिलिया-नामक एक नगर और कारसिका में भी एक क़स्बा बसाया था)। यद्यपि, जैसा हम पहले कह चुके हैं, प्रत्येक नगर सबसे अलग और बिलकुल स्वतंत्रता-पूर्वक रहता तथा अपना शासन आदि सबसे स्वतंत्र रखता था, तो भी उस नगर के निवासी अन्य यूनानियों के नगरों के साथ व्यापार आदि करते थे, और इतना अवश्य जानते थे कि हम सब लोगों की सभ्यता एक ही है। इसके सिवा सब यूनानियों की भाषा भी एक ही होती थी। यूनानियों के नगर चाहे जहाँ हों, पर वे सब बातों में यूनानी ही होते थे। समस्त यूनानी स्थानों और नगरों आदि का केंद्र सदा स्वयं हेल्लास ही होता था। यूनानी सभ्यता की आत्मा सदा यहीं रहती थी, और यूनानी इतिहास की प्रायः सभी मुख्य-मुख्य घटनाएँ या तो हेल्लास में हुई थीं या हेल्लास के नगरों—विशेषतः स्पार्टा तथा एथेंस—से संबंध रखती थीं।

पहले आरगोस ही मुख्य डोरियन नगर था। पर उसका वैभव बहुत पहले ही नष्ट हो चुका था, और तब स्पार्टा ने सबसे ऊँचा स्थान ग्रहण किया था। उसने अपनी यह शक्ति आस-पास के निवासियों पर निर्लज्जता-पूर्ण आक्रमण करके प्राप्त की थी। यह नगर पेलोपोनीज़ के दक्षिण-पूर्वी भाग में, लेकोनिया में, था। उसके ठीक पश्चिम में, टेगेटस पर्वत के उस पार, मेस्सेनियन लोग रहते थे। वे भी यूनानी जाति के ही थे। लेकोनिया की अपेक्षा मेस्सेनिया अधिक संपन्न और उपजाऊ देश था,

इसलिये स्पार्टावाले उससे ईर्ष्या करते थे। इसलिये उन लोगों ने मेस्सेनियावालों के साथ व्यर्थ का एक झगड़ा खड़ा कर दिया, और उन पर आक्रमण करके तथा उनके साथ बहुत भीषण युद्ध करके उन्हें जीत लिया। सारी मेस्सेनियन जाति गुलाम बना ली गई, और उसे सैकड़ों वर्षों तक गुलामी करनी पड़ी। उन लोगों के साथ सदा बहुत ही कठोर व्यवहार होता था, और वे लोग सदा असंतुष्ट रहते थे, इसलिये स्पार्टावाले उन पर सदा बल-पूर्वक ही अपना अधिकार रखते थे। स्पार्टावाले बल-प्रयोग करने में सिद्धहस्त भी थे। पहले उनका नगर कला, साहित्य और व्यापार का केंद्र था; वहाँ बहुत कुछ धन-संपत्ति थी, उसके निवासी अनेक प्रकार के सुखों का भोग करते थे, पर ई० पू० ६०० के बाद से वे लोग इन सब बातों से घृणा करने लग गए थे, और उन्होंने अपना जीवन-क्रम बिलकुल बदल दिया था। उन्होंने संस्कृति और सुख-भोग आदि का परित्याग कर दिया, और विदेशियों को अपने यहाँ से निकाल बाहर किया, जिससे उनके व्यापार का प्रायः ध्वंस-सा हो गया। इसके बाद स्पार्टावाले अपना शुद्ध सैनिक राष्ट्र बनाने का प्रयत्न करने लगे। स्पार्टा के प्रत्येक पुरुष को आरंभ से ही केवल योद्धा बनने की शिक्षा दी जाने लगी, और अब उनका उद्देश्य सैनिक बनने के सिवा और कुछ रह ही न गया। प्रत्येक बालक को योद्धा बनने की ही शिक्षा दी जाती थी, और वह बड़ा होने पर योद्धा होने के सिवा और कुछ हो ही नहीं सकता था। ज्यों ही लड़के सात वर्ष के होते थे, त्यों ही वे अपनी माताओं से अलग कर दिए जाते थे, और राज्य द्वारा नियुक्त शिक्षकों के सिपुर्द कर दिए जाते थे, जो उन्हें सैनिक शिक्षा देना आरंभ कर देते थे। उन्हें प्रायः अनेक प्रकार के व्यायाम कराए जाते थे,

और तैरना तथा शस्त्रों आदि का उपयोग करना सिखलाया जाता था। उन्हें बलवान् और परिश्रमी बनाने में कोई बात उठा नहीं रक्खी जाती थी। योरप में अब तक स्पार्टावालों की व्यवस्था और मर्यादा आदि बहुत प्रसिद्ध है, जिसका अर्थ कठोर परिश्रम करने और बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ सहने की शक्ति है। जो बच्चे दुर्बल होते थे, वे ले जाकर टैगेटस पर्वत पर छोड़ दिए जाते थे, जहाँ वे किसी प्रकार की देख-रेख न होने के कारण मर जाते थे। स्पार्टावालों के जितने आवश्यक काम होते थे, वे सब लैकोनियावालों को करने पड़ते थे, जो स्पार्टा के नहीं होते थे। इसके अतिरिक्त उन लोगों के पास बहुत-से गुलाम भी होते थे, जिनमें से अधिकांश मेस्सेनिया के निवासी और वे पहले के निवासी होते थे, जिन्हें स्पार्टावालों ने बल-पूर्वक जीता था। लड़कों और मर्दों के जो व्यायाम आदि होते थे, उनमें औरतें और लड़कियाँ भी शामिल होती थीं। औरतों और लड़कियों का आदर केवल इसी विचार से होता था कि वे माताएँ बनकर स्पार्टा के सैनिक और योद्धाओं को जन्म देंगी। सब वयस्क पुरुष नित्य एक साथ मिलकर एक ही स्थान पर भोजन करते थे।

आगे चलकर स्पार्टा के निवासी यह समझने लग गए थे कि हमारे यहाँ ये नियम आदि बिलकुल आरंभिक काल से ही चले आ रहे हैं, और ये नियम लाइकरगस-नामक एक बहुत बड़े शास्त्रकार के बनाए हुए हैं। पर फिर भी इस बात में कोई संदेह नहीं कि प्रायः ई० पू० ५५० तक स्पार्टावाले अनेक प्रकार के खेल-तमाशों और मनोविनोद आदि में लगे रहते थे, और बहुत कुछ शौक़ीनी भी करते थे। पर उस समय उन लोगों में जो बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ, उससे स्पार्टावाले ऐसे सैनिक बन गए, जो सदा युद्ध आदि के लिये बिलकुल तैयार रहते थे। स्पार्टावाले संख्या में कुछ बहुत

अधिक नहीं थे, और उनकी सेनाओं में लेकोनियन लोग भी होते थे, जो वस्तुतः स्पार्टा के निवासी नहीं थे। इसके सिवा विशेष आवश्यकता होने पर ग़ुलाम भी सेना में भरती कर लिए जाते थे। पर सेना के मुख्य सैनिक और कार्यकर्ता स्पार्टावाले ही होते थे, और उन्हीं को नागरिकता के भी सब अधिकार प्राप्त होते थे।

स्पार्टावाले देखने में सुंदर नहीं होते थे। पर वे लोग परिश्रमी, कम-समझ और भीषण या निर्दय होते थे। केवल स्पार्टा के हितों और स्वार्थ के विचार से वे लोग प्रायः बहुत ही नीच और धोकेबाज़ी के काम भी कर डालते थे, और ऐसे कामों से दूर रहते थे, जो समस्त यूनानी जाति के लिये हितकर होते थे। पर इसमें संदेह नहीं कि युद्ध-विद्या में वे बहुत ही निपुण होते थे। वे कलाओं और शौक़ीनी की बातों से घृणा करते थे। वे बहुत ही परिश्रमी होते थे, और केवल अपने राज्य की सेवा के लिये ही सब कुछ करते थे। उन्हें अपने मितभाषी होने का बहुत अभिमान होता था, और जो लोग बहुत अधिक बातें करते थे, उनका वे लोग विश्वास नहीं करते थे। स्पार्टा के प्राचीन देश लेकोनिया के नाम पर ही अँगरेज़ी में एक शब्द बन गया है लैकोनिक, जिसका अर्थ होता है बहुत ही कम बोलना। वे उस प्रकार की शिक्षा नहीं पसंद करते थे, जो आदमियों को बहुत चालाक बना देती है। स्पार्टा में बहुत ही थोड़े ऐसे आदमी हुए थे, जिन्होंने अपने मस्तिष्क या बुद्धि के बल से प्रसिद्धि प्राप्त की हो। मूर्ति-निर्माण और वास्तु कला में डोरियन लोगों ने बहुत अच्छे-अच्छे काम किए थे, उनमें स्पार्टावालों का कोई हाथ नहीं था। इसके अतिरिक्त स्पार्टावालों में बुद्धिमान् सैनिक भी बहुत ही थोड़े हुए थे। वहाँ सब लोगों को इतनी अधिक सैनिक शिक्षा दी जाती थी कि उनकी मानसिक शक्ति बहुत कुछ मर जाती थी। पर हाँ, वे लोग लड़ने-भिड़ने में बहुत तेज़ और साहसी होते

थे, और ख़ूब जमकर लड़ते थे। जिन दिनों स्पार्टा की सेना अपनी उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर थी, उन दिनों उसे कोई जीत नहीं सकता था। स्पार्टा के सैनिक युद्ध-क्षेत्र में या तो विजय प्राप्त करते थे या वहीं कट मरते थे। उनका जीते-जी हारकर पीछे हटना असंभव था।

सेरोनिक की खाड़ी के उस पार, आरगोलिस के उत्तर-पूर्व में, एट्टिका था, जहाँ एक दोग़ली जाति के लोग रहते थे, जो मुख्यतः आयोनियावालों की संतान थे। वे सदा अपने को आयोनियावाले यूनानियों का शिरमौर समझते थे। वे लोग पहले अपने छोटे-छोटे क़स्बों में रहा करते थे, और प्रत्येक क़स्बे का एक अलग राजा हुआ करता था। पर इसके बाद बहुत जल्दी ही एट्टिका का मैदान एथेंसवालों की अधीनता में चला गया, और इस बात का पता नहीं चलता कि यह बात कैसे हुई। एट्टिका एक बहुत बड़ी चट्टान के नीचे है, जिसे एक्रोपोलिस कहते हैं। यह स्थान समुद्र से पाँच मील की दूरी पर है, जहाँ पिरेइयस नाम का एक अच्छा बंदरगाह है। आगे चलकर एथेंसवाले समुद्र के मार्ग से दूर-दूर तक जाकर व्यापार करने लगे। उनके यहाँ जैतून बहुत होता था, और वे उसी का तेल लेकर बाहर बेचने जाया करते थे। पहले उन लोगों का शासन सरदार लोग करते थे, जो अपने पास बहुत-से घुड़सवार रखते थे। ये घुड़सवार ही उनकी सेना के मुख्य अंग होते थे। पर आगे चलकर उनके यहाँ बहुत बड़े शस्त्रों से सुसज्जित पैदल सैनिक भी होने लगे, जिन्हें वे लोग 'होपलाइट' कहते थे। अब इस प्रकार के सैनिकों का आदर बहुत बढ़ने लगा, और घुड़सवारों का महत्त्व धीरे-धीरे कम होने लगा। उस समय उनके यहाँ एक नियम यह भी बन गया कि राज्य की आज्ञा पाते ही एथेंस के प्रत्येक नागरिक को या तो सैनिक के रूप में या नाविक के रूप में काम करना पड़ेगा। इस प्रकार राज्य के लिये साधारण नागरिक अधिक महत्त्व के हो गए, और तब लोगों

के मन में यह प्रश्न उत्पन्न होने लगा कि ऐसी अवस्था में जब कि युद्ध-काल में प्रत्येक व्यक्ति सैनिक सेवा करने के लिये बाध्य है, तो फिर शांति काल में प्राचीन वंशों के थोड़े-से आदमियों के हाथ में ही सारी शक्ति और सारे अधिकार क्यों रहें ?

पता चलता है कि सरदारों आदि के प्रति ईर्ष्या का यह भाव एक ही समय में बहुत-से यूनानी नगरों के निवासियों के मन में एक साथ ही उत्पन्न हो गया था। सभी नगर दिन-पर-दिन विशेष संपन्न होते जाते थे। जिन व्यापारियों ने यह सारा धन कमाया था, अब वे भी अपने नगर के शासन-कार्यों में सम्मिलित होना चाहते थे। जहाँ-जहाँ सरदारों ने समझदारी से काम लिया, वहाँ-वहाँ तो सब बातें बहुत सहज में और शांति-पूर्वक तय हो गईं, और पहले की अपेक्षा जन साधारण को शासन-कार्यों में अधिक सम्मिलित होने का अवसर मिलने लगा। पर बहुत-से स्थानों में ऐसा भी हुआ कि सरदार लोग अपनी शक्ति अपने ही हाथ में रखने के लिये अड़ गए। इसका परिणाम यह हुआ कि लोग असंतुष्ट होकर विद्रोह और उपद्रव करने लगे। तथा सरदारों और उनके आदमियों के साथ जन साधारण के युद्ध होने लगे। ऐसी अवस्था में दोनो ही पक्षों में चतुर और शक्तिशाली व्यक्तियों को बहुत अच्छा अवसर मिलने लगा, और वे किसी एक दल का पक्ष लेकर अपना प्रभुत्व स्थापित करने लगे। यदि ऐसे आदमी अपने प्रयत्न में सफल हो जाते, तो वह बाक़ी सभी लोगों पर सहज में अपना पूर्ण प्रभुत्व स्थापित कर लेते थे। उस समय वे लोग यूनानी भाषा में टायरेंट कहलाने लगते थे। आजकल अँगरेज़ी-भाषा में इस शब्द का अर्थ है अत्याचारी। पर प्राचीन काल में यूनानी शब्द का ऐसा बुरा अर्थ नहीं होता था। और, ऐसे लोग जब तक अपनी शक्ति, धन या चालाकी से अपना पद और मर्यादा बनाए रख सकते थे, तब तक बनाए रखते थे।

इस प्रकार की घटनाएँ बहुत-से यूनानी नगरों में हुई थीं। इसीलिये ई० पू० ७०० से ५०० तक का काल यूनानियों में टायरेंटों का युग कहलाता है। कोरिंथ, सीसियन, मेगरा, एथेंस तथा बहुत-से यूनानी टापुओं और उपनिवेशों में ऐसे लोग उठ खड़े हुए थे, पर स्पार्टा में कभी कोई ऐसा आदमी नहीं निकला। उन दिनों भी स्पार्टा में राज-शासन-प्रणाली ही प्रचलित रही, जिसमें दो राजा मिलकर राज्य करते थे, और जिनकी सहायता के लिये ज्येष्ठों की एक काउंसिल थी। इसके बाद से यूनानी लोग टायरेंट के नाम तक से घृणा करने लगे (और शायद तभी से इस शब्द का बुरे अर्थ में व्यवहार भी होने लगा)। यह बात सोचकर उनके मन में बहुत ही ग्लानि उत्पन्न होती थी कि हम लोग यूनानी होकर किसी एक आदमी का शासन सहन करें, और हमें उससे यह पूछने का भी अवसर न मिले कि तुमने यह काम क्यों किया, और वह काम क्यों नहीं किया। यद्यपि टायरेंट लोग केवल अपनी शक्ति और बल के द्वारा ही लोगों पर शासन करते थे, तो भी उनमें से कई लोग ऐसे भी हुए, जो अच्छी तरह शासन करते थे, और जिन्होंने अपने नगरों का बल बहुत कुछ बढ़ाया था, और कलाविदों, विचारशीलों तथा लेखकों का बहुत कुछ उत्साह बढ़ाया था। साथ ही उनमें कुछ लोग ऐसे भी होते थे, जो लोगों के साथ निर्दयता-पूर्ण और कठोर व्यवहार भी करते थे। सुप्रसिद्ध इतिहास-लेखक हेरोडोटस ने एक स्थान पर लिखा है—"टायरेंट लोगों ने पूर्वजों के समय से चली आई हुई प्रथाओं में बहुत कुछ हेर-फेर कर दिया है, और वे लोग पर-स्त्रियों के साथ बल-पूर्वक अनाचार करते हैं, और बिना मुक़दमा चलाए या विचार किए लोगों को मरवा डालते हैं।"

एथेंस में ई० पू० ५६० के लगभग पिस्ट्रेटस-नामक एक व्यक्ति इसी प्रकार टायरेंट बना था। उसने एट्टिका में जैतून के बहुत-से

नए-नए वृक्ष लगवाए थे, बहुत-से मंदिर बनवाए थे, दो नए बड़े-बड़े त्यौहार चलाए थे, होमर की कविताएँ लिखवाई थीं, और बहुत-से कवियों और कारीगरों को अपने यहाँ स्थान दिया था। पर यदि कोई परम स्वतंत्र व्यक्ति स्वयं चाहे कितना ही अधिक उत्तम शासन क्यों न करे, पर वह निश्चित रूप से यह बात कभी नहीं कह सकता कि उसके बाद जो लोग उसके स्थान पर आएँगे, वे भी स्वयं उसी के समान अच्छे शासक होंगे। धीरे-धीरे टायरेंटों का अत्याचार सभी स्थानों पर बहुत बढ़ने लगा, और बढ़ते-बढ़ते इतना असह्य हो गया कि वे लोग सभी नगरों से निकाल दिए गए। एथेंस से पिसिस्ट्रेटस के दो लड़के हिप्पारकस और हिप्पियास भी इसी तरह निकाल बाहर किए गए थे। बल्कि पहला लड़का हिप्पारकस तो ई० पू० ५१४ में मार ही डाला गया था, और उसके थोड़े ही दिनों बाद दूसरा लड़का हिप्पियास नगर से निर्वासित कर दिया गया था।

इन सब बातों का परिणाम यही हुआ कि अब यूनानी लोगों ने निश्चित कर लिया कि हम लोग अपने यहाँ न तो किसी एक आदमी का ही शासन रहने देंगे, और न थोड़े-से आदमियों का ही। अब सब नगरों में प्रजातंत्र स्थापित होने लगे। अब उन लोगों ने यह निश्चय कर लिया कि आगे से नागरिकों द्वारा निर्वाचित लोग ही हमारा शासन करेंगे; क्योंकि यदि ऐसे लोग शासन-कार्यों में कोई दोष या भूल कर बैठते, तो उसके लिये उनसे जवाब भी तलब किया जा सकता था। यहाँ तक कि स्पार्टा में भी, जहाँ कभी कोई टायरेंट नहीं हुआ था, नए मजिस्ट्रेट नियुक्त करके दोनो राजों के अधिकार पहले से बहुत कुछ घटा दिए गए। इन मजिस्ट्रेटों का निर्वाचन जनता की सभा में होता था, और आगे चलकर स्पार्टा के राज्य में यही मजिस्ट्रेट लोग सबसे अधिक शक्तिशाली हो गए थे।

इन सब परिवर्तनों का परिणाम यह हुआ कि एक सिरे से सभी

नागरिकों की स्वतंत्रता बहुत बढ़ गई, और यूनानियों को स्वेच्छाचार-पूर्ण एकतंत्री शासन से छुटकारा मिल गया। पर कभी-कभी ऐसा भी होता है कि लोगों को स्वतंत्रता तो मिल जाती है, पर वे उसका ठीक-ठीक उपयोग करना नहीं जानते। यूनानी नगरों के संबंध में भी ऐसा ही हुआ, और उन्होंने इस स्वतंत्रता का बुरी तरह से उपयोग किया। नागरिक लोग जिन्हें शासन करने के लिये चुनते थे, वे प्रायः अच्छे आदमी नहीं होते थे। उनमें दलबंदियाँ होने लगीं, और प्रत्येक दल दूसरे दलों को दबाकर और उनकी हानि करके स्वयं अपना हित और लाभ करने का प्रयत्न करने लगा। प्रायः ये दल आपस में बहुत अधिक द्वेष और वैर-भाव रखते और अनेक अवसरों पर आपस में लड़ भी पड़ते थे। यूनानी नगरों में यह दलबंदी और इसके कारण होनेवाला पारस्परिक राग-द्वेष बहुत ही बुरा और हानिकारक होता था, और इसका भी वैसा ही बुरा परिणाम होता था, जैसा समस्त यूनान के नगरों का पारस्परिक द्वेष और वैर-भाव। हम कह सकते हैं कि यूनानियों ने प्रजातंत्र-शासन का एक ऐसा प्रयोग किया था, जिससे उसके गुण और दोष बहुत कुछ समझे जा सकते थे, और अंत में उन्हें इस प्रयोग से विफलता ही हुई थी। उनके इस उदाहरण से वे लोग (जैसे अँगरेज़ लोग) बहुत कुछ सचेत हो सकते हैं, जो यह समझते हैं कि किसी शासन-प्रणाली के ठीक और उपयुक्त होने की सबसे बड़ी पहचान यह है कि उसके नागरिकों को पूरी स्वतंत्रता प्राप्त हो।

एथेंस में यह प्रजातंत्र-शासन-प्रणाली विशेष रूप से प्रचलित हुई थी। उस नगर की एसेंबली या सभा के लिये सदस्य चुनने और उस चुनाव में मत देने का अधिकार एथेंस के प्रत्येक नागरिक को दिया गया था। उस चुनाव में बहुत-से लोग चुन

लिए जाते थे, जो बारी-बारी से कौंसिल के सदस्य होकर काम करते थे। एसॅबली जो कुछ निश्चय करती थी, उसके अनुसार काम करने का भार इसी कौंसिल पर था, और न्यायालयों में भी इसी कौंसिल के सदस्य जूरियों की भाँति बैठकर न्याय करते थे। कुछ आगे चलकर पेरिक्लीज ने यह प्रथा चलाई कि कौंसिल के सदस्यों और ज्यूरियों को कुछ निश्चित वेतन दिया जाया करे, जिसमें ग़रीब आदमी भी यह काम कर सकें, और इस काम के लिये उन्हें अपना रोज़गार या पेशा आदि छोड़कर हानि न उठानी पड़े। इसके अतिरिक्त ग़रीबों को दमन और अत्याचार आदि से बचाने के लिये इस आशय का भी एक क़ानून बना दिया गया था कि एथेंस का कोई नागरिक केवल ऋणी होने के कारण अपने महाजन का गुलाम न बन सकेगा। ई० पू० ५९४ में सोलन और ई० पू० ५०८ में क्लीस्थनीज़-सरीखे विद्वानों और शास्त्रकारों ने इसी प्रकार के कुछ मुख्य सुधार किए थे, और उन्होंने एथेंस को पूर्ण प्रजातंत्र के मार्ग पर दृढ़ता-पूर्वक आरूढ़ कर दिया था।

कुछ दिनों में एथेंस की इतनी अधिक उन्नति हो गई कि स्पार्टनावाले उसके साथ ईर्ष्या करने लगे। इस ईर्ष्या से उन दोनो में आपस में लड़ाई-झगड़ा भी हो सकता था, पर अभी इस लड़ाई-झगड़े की नौबत ही नहीं पहुँचने पाई थी कि एक ऐसी विपत्ति उठ खड़ी हुई, जो सारे यूनान के लिये समान रूप से भयावह थी। वह विपत्ति ऐसी भीषण थी कि उसका सामना करने के लिये यूनानवालों को अपनी सारी ईर्ष्याएँ और सारे वैर-भाव ताक़ पर रख देने पड़े थे।

२. यूनान का उन्नति-काल

हमारे पाठक यह तो जान ही चुके हैं कि साइरस के समय में पारसवालों ने किस प्रकार असीरिया, बेबिलोनिया और लीडिया पर विजय प्राप्त की थी, और किस प्रकार अपने विशाल साम्राज्य का विस्तार एखम से एशिया की पश्चिमी सीमाओं तक किया था। इस समस्त राज्य में सभ्यता पूर्वी या एशियाई ढंग की थी, और इसकी शासन-प्रणाली भी एशियाई या पूर्वी ही थी। सारी शक्ति केवल एक आदमी के हाथ में रहती थी, जो बादशाह या शाहंशाह कहलाता था।

उस समय तक संसार में जितनी कलाएँ और जितने ज्ञान थे, जितनी संपत्ति और जितनी भोग-विलास की सामग्री थी, वह सब इसी साम्राज्य के अंतर्गत देशों में विकसित हुई थी। यदि पारस के साथ यूनान की तुलना की जाय, तो यही जान पड़ेगा कि यूनान केवल छोटी-छोटी और आपस में लड़ती रहनेवाली रियासतों का समूह था, साथ ही वह पारस के मुक़ाबले में बहुत ही दरिद्र और महत्त्व-हीन था, तथा उसने अब तक कोई ऐसा काम नहीं किया था, जो इतिहास में कोई विशेष स्थान प्राप्त कर सकता।

जिस समय साइरस पश्चिमी एशिया में बराबर विजय प्राप्त कर रहा था, उस समय उसने यूनान के तट पर स्थित कई क़स्बों पर भी अधिकार करके उन्हें अपने साम्राज्य में मिला लिया था। इस प्रकार उस समय पहलेपहल पारसियों और यूनानियों में, एशियावालों और योरपवालों में संघर्ष हुआ था। जिस समय साइरस के पुत्र कैंबिसेस ने मिस्र पर विजय प्राप्त की थी, और जिस समय कैंबिसेस के

उच्चाधिकारी दारा ने थ्रूस को अपने अधिकार में किया था, उस समय ऐसा जान पड़ने लगा था कि पारसवाले अपनी शक्ति पश्चिम की ओर बढ़ाते चले आ रहे हैं, और बहुत संभव है कि शीघ्र ही हेल्लास पर भी उनका आक्रमण हो। फिनीशियन लोग पारस के बादशाह के परम निष्ठ मित्र थे, और उनका जहाज़ी बेड़ा सदा उसकी सेवा के लिये तैयार रहता था। यदि पारसवाले हेल्लास के नगरों पर चढ़ाई करना चाहते, तो कुछ ही दिनों के अंदर वे समुद्र पार करके उन तक पहुँच सकते थे। यूनानी भी अपने मन में समझते थे कि हम पर यह विपत्ति आ सकती है। विशेषतः एथेंस इस विपत्ति से और भी चौकन्ना हो रहा था, क्योंकि एक तो वहाँ के निवासी समुद्र-यात्रा में बहुत निपुण थे, और दूसरे एशिया के बहुत-से यूनानियों के साथ उनका मित्रता-पूर्ण संबंध भी था। इस प्रकार जब ई० पू० ५०० में एशिया के यूनानी नगरों ने अपने पारसी स्वामियों के विरुद्ध विद्रोह ठाना, तब एथेंसवालों ने उनकी सहायता की थी। यद्यपि यह विद्रोह सफल नहीं हुआ, तो भी एथेंसवालों के इस सहायता-दान से दारा बहुत क्रुद्ध हुआ, और उसने निश्चय कर लिया कि चाहे जैसे होगा, मैं एक बड़ी सेना भेजकर हेल्लासवालों को और विशेषतः एथेंसवालों को इसका दंड दूँगा।

इस काम के लिये उसने पहले मेसिडोनिया और थेसोस पर विजय प्राप्त करके रास्ता साफ़ किया, और ई० पू० ४९० में पारसियों की एक बहुत बड़ी जल तथा स्थल-सेना समुद्र-पार के डेलोस होती हुई पश्चिम की ओर बढ़ने लगी, और अंत में मेरेथान-नामक स्थान में पहुँच गई। पारसी-सेना वहीं जहाज़ पर से उतरी थी, और उतरते ही उसे एथेंस की सेना से मुक़ाबला करना पड़ा। एथेंसवालों की सहायता के लिये प्लेटीया से भी कुछ सैनिक आए थे। उस युद्ध में पारसवाले हार गए, और भाग-

कर अपने जहाज़ों पर जा पहुँचे। पारसियों का बेड़ा एशिया की ओर लौट गया। इसके दस वर्ष बाद दारा के उत्तराधिकारी जरक्सीज़ ने फिर पहले से भी बड़ी जल तथा स्थल-सेना लेकर यूनानियों पर आक्रमण करने का प्रयत्न किया। वे सैनिक थ्रेस, मेसिडोनिया और टैंपी तथा थरमापेली के दर्रों से होते हुए दक्षिण की ओर बढ़े। उनके साथ-साथ जहाज़ी बेड़ा भी समुद्र के किनारे-किनारे चल रहा था। आरटीमीज़ियम-नामक स्थान के पास यूनानियों के बेड़े ने फिर पारसियों को परास्त किया। पर जब पारसी सेना पीछे हटकर थरमापिली की ओर बढ़ने लगी, तब यूनानी जहाज़ों को भी एट्टिका की रक्षा के लिये दक्षिण की ओर पीछे हटना पड़ा। सेलामिस की खाड़ी में पारसी बेड़ा पूर्ण रूप से परास्त हो गया, और पारसी स्थल-सेना पीछे हटकर थिसली में चली आई। दूसरे वर्ष यह सेना फिर दक्षिण की ओर बढ़ने लगी। पर इस बार भी वह प्लेटीया-नामक स्थान में बुरी तरह से परास्त हुई। उधर यूनानी बेड़ा भी पारसी जहाज़ों की तलाश में पूर्व की ओर बढ़ रहा था। जिस समय प्लेटीया में पारसी लोग स्थल-युद्ध में परास्त हुए थे, उसी समय के लगभग सामोस-प्रदेश के माइकेल-नामक अंतरीप के सामने पारसी और यूनानी बेड़ों की भी मुठभेड़ हो गई। यूनानियों ने पारसियों को वहाँ से भी हराकर पीछे हटा दिया, और सामोस पर अधिकार कर लिया।

ये युद्ध इतिहास में बहुत ही प्रसिद्ध हैं, और बहुत महत्त्व के माने जाते हैं। इन युद्धों में यूनानियों ने बहुत अधिक वीरता और रण-कौशल प्रदर्शित किया था। यद्यपि पारसी-सेना संख्या में बहुत अधिक थी, तो भी मेराथन-नामक स्थान में केवल दस हज़ार यूनानियों ने उसे बहुत बुरी तरह से परास्त करके पीछे हटाया था। उसी अवसर पर स्पार्टा के ३०० वीरों और १०००

दूसरे यूनानी योद्धाओं ने थरमापिली के दर्रे में अपने से तीस-गुनी बड़ी सेना का आक्रमण बहुत ही वीरता-पूर्वक सँभाला था, और शत्रुओं को उस दर्रे में घुसने से रोका था। विशेषतः यह युद्ध इतिहास में बहुत ही मार्के का माना जाता है। उसी अवसर पर एक देशद्रोही ने पारसियों को एक ऐसा मार्ग बतला दिया था, जिससे वे घूमकर दर्रे के उस पार पहुँच सकते और यूनानियों को चारो ओर से घेर सकते थे। लेकिन उस समय भी, शत्रुओं से चारो ओर से घिर जाने पर भी, स्पार्टावालों ने आत्मसमर्पण नहीं किया; और जब तक उनमें का एक भी योद्धा जीता रहा, तब तक वह बराबर शत्रुओं से लड़ता रहा। उन दिनों एथेंस-नगर के चारो ओर परकोटा नहीं था। ऐसे अवसर पर पारसवालों ने दो बार एथेंस को नष्ट करने के विचार से उस पर आक्रमण किए थे, जिनसे बचने के लिये एथेंसवाले अपना नगर छोड़कर निकल गए थे, और अपने जहाज़ों पर जा ठहरे थे। एथेंस के जो निवासी युद्ध करने के योग्य नहीं थे, वे अपना देश छोड़कर इधर-उधर भाग गए थे। पारसी सेनापति ने दो बार एथेंसवालों से कहलाया था कि इन-इन शर्तों पर तुम हमसे संधि कर लो। पर दोनो बार एथेंसवालों ने यही उत्तर दिया था कि जब तक सूर्य अपने वर्तमान पथ पर चलता रहेगा, तब तक हम लोग कभी ज़रक्सीज़ के साथ किसी प्रकार की संधि नहीं करेंगे। सेलामिस-नामक स्थान पर यूनानियों ने बहुत ही वीरता-पूर्वक लड़कर पारसी बेड़े को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला था। इन युद्धों से संबंध रखनेवाली इसी प्रकार की और भी अनेक घटनाएँ हैं, जो बहुत ही रोमांचकारिणी हैं, और जिनका वर्णन पढ़कर आदमी फड़क उठता है। यदि इन युद्धों में यूनानियों ने इतनी बहादुरी न दिखलाई होती, और पारसी लोग उनसे इस प्रकार परास्त

न हुए होते, तो बहुत संभव था कि हम लोग आज योरप को उस अवस्था में न पाते, जिस अवस्था में इस समय वह है। योरप की जितनी सभ्यता है, वह सब यूनानी सभ्यता का ही परिणाम और विकास है; और योरपवालों ने जो कुछ सीखा है, वह सब यूनानियों से ही सीखा है। यदि इन युद्धों में यूनानी लोग हार गए होते, और पारसियों की जीत हो जाती, तो दुनिया का नक़्शा कुछ और ही तरह का दिखाई देता। यही कारण है कि इन युद्धों और इनमें होनेवाली जीतों का योरपवालों को बहुत अधिक अभिमान है। यद्यपि उस समय भी यूनानियों में बहुत-से गुण थे, पर तब तक उन्हें उन गुणों के प्रदर्शन का अवसर नहीं मिला था। तो भी यदि उक्त युद्धों में वे लोग परास्त हो गए होते, तो वे सभी चीज़ें बिलकुल नष्ट हो जातीं, जो बाद में उनसे योरपवालों को प्राप्त हुई थीं। उस दशा में सारे योरप में एशियाई राजा का ही राज्य देखने में आता, योरप का इतिहास कुछ और ही तरह का हो जाता और योरप अपने वर्तमान महत्त्व से बिलकुल वंचित ही रह जाता। यदि सच पूछिए, तो यूनानियों ने समस्त योरप की ओर से और उसकी रक्षा करनेवाली लड़ाइयाँ लड़ी थीं। योरप की स्वतंत्रता और सभ्यता का मूल वही युद्ध है, जो यूनानियों ने एशियावालों के मुक़ाबले में जीता था।

यहाँ हम इन युद्धों के कुछ और परिणामों पर भी विचार करना चाहते हैं। इन युद्धों में हार जाने से पारस की तो कोई विशेष क्षति नहीं हुई, पर इनमें जीत होने के कारण यूनान बन गया। इससे यूनानी लोग अपने मन में समझने लगे कि एशियावालों के मुक़ाबले में हम भी कोई चीज़ हैं, और हमने एक विशेष प्रकार की सभ्यता तथा संस्कृति की रक्षा की है। अब वे लोग पारसियों

से घृणा करने लगे, और उन्हें ग़ुलामों का राष्ट्र समझने लगे। उनकी समझ में यह बात आने लगी कि हमारे पास भी कोई ऐसी चीज़ है, जिसे हमें नष्ट होने से बचाना चाहिए। इस चीज़ को वे लोग 'हेलेनिज़म' (हेल्लासपन) कहने लगे, और इसके मुक़ाबले में पारसवालों की सभ्यता को बर्बरता समझने लगे। अपने हेल्लेनिज़्म का मतलब ये लोग यही समझते थे कि यह स्वतंत्रता और सभ्यता का भाव है, और इसे जीवित रखना तथा विकसित करना हमारा परम कर्तव्य है। बर्बरता से उनका अभिप्राय उस प्रकार के जीवन से था, जो पूर्वी साम्राज्य में प्रचलित था।

पारसियों के साथ यूनानियों का जो युद्ध हुआ था, उसके परिणाम-स्वरूप योरप में हेल्लास एक प्रधान और पथ-प्रदर्शक नगर हो गया था। उसकी यह प्रधानता कई प्रकार की थी, जिनमें कुछ का हम यहाँ वर्णन कर देना चाहते हैं—

(१) इस युद्ध में एथेंस को सौभाग्य से एक ऐसा नेता मिल गया था, जो यूनान का सबसे बड़ा राजनीतिज्ञ था। उसका नाम थेमिस्टोक्लीज़ था। वह सदा सब बातों में बहुत ही सचेत रहता था, और अपने उद्देश्य प्रायः बहुत ही गुप्त रूप से सिद्ध किया करता था। जिस समय सेलामिस के पास युद्ध होने को था, उस समय उसे यह पता चला कि यूनानी लोग इस समय युद्ध नहीं करना चाहते, और उससे किसी प्रकार बचना चाहते हैं। इसलिये उसने गुप्त रूप से ज़रक्सीज़ के पास यह सँदेसा भेजा कि यूनानी सैनिक इस समय भागना चाहते हैं, और यदि इस समय आप उन लोगों पर आक्रमण कर बैठें, तो आपका बहुत कुछ लाभ हो सकता है। इस प्रकार उसने एक ऐसी चाल चली कि पारसी लोग सहसा यूनानियों पर आक्रमण करने के लिये

तैयार हो गए। वह भी यही चाहता था कि पारसियों का आक्रमण बिलकुल सहसा हो, जिसमें उन्हें पहले से अच्छी तरह तैयार होने का अवसर न मिले; और जब वे लोग अचानक आ पहुँचेंगे, तब यूनानी लोग, जो पहले से तैयार रहेंगे, अच्छी तरह उनका मुक़ाबला कर सकेंगे। इसके बाद जब युद्ध हो गया, तब उसने पारसी बादशाह के पास एक दूसरा सँदेसा भेजा, और उसे यह परामर्श दिया कि आप बहुत जल्दी एशिया की तरफ़ लौट पड़ें, क्योंकि यूनानी लोग समुद्र के उस पार पहुँचने की तैयारी कर रहे हैं, और वे हेलेस्पॉट-नामक स्थान पर आपके पुल पर आक्रमण करना चाहते हैं। यद्यपि वास्तव में यह बात बिलकुल झूठ थी, क्योंकि यूनानियों ने तब तक अपना कुछ भी कर्तव्य निश्चित नहीं किया था, पर फिर भी इसका परिणाम यह हुआ कि ज़रक्सीज़ अपने देश की ओर बहुत जल्दी में लौट पड़ा। यद्यपि थेमिस्टोक्लीज़ ने कई ऐसे काम किए थे, जो बेईमानी और धूर्तता के कहे जा सकते हैं, तो भी इसमें संदेह नहीं कि इन सब कामों में भी उसका भाव देश-सेवा का ही होता था, और वह ये सब काम बहुत ही बुद्धिमत्ता तथा दूरदर्शिता-पूर्वक करता था। यह बात पहलेपहल उसी की समझ में आई थी कि जब तक यूनान के पास कोई जहाज़ी बेड़ा न होगा, तब तक वह पारसवालों का ठीक-ठीक मुक़ाबला न कर सकेगा। यही कारण था कि जब एथेंसवालों को लारियन-नामक स्थान में चाँदी की एक नई खान मिली, और उससे उन लोगों को बहुत कुछ धन प्राप्त हुआ, तब उसने एथेंसवालों को समझा-बुझाकर यह धन नए और बड़े-बड़े जहाज़ बनाने के लिये ख़र्च करने पर राज़ी किया। पारसवालों के आक्रमण से बचने के लिये उसी ने एथेंसवालों से पिरेइयस के बंदरगाह में क़िलेबंदी कराई थी, वहाँ जहाज़ों आदि के ठहरने के लिये अच्छे-अच्छे स्थान बनवाए थे,

और उनके नगर के चारो ओर परकोटा बनवाया था। इसके बाद एथेंसवालों ने अपने नगर से बंदरगाह तक, जो वहाँ से पाँच मील दूर था, रास्ते के दोनो ओर बहुत ऊँची और मज़बूत दीवार बनवाई थी। इस प्रकार उसने एथेंस-नगर की चारो तरफ़ से बहुत कुछ मज़बूती करा दी, और उसके पास ही लड़ाई के जहाज़ों के रहने के लिये बहुत अच्छा बंदरगाह बनवा दिया।

(२) इस युद्ध में यूनानियों की मुख्य विजय जल-युद्ध में हुई थी, और यूनान में सबसे बड़ा बंदरगाह और जहाज़ी बेड़ा एथेंस में ही था। सेलामिस में जिन यूनानी जहाज़ों ने युद्ध किया था, उनमें से आधे से अधिक जहाज़ एथेंसवालों के ही थे। बहुत-से आयोनियन यूनानी भी बहुत अच्छे नाविक थे, और उनका व्यापार तभी चल सकता था, जब समुद्रों में उनके लिये किसी प्रकार की आपत्ति न होती। अतः उनके लिये यह बात बहुत ही स्वाभाविक थी कि वे भविष्य में पारसवालों को दूर रखने के लिये एथेंस के नेतृत्व की ही उपेक्षा करते।

(३) इस बात में कोई संदेह नहीं है कि पारसवालों का मुक़ाबला करने में एथेंसवालों ने बहुत अच्छा काम कर दिखलाया था। यह ठीक है कि स्थल-युद्ध में सबसे अधिक काम स्पार्टावालों ने ही किया था, और थरमापिली तथा प्लेटिया-नामक स्थानों में वे लोग बहुत बहादुरी के साथ लड़े थे। पर एक तो वे लोग सब काम प्रायः बहुत बेढंगे तौर पर करते थे, और दूसरे वे प्रायः अपने ही हितों का विशेष ध्यान रखते थे, और समस्त यूनान के हितों का उतना अधिक ध्यान नहीं रखते थे। जिस समय मेराथन में युद्ध होने लगा था, उस समय वे लोग ठीक मौक़े पर नहीं पहुँचे थे, और उन्होंने कहला दिया था कि इस समय हम लोग एक त्योहार मनाने में लगे हुए हैं। उन्होंने कोरिंथ के स्थल डमरू-

मध्य में अच्छी क़िलेबंदी कर ली थी, और यह सोचा था कि वह क़िलेबंदी ही हमारे लिये यथेष्ट है, और अब हम लोगों को एट्टिका तथा उत्तर के यूनानियों की सहायता करने की आवश्यकता न रह जायगी। उत्तर में वे लोग प्लेटिया से आगे नहीं बढ़े थे। इसके लिये उन्होंने यह स्वार्थ-पूर्ण कारण बतलाया था कि यदि एथेंस के बेड़े ने पारसियों के हाथ आत्मसमर्पण कर दिया, तो शत्रुओं के जहाज़ पेलोपोनीज़ तक बढ़ आएँगे, स्पार्टा की उस दीवार की परवा न करेंगे, जो स्थलडमरू-मध्य में है। इन सब बातों का फल यह हुआ कि युद्ध हो जाने के उपरांत एथेंसवालों की कीर्ति बहुत बढ़ गई, और स्पार्टावालों की घट गई।

युद्ध के बाद यूनान में एक संघ बना था, जो डेलियन संघ कहलाता था। वह संघ इस बात का पहला लक्षण था कि एथेंस की मर्यादा बढ़ने लगी है। प्रायः सत्तर यूनानी नगरों ने (जिनमें एथेंस, इयूबिया, सब टापू और एशिया तथा थ्रेस के नगर सम्मिलित थे) आपस में मिलकर एक संघ बनाया, और उसमें एक शर्त यह रक्खी कि सारे देश का एक सार्वजनिक बेड़ा रहेगा, और सब नगर उसके लिये जहाज़, सैनिक और धन देंगे। जो नगर बहुत ग़रीब होगा, और एक पूरा जहाज़ न दे सकेगा, वह उसके बदले में कुछ धन दे देगा। यह भी निश्चय हुआ था कि इस संघ का कोष डेलोस-नामक स्थान में रहेगा। एथेंस इस संघ का सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण सदस्य था। उसने सबसे ज़्यादा जहाज़ और आदमी दिए थे। सारे बेड़े का सेनापति भी एथेंस का ही निवासी था, और उसका नाम साइमन था। इसके सिवा एथेंस के ही दस अफ़सर सब नगरों से उचित धन आदि वसूल करते थे।

इस संघ के कारण यूनान के समस्त राज्यों को मिलकर एक होने का बहुत अच्छा अवसर मिला था। यदि यह संघ कुछ अधिक

दिनों तक बना रहता, तो यूनान का इतिहास कुछ और ही रूप धारण कर लेता। पर इस प्रयोग में लोगों को सफलता नहीं हुई, और सफलता न होने के कारण बहुत ही स्पष्ट थे।

धीरे-धीरे नगरों की समझ में यह बात आने लगी कि जहाज़ और आदमी देने में कठिनता होती है, और उसकी अपेक्षा धन दे देना सुगम है। इसका परिणाम यह हुआ कि सब लोग एथेंस को धन ही देने लगे। बीस वर्ष के अंदर ही इस संघ का कोष डेलोस से एथेंस में चला आया था। एथेंस ही सारे बेड़े के लिये जहाज़ तैयार करता था, और वही उनमें सैनिक भी भरती करता था, तथा और आवश्यकता पड़ने पर पारसियों के मुक़ाबले में वही उन जहाज़ों और आदमियों का उपयोग भी करता था। इस प्रकार धीरे-धीरे यह संघ एक साम्राज्य के रूप में परिवर्तित हो गया। पहले तो इस संघ के सब सदस्यों का पद समान रहता था, और वे बेड़े के लिये चंदा देते थे। पर अब मानो निम्न कोटि के नगर एक प्रधान नगर को कर देने लगे।

फिर एक बात यह भी थी कि यदि इसके सदस्य एक-एक करके संघ से अपना संबंध तोड़ने लगते, तो बहुत शीघ्र ही यह संघ टूट जाता। इसलिये अब एथेंसवाले अपना यह अधिकार और कर्तव्य समझने लगे कि यदि कोई सदस्य इस संघ से अलग होना चाहे, तो उस पर आक्रमण किया जाय, और उसे संघ से संबद्ध रहने के लिये विवश किया जाय। जब एथेंसवाले इस प्रकार किसी सदस्य पर आक्रमण करके उसे अपने अधीन कर लेते थे, तब फिर वे उसे अपने प्रति निष्ठ रखने के लिये उस पर शासन भी करते थे।

एक और बात थी। यह संघ पारसवालों के आक्रमण से सारे यूनान की रक्षा करने के लिये बना था। पर कुछ राज्य ऐसे भी थे, जो इस संघ के सदस्य नहीं थे; और यद्यपि वे यूनानी बेड़े

को किसी प्रकार की सहायता नहीं देते थे, तो भी वे उससे लाभ तो उठाते ही थे, क्योंकि पारसियों के आक्रमण के समय उनकी रक्षा तो होती ही थी। इसलिये एथेंसवाले यह भी समझने लगे कि जो राज्य इस संघ के सदस्य नहीं हैं, उन्हें भी इस संघ में सम्मिलित होने के लिये विवश करने का हमें अधिकार प्राप्त है।

ऐसी अवस्था में यह नहीं कहा जा सकता कि इस संबंध में एथेंसवाले जो कुछ करते थे, वह अनुचित करते थे, अथवा इसके अतिरिक्त वे और कोई उपाय भी कर सकते थे। इसमें संदेह नहीं कि एथेंसवालों को अपने इस उच्च पद का अभिमान हो गया था। अब ज्यों-ज्यों उनकी शक्ति बढ़ती जाती थी, त्यों-त्यों उनकी आकांक्षाएँ भी बढ़ती जाती थीं, और वे दुर्बल राज्यों के साथ कुछ अधिक कठोर और अनुचित व्यवहार करने लग गए थे। आगे चलकर कुछ वर्षों बाद जिस ढंग से उन्होंने माइटिलेन तथा मेलोस के साथ व्यवहार किया था, वह बहुत ही अनुचित और आपत्ति-जनक था। माइटिलेन के समस्त निवासियों को उन्होंने विद्रोह के अपराध में मार डालने की धमकी दी थी, और मेलोस के समस्त निवासियों को तो उन्होंने कर न देने के अपराध में एक सिरे से मरवा ही डाला था, और उनमें का एक आदमी भी बाक़ी नहीं छोड़ा था। इन सब बातों से पता चलता है कि अपने शासन-कार्यों में एथेंसवाले कितने अधिक निर्दय हो गए थे। साथ ही इससे यह भी पता चल जाता है कि क्यों एथेंस के बहुत-से नगर एथेंस से बहुत अधिक घृणा करने लगे थे। कुछ ही वर्षों बाद एथेंसवालों को अपने इन अपराधों का बहुत बुरी तरह से दंड भी भोगना पड़ा था। परंतु एथेंसवालों की शासन-प्रणाली चाहे जैसी रही हो, इसमें संदेह नहीं कि एथेंस के साम्राज्य का विकास डेलियन

संघ के कारण ही नहीं हुआ था; और इस संघ के कारण जो परिवर्तन हुए थे, उनमें दूसरे नगरों का भी उतना ही हाथ था, जितना एथेंस का था।

चाहे जो हो, पर एथेंस के प्रति ईर्ष्या का भाव यूनान के बहुत-से नगरों के मन में उत्पन्न हो गया था। ई० पू० ४५९ में कोरिंथ, जिसका समुद्री व्यापार बहुत बढ़ा-चढ़ा था, और जो एथेंस के साथ बहुत अधिक ईर्ष्या करता था, एथेंस के साथ भिड़ गया। पर युद्ध में वह बुरी तरह से परास्त हुआ। जब एथेंस को कोरिंथ के साथ युद्ध करने मे सफलता और विजय प्राप्त हुई, तब उसने सोचा कि अब एजिना पर भी आक्रमण करके उस पर विजय प्राप्त करनी चाहिए, क्योंकि उसने कोरिंथ की सहायता की थी। साथ ही उसने यह सोचा कि केवल थीब्स को छोड़कर सारे बोएशिया को एक बार अच्छी तरह दबा देना चाहिए। उन्होंने ऐसा ही किया भी। पर फिर भी असंतोष बराबर बढ़ता ही गया। एथेंस को यूनान में सबसे उच्च स्थान प्राप्त करते देखकर स्पार्टा पहले से ही क्रुद्ध हो रहा था; अतः जो लोग एथेंस के अत्याचारों से पीड़ित होते थे, उनकी सहायता करने के लिये स्पार्टा सदा तैयार रहता था। यूनानी राजनीति में एक बहुत बड़ा दोष यह था कि उसमें दलबंदियाँ बहुत होती थीं। सब नगरों में भी ये ही दलबंदियाँ होने लगीं। ऊँचे दरजे के लोग छोटे दरजों के लोगों के विरोधी हो गए, और अमीर लोग ग़रीबों का गला काटने लगे। जब इस प्रकार के दल आपस में लड़ते थे, तब कोई दल स्पार्टावालों से सहायता माँगता था और कोई एथेंसवालों से। इस प्रकार यूनानियों में बहुत-से भेद और पक्ष हो गए, तथा और यूनान एक ऐसा बारूद का ख़ज़ाना हो गया, जो एक दियासलाई लगते ही उड़ सकता था।

परंतु इस प्रकार का विस्फोट होने से पहले एथेंस ने अपने समय का उपयोग आश्चर्य-जनक रूप में किया था। पारसवालों के साथ यूनानियों के जो युद्ध हुए थे, उनमें एथेंसवालों की कीर्ति जितनी बढ़ी थी, उतनी यूनान के और किसी नगर की नहीं बढ़ी थी। युद्ध में उन्होंने बहुत अधिक कीर्ति तो अर्जित कर ही ली, और उनमें बहुत कुछ नवीन शक्ति भी आ गई थी, इसलिये जब युद्ध समाप्त हो गए, तब बाद के पचास वर्ष (ई० पू० ४८० से ४३० तक) एथेंस का समय बहुत अच्छी तरह बीता। उसका यह समय उसके लिये स्वर्ण-युग कहा जा सकता है।

इस समय में, एथेंस में, जो व्यक्ति सबसे प्रधान था, उसका नाम पेरिक्लीज़ था। वह समझता था कि शीघ्र ही एक ऐसा समय आवेगा, जब ऐथेंस एक बहुत बड़े और विस्तृत साम्राज्य का स्वामी हो जायगा, और वह सारे यूनान को सभ्यता के मार्ग पर ले जायगा। उसका मत था कि जब एथेंस स्वतंत्र रहेगा, तब वह शेष संसार को भी यह बतला सकेगा कि किस प्रकार स्वतंत्र रहना चाहिए। और, इस काम में समर्थ होने के लिये एथेंस को महत् पद प्राप्त करना चाहिए। इस महत् पद की प्राप्ति के लिये उसके मत से एथेंस को निम्न-लिखित बातों की आवश्यकता थी—

(१) एथेंस को युद्ध में सबसे बढ़-चढ़कर होना चाहिए। इस काम के लिये उसने एथेंस-नगर की बहुत अच्छी क़िलेबंदी की थी, और उसके बेड़े की शक्ति बहुत बढ़ाई थी। वह स्वयं कभी यह नहीं चाहता था कि एथेंस दूसरों पर चढ़ाई करके अपना महत्त्व बढ़ावे। इसीलिये जब वह मृत्यु-शय्या पर पड़ा था, और उसके मित्र उसके किए हुए कामों की प्रशंसा कर रहे थे, तब उसने कहा था— "मेरे जीवन की सबसे अच्छी और माननीय बात यह है कि कभी मेरे कारण एथेंस के किसी निवासी को शोक-ग्रस्त नहीं होना

वीर

(लिसिप्पस की मूर्ति की प्रतिकृति)

पड़ा ।" (अर्थात् कभी उसके कारण किसी एथेंसवासी के प्राण नहीं गए ।) वह पहला ऐसा बड़ा राजनीतिज्ञ था, जो यह समझता था कि शांति-काल में और शांति-पूर्वक प्राप्त की हुई विजय ही सबसे बड़ी और अच्छी होती है । साथ ही वह यह भी समझता था कि एथेंस को कभी अपनी जल तथा स्थल-सेना की ओर से उदासीन नहीं रहना चाहिए ।

(२) उसका मत था कि एथेंस को स्वयं अपने कार्यों के संचालन में भी सबसे बढ़-चढ़कर होना चाहिए । एथेंस के प्रजातंत्र में जो त्रुटियाँ थीं, उन्हें उसने दूर कर दिया था, और अपने राज्य में ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी थी कि ग़रीब-से-ग़रीब आदमी के लिये भी राजकीय पद प्राप्त करने का उतना ही अवसर था, जितना किसी बहुत बड़े अमीर के लिये । उसके समय में समस्त नागरिकों की सभा 'एसेंबली' ही सबसे बड़ी थी । उसके कार्य करने का साधन कौंसिल थी, और मजिस्ट्रेट लोग (जो आरकन कहलाते थे) उसके नौकर थे । कौंसिलरों और आरकनों का चुनाव बारी-बारी से होता था, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को इन पदों पर पहुँचने का समान रूप से अवसर मिलता था । निर्धनों पर के भार कम किए गए थे । सारे नगर की आवश्यकताओं और सुख-भोग आदि के लिये जितने धन की आवश्यकता होती थी, वह सब धनवानों से ही लिया जाता था । जहाज़ बनाने और उन पर आदमी भरती करने का काम चुने हुए धनवानों को सौंपा जाता था । एक-एक जहाज़ एक-एक धनवान् के ज़िम्मे लगा दिया जाता था । बड़े-बड़े उत्सवों पर नाचने और गानेवालों की टोलियाँ आदि तैयार करने और उन्हें ये सब काम सिखाने आदि का भार भी कुछ चुने हुए धनवानों पर ही रहता था । उन धनवानों को अपने इन कर्त्तव्यों का पालन भार समझ-

कर नहीं, बल्कि नगर की सेवा के भाव से करना पड़ता था। साथ ही सब काम किसी पुरस्कार या प्रतिकार की आशा से नहीं, बल्कि केवल प्रतिष्ठा और सम्मान के विचार से करना पड़ते थे। पेरिक्लीज़ के समय में इस व्यवस्था में अच्छी सफलता भी हुई थी। पर आगे चलकर धनवान् लोग स्वार्थी होने लगे, और यथासाध्य अपने कर्तव्यों के पालन से बचने का प्रयत्न करने लगे। इधर ग़रीब नागरिक भी जल अथवा स्थल-सेना में काम करने से जान बचाने का प्रयत्न करने लगे।

(३) उसका तीसरा सिद्धांत यह था कि एथेंसवालों को मन तथा आत्मा-संबंधी बातों में भी महत् होना चाहिए। पारसवालों ने उनका नगर नष्ट कर दिया था। वह कहता था कि एथेंसवालों को अपना नगर फिर से इस प्रकार बनाना चाहिए कि वह सारे संसार में सौंदर्य और शोभा की चीज़ हो। पुराने मंदिर तो फिर से तैयार ही कर लिए गए थे, साथ ही अनेक नए मंदिर भी बनवाए गए थे। विशेषतः नगर की देवी एथेन का मंदिर, जिसका नाम पारथेनन था, फिर से इतना सुंदर बनाया गया था कि वह संसार के परम आश्चर्यमय पदार्थों में से एक हो गया था। लेखकों, विचारशीलों, चित्रकारों और मूर्तिकारों को उत्तम-से-उत्तम कृतियाँ प्रस्तुत करने के लिये प्रोत्साहित किया गया था, जिसमें एथेंस और यूनान की कीर्ति बढ़े, और संसार को शिक्षा मिले।

एथेंस में पेरिक्लीज़ के समय में कला और साहित्य का जितना अच्छा और सुंदर विकास हुआ था, उतना मनुष्य-जाति के इतिहास में और कभी कहीं नहीं हुआ था। उस समय माइरन और फोडियस-सरीखे बड़े-बड़े मूर्तिकार, एसकीलस, सोफोक्लीज़ तथा यूरपाइडीज़-सरीखे बड़े-बड़े और करुण-रस के नाटक लिखनेवाले और हिरोडोटस-सरीखे इतिहास-लेखक वहाँ हुए थे। इनके कुछ ही दिनों बाद थ्यूसिडाइडीज़-

सरीखे इतिहास-लेखक, एनैक्सागोरस-सरीखे वैज्ञानिक और इक्टिनस, कल्लिक्रेटीज तथा म्नेसिक्लीज-सरीखे वास्तुकार वहाँ हुए थे। हेरोडोटस हलिकारनासस-नामक स्थान का और एनैक्सागोरा क्लेजोमेनाई का निवासी था। पर ये तथा इसी प्रकार के और अनेक गुणी उन दिनों उसी प्रकार अपने स्थानों से खिंचकर एथेंस में आते थे, जिस प्रकार चुंबक की ओर लोहा खिंचकर आता है; क्योंकि एथेंस में उन्हें अपनी प्रतिभा के विकास के लिये पूरा-पूरा प्रोत्साहन मिलता था। यहाँ हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि उन दिनों यूनान के अन्यान्य स्थानों में भी, विशेषतः आरगोस में, बहुत बड़े-बड़े कलाविद् काम करते थे। पर यूनान की सारी संस्कृति का केंद्र एथेंस ही था। पेरिक्लीज ने कहा था कि एथेंस को हेल्लास का शिक्षालय होना चाहिए, और तदनुसार वह सारे हेल्लास के लिये शिक्षा का सबसे बड़ा केंद्र हो भी गया था। यद्यपि उन दिनों एथेंस नगर और उससे संबद्ध आस-पास के स्थानों के निवासियों की संख्या कुछ बहुत अधिक नहीं थी* तो भी पचास वर्षों के अंदर वहाँ सौंदर्य और ज्ञान के सभी विभागों में—विशेषतः वास्तुकला, मूर्ति-निर्माण और काव्यशास्त्र से संबंध रखनेवाले—प्रथम श्रेणी के इतने अधिक कार्य हुए थे कि इन सब विषयों में सबसे अच्छी शिक्षा और ज्ञान प्राप्त करने के लिये आजकल भी लोगों को (और विशेषतः

*. एट्टिका की आबादी शायद कभी २,५०,००० से ज़्यादा नहीं हुई थी। इसमें ग़ुलाम (जो लगभग एक तिहाई थे) और विदेशों से आकर रहनेवाले लोग (जो एक षष्ठमांश के लगभग थे) भी सम्मिलित थे। वयस्क पुरुषों की संख्या अधिक-से-अधिक ३५ या ४० हज़ार के लगभग थी।

योरपवालों को) उन्हीं की ओर दृष्टिपात करना पड़ता है।

उन्नति की पराकाष्ठा के युग के इन पचास वर्षों का अंत हो गया, और एथेंस के कीर्ति-चंद्र में ग्रहण लगने लगा। पर यह ग्रहण न तो एक साथ ही लगा था, और न पूर्ण रूप से ही। हम जो यह कहते हैं कि यह ग्रहण एक साथ ही नहीं इसका कारण यह है कि ई० पू० ४३० के बाद भी एथेंस में बहुत दिनों तक प्रथम श्रेणी की कृतियाँ प्रस्तुत होती रहीं। और, जो हमने यह कहा है कि वह ग्रहण पूर्ण रूप से नहीं लगा था, उसका कारण यह है कि इसके बाद कई शताब्दियों तक यूनानी कला की बहुत बड़ी-बड़ी कृतियों का अन्यान्य स्थानों में अनुकरण किया जाता था, और इन विषयों में एथेंस ने जो कुछ सिखाया था, उसका बराबर उपयोग किया जाता था। परंतु पेरिक्लीज के समय के बाद न तो एथेंस में और न कहीं दूसरी जगह ही यह बात देखने में आती है कि वहाँ के समस्त निवासियों में एक साथ ही सौंदर्य-प्रेम भरा-हुआ है, और वे अपने यहाँ के बड़े-बड़े आदमियों को ऐसे कार्य करने के लिये प्रोत्साहित कर रहे हैं, जो उस सौंदर्य-तृष्णा की तृप्ति कर सकें। एथेंस को आज तक कभी अपना पुराना गौरव विस्मृत नहीं हुआ। यहाँ तक कि एक स्थान पर कहा गया है कि संत पाल के समय में भी एथेंस के नागरिक कोई नई बात कहने या सुनने के सिवा और किसी काम में अपना समय व्यतीत नहीं करते थे। उस समय तक उनका शौक़ बहुत कुछ निरर्थक हो गया था। उनका ध्यान प्रायः छोटी और तुच्छ बातों की ओर ही जाता था। परंतु इतना होने पर भी और उस उन्नति-युग की कीर्ति बहुत कुछ मंद पड़ जाने पर भी उनके हृदय से उसका ज्ञान पूरी तरह से मिट नहीं सका था। उस समय भी

वह प्रत्येक शिक्षित मनुष्य के देखने योग्य स्थान था, और आज दिन भी वैसा ही है।

ई० पू० ४३० के बाद से एथेंस की अवनति होने लगी। पर जिन शक्तियों ने उसका नाश किया था, वे बहुत पहले से काम कर रही थीं। बाहर तो स्पार्टा की ओर से सदा भय बना रहता था, और उसके साथी दूसरे नगर असंतुष्ट थे। और, अंदर की ओर उसके वे बुरे दिन अपनी छाया डाल रहे थे, जो अभी आने को थे। स्वयं स्वतंत्र रहने तथा दूसरों को स्वतंत्र रहने की शिक्षा देने की आकांक्षा बहुत अच्छी है; पर इस आकांक्षा की उचित रीति से पूर्ति करने के लिये बड़े और अच्छे लोगों की आवश्यकता होती है। यदि यह बात न हो, तो फिर इस प्रकार की आकांक्षा करनेवाले लोग दूसरों पर अपना महत्त्व स्थापित करने के बदले स्वयं ही शिथिल और अव्यवस्थित हो जाते हैं। यही बात एथेंस के संबंध में भी हुई। वहाँ कई दल हो गए, जिनमें आपस में झगड़े होने लगे; यहाँ तक कि स्वयं पेरिक्लीज को भी अपने अंतिम दिनों में इस प्रकार की दल-बंदियों का शिकार होना पड़ा था। अब राज्य में ऐसे-ऐसे लोग ऊँचे पदों पर पहुँचने लगे, जो पेरिक्लीज के समान उच्च विचार के और महानुभाव नहीं थे। वे लोग अपने प्रभाव से केवल अपने स्वार्थों की ही सिद्धि करने लग गए। उन्होंने एथेंस-निवासियों को ऐसे मार्गों में लगाया, जिनमें पड़कर वे लोग दूसरों को डराने-धमकाने लगे, स्वयं अपने को धोका देने लगे, और भद्दी-भद्दी आकांक्षाएँ करने लगे। लोगों का आंतरिक भाव दिन-पर-दिन ख़राब होने लगा। पेरिक्लीज ने उन्हें जो उच्च आदर्श बतलाने का प्रयत्न किया था, उन आदर्शों के अनुसार वे लोग अपना जीवन व्यतीत नहीं कर सकते थे। वे अपने कर्तव्यों का पालन करने से हिचकते थे, और यह चाहते थे कि हमारे नेता हमारी झूठी ख़ुशामद और

बड़ाई किया करें। एथेंस के साम्राज्य का इसीलिये नाश हुआ था कि वहाँ के शासकों तथा निवासियों को जैसा योग्य होना चाहिए था, वे लोग वैसे योग्य नहीं हुए। पेरिक्लीज की कामना यही थी कि एथेंस का साम्राज्य समस्त मनुष्य-जाति के लिये कल्याण और मंगल करनेवाला हो। ऐसे साम्राज्य के लिये जैसे योग्य व्यक्तियों की आवश्यकता थी, वैसे व्यक्ति अब एथेंस में उत्पन्न नहीं होते थे।

---

३. हेल्लास का अवनति-काल

ई० पू० ४३१ में एथेंस और स्पार्टा में एक युद्ध छिड़ा था। यह युद्ध यद्यपि बीच-बीच में बंद हो जाता था, तो भी वह ई० पू० ४०४ तक बराबर चलता रहा। यह पेलोपोनीशियन युद्ध कहलाता है। जब यह युद्ध समाप्त हुआ, तब एथेंस के साम्राज्य के बहुत-से देश और नगर उसके हाथ से निकल गए थे। यद्यपि इसके थोड़े ही दिनों बाद एथेंस ने फिर कुछ शक्ति संपादित कर ली थी, तथापि वह अपना पुराना महत्त्व इसके बाद फिर कभी प्राप्त न कर सका। ई० पू० ४०४ से ३७८ तक यूनानी नगरों में स्पार्टा का महत्त्व ही सबसे अधिक रहा। ई० पू० ३७८ में थीब्स ने उसके नेतृत्व के विरुद्ध विद्रोह ठाना। थीब्सवालों की नई-नई सेना थी, और बड़े-बड़े नेता थे, जिससे वे लोग स्पार्टा की शक्ति छिन्न-भिन्न करने में समर्थ हुए। इसके बाद कुछ दिनों तक थीब्स ही यूनान का प्रधान नगर रहा। अंत में एक नई शक्ति, जो इधर कुछ दिनों से उत्तर की ओर बढ़ रही थी, वहाँ आ पहुँची, और उसने यूनानी संसार का नेतृत्व ग्रहण कर लिया।

इसके बाद के समय का यूनान का इतिहास बहुत ही बिगड़ी हुई दशा में पाया जाता है। यह ठीक है कि पेलोपोनीशियन युद्ध का इतिहास संसार के एक बहुत बड़े इतिहास-लेखक ने लिखा है, जिसका नाम थ्यूसिडाइडीज है। यह इतिहास-लेखक भी इस युद्ध में लड़ा था, और इसी ने उसका पूरा-पूरा वर्णन लिखा है। उसने उस युद्ध की मुख्य-मुख्य घटनाएँ लेकर यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि यूनान के पतन के क्या कारण थे। उसकी बातें इतनी

बुद्धिमत्ता-पूर्ण, इतनी निष्पक्ष, इतनी स्पष्ट और इतनी ठिकाने की है कि आजकल भी यदि वह पुस्तक पढ़ी जाय, तो उससे राजनीति-संबंधी बहुत-सी नई-नई बातें मालूम होती हैं, और नई-नई शिक्षाएँ मिलती हैं। प्रत्येक राजनीतिज्ञ और विचारशील उसका अध्ययन करके अपना ज्ञान बहुत कुछ बढ़ा सकता है। फिर इस युद्ध में बहुत-सी उत्तेजक तथा रोमांचकारिणी घटनाएँ भी हुई थीं। एक बार एथेंसवालों ने स्पार्टा की सेना को स्फेक्टेरिया-नामक टापू के पाइलोस-नामक बंदरगाह में चारो ओर से घेर लिया था, और अंत में रात के समय उन पर आक्रमण करके उन्हें पकड़ लिया था। इसके अतिरिक्त एथेंसवालों ने सिसली पर भी चढ़ाई की थी, और आरंभ में अनेक युद्धों में उन्हें अच्छी सफलता हुई थी। सायराक्यूज के बंदर में एक बहुत बड़ा युद्ध हुआ था। वहाँ एथेंसवाले परास्त होकर पीछे हटे थे, और अंत में उनकी सारी सेना ने आत्मसमर्पण कर दिया था। थ्यूसिडाइडीज ने इन सब घटनाओं का जैसा मनोहर, उत्तेजक तथा रोमांचकारी वर्णन किया है, इस प्रकार की घटनाओं का वैसा वर्णन बहुत ही कम स्थानों में पाया जाता है।

पेलोपोनीशियन युद्ध का वर्णन एक बहुत बड़े इतिहास-लेखक ने तो अवश्य किया है, पर इससे एक विशेष बात की ओर से हमारा लक्ष्य हट नहीं जाना चाहिए। वह बात थ्यूसिडाइडीज की समझ में भी स्पष्ट रूप से आ गई थी, और उसने उसका उल्लेख भी किया है। वह यह कि ई० पू० ४३० के बाद से यूनान में केवल ऐसे ही आदमी होने लगे, जिनके विचार, आकांक्षाएँ और उद्देश्य आदि पहले के लोगों की इन बातों की अपेक्षा छोटे और तुच्छ थे। एथेंस और स्पार्टा में जो युद्ध आरंभ हुआ था, उसमें धीरे-धीरे पश्चिमी यूनान के सभी लोग आकर सम्मिलित हो गए थे।

पारसियों के साथ यूनानवालों के जो युद्ध हुए थे, वे तो एक बड़े उद्देश्य और आदर्श को सामने रखकर हुए थे। पर पेलोपोनीशियन युद्ध में इस प्रकार का कोई बड़ा उद्देश्य या आदर्श किसी के सामने नहीं था। इसमें सब नगरों का मुख्य उद्देश्य यही था कि हम दूसरे नगरों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करें। ई० पू० ४०० के बाद से तो यह बात और भी अधिक स्पष्ट रूप से देखने में आती है। उस समय के बाद से यूनानी राज्यों में बहुत दिनों तक आपस में जो बहुत बड़े-बड़े झगड़े और लड़ाइयाँ होती रही थीं, उनमें छोटी-छोटी शक्तियाँ केवल छोटे-छोटे उद्देश्यों की सिद्धि के लिये ही सम्मिलित होती थीं। ये सब घटनाएँ बहुत ही पेचीली भी हैं, और इनका वर्णन भी पढ़ने में मनोरंजक नहीं है। यूनानी नगरों के जीवन में से सारा महत्त्व निकल गया था, और वे सब छोटी-छोटी बातों के लिये आपस में व्यर्थ ही लड़-भिड़कर जिस तरह अपनी शक्ति का नाश कर रहे थे, उसका वर्णन पढ़कर पाठकों को क्रोध-सा आता है। इसीलिये हम उस समय के इतिहास का कोई विस्तृत वर्णन नहीं करना चाहते। उसकी केवल मुख्य-मुख्य घटनाओं तथा बातों का ही संक्षेप में कुछ वर्णन कर देते हैं।

पेलोपोनीशियन युद्ध के मूल-कारण का पता लगाना कोई कठिन काम नहीं है। एथेंस की बहुत अधिक उन्नति हो चुकी थी, और अब वह बहुत लोभी हो चला था। व्यापार के जितने सुबीते और लाभ थे, वे सब वह स्वयं ही प्राप्त करना चाहता था। इससे कोरिंथ तथा मेगारा-सरीखे दूसरे बड़े और व्यापारी नगरों के मन में भय भी उत्पन्न होने लगा और ईर्ष्या भी। एथेंस की शक्ति बराबर बढ़ती जा रही थी। वह परम स्वार्थी होकर दूसरे देशों का व्यापार बराबर नष्ट कर रहा था। दूसरे नगर अपना

व्यापार इस प्रकार चौपट होता हुआ देखकर चुपचाप बैठे नहीं रह सकते थे। ऐसी अवस्था में एक छोटा-सा कारण उत्पन्न होने या ज़रा-सा बहाना मिलने पर भी युद्ध ठन सकता था। यदि कहीं ऐसा कोई युद्ध छिड़ता, तो स्पार्टा का भी उसमें सम्मिलित होना निश्चित ही था। कोरिंथ और मेगरा दोनो ही पेलोपोनीशियन नगर थे। यदि वे लोग एथेंस के साथ युद्ध आरंभ करते, तो स्पार्टावाले भी उनकी सहायता करने के लिये अवश्य ही बाध्य होते; क्योंकि स्पार्टा स्वयं भी एथेंस से ईर्ष्या करता और उसकी बढ़ती हुई आकांक्षाएँ देखकर मन-ही-मन भयभीत होता था। उसी अवसर पर कोरिंथ और कोरिकायरा में कुछ झगड़ा हो गया, जिसमें एथेंस ने कोरिंथ के विरुद्ध होकर कोरिकायरा का पक्ष लिया। बस, इसी समय से युद्ध आरंभ हो गया। यदि यह युद्ध उस समय न आरंभ होता, तो बाद में अवश्य ही किसी और बात पर आरंभ हो जाता, क्योंकि युद्ध होना प्रायः निश्चित ही था। उन दिनों यूनानी राज्य आपस में एक दूसरे के साथ लड़ने के लिये सदा कमर कसे तैयार रहते थे।

एक तो एथेंस के पास स्वयं ही बहुत बड़ा जहाज़ी बेड़ा था, जिस पर कोरिकायरा का बेड़ा भी उसके साथ आ मिला था। स्पार्टावालों को कोरिंथ का जहाज़ी बेड़ा मिल गया था, जो यूनान में उन दिनों एथेंस के बेड़े को छोड़कर बाक़ी और सब नगरों के बेड़ों से ज़बरदस्त था। युद्ध में उसका यह बेड़ा बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ था। पर स्पार्टा की मुख्य शक्ति उसकी स्थल-सेना ही थी; और इसके अतिरिक्त उसके कुछ मित्र तथा साथी भी उसकी ओर हो गए थे। एथेंस तो पेलोपोनीज के समुद्र-तट पर स्थित क़स्बों पर आक्रमण कर

सकता था, पर स्पार्टा किसी प्रकार एट्टिका पर आक्रमण नहीं कर सकता था। जिन नगरों के चारो ओर परकोटे बने थे, उन पर आक्रमण करने के यंत्र दोनो में से किसी एक पक्ष के पास भी नहीं थे। हर साल स्पार्टा की सेना एट्टिका-प्रदेश में घुस जाती और वहाँ की फ़सल नष्ट कर डालती थी। इसके बाद एट्टिका-प्रांत के डिसीलिया-नामक स्थान में स्पार्टावालों ने कुछ क़िलेबंदी कर ली, और एथेंसवालों का वह मार्ग बंद कर दिया, जिस मार्ग से उनका अनाज और जैतून आता था। इस मार्ग के बंद हो जाने से अब एथेंसवाले चाँदी की अपनी उस खान से चाँदी भी नहीं निकाल सकते थे, जो लारियम-नामक स्थान में थी। अब एथेंसवालों को धन के लिये बहुत अधिक कठिनता होने लगी। अपनी यह आर्थिक कठिनता दूर करने के लिये एथेंस ने अपने साथी नगरों से दूना कर लेना आरंभ कर दिया। पर एथेंस के लिये इसका परिणाम भी अच्छा नहीं हुआ, और एथेंस के प्रति दूसरे नगरों की निष्ठा तथा भक्ति और भी कम हो गई। अब अनेक नगर जल्दी-जल्दी विद्रोह करने लगे, जिससे उनका दमन करने के लिये एथेंस को अपनी और भी अधिक शक्ति व्यय करनी पड़ी। इसके सिवा स्पार्टावालों ने एट्टिका में जो लूट-पाट मचाई थी, उससे वहाँ के समस्त किसानों का सर्वस्व नष्ट हो गया। जब उनका घर-बार और खेती-बारी कुछ भी नहीं रह गई, तब वे सब लोग नगर में जा पहुँचे। उन दिनों नगरों में नल आदि का कोई प्रबंध तो होता ही नहीं था, इसलिये जब नगर में किसानों की भीड़ बहुत बढ़ गई, तो गंदगी भी बहुत ज़्यादा फैलने लगी, जिससे वहाँ प्लेग शुरू हुआ। उस प्लेग से एथेंस में हज़ारों आदमी मरने लगे। अंत में उसके एक चौथाई नागरिक इसी प्लेग की नज़र हो गए, जिससे उसका

मनुष्य-बल बहुत कम हो गया, और उसे सेना में काम करने के लिये कम आदमी मिलने लगे। इसी प्लेग में पेरिक्लीज़ के दो लड़के और एक बहन भी मर गई थी। ई० पू० ४२९ में स्वयं पेरिक्लीज़ की भी मृत्यु हो गई। यह एथेंस की सबसे बड़ी क्षति थी।

तात्पर्य यह कि इस लड़ाई-झगड़े के कारण एथेंसवालों का बल बहुत ही घट गया, और उनकी वास्तविक शक्ति बिलकुल क्षीण हो गई। यहाँ तक कि अंत में वे लोग युद्ध से तंग आ गए। एक ओर तो एथेंसवालों को अपना साम्राज्य अक्षुण्ण बनाए रखने का प्रयत्न करना पड़ता था, और दूसरी ओर स्पार्टावालों का तथा अपने ही देश के निवासी दूसरे शत्रुओं का मुक़ाबला करना पड़ता था। ये दोनो काम साथ मिलकर इतने विकट हो गए थे कि वे इनकी ठीक-ठीक व्यवस्था नहीं कर सकते थे। एथेंसवालों पर इस क्षय और नाश का जो बुरा प्रभाव पड़ा था, उसका एक स्पष्ट प्रमाण यह देखने में आता था कि उनमें कई प्रकार के दोष और दुर्बलताएँ बढ़ती जा रही थीं। अब वे लोग अपने सच्चे राज-नीतिज्ञों की बुद्धिमत्ता-पूर्ण सम्मति पर भी ध्यान नहीं देते थे। और, क्लीयन तथा एल्किबियाइडीज़-सरीखे लोगों की बातें मानना ही अधिक पसंद करते थे। इनमें से क्लीयन तो पहले मोची का पेशा करता था, और बहुत हाज़िरजवाब, बहादुर और साथ ही ईमानदार भी था। उसमें दोष यह था कि वह बहुत कठोर-स्वभाव का और उद्दंड था। सदा उग्र तथा भीषण उपायों से ही काम लिया करता था, फिर चाहे वे उपाय कितने ही मूर्खता-पूर्ण क्यों न हों। दूसरा एल्किबियाइडीज़ यद्यपि धनवान्, कुलीन और बहुत अधिक योग्य था, और कुछ दिनों तक जनता का आराध्यदेव-सा बना हुआ था, तथापि ईमानदारी उसे छू भी

नहीं गई थी*। वह सदा अपनी शक्ति प्रकट करने के अवसर ढूँढ़ा करता था, और एथेंसवालों को प्रायः बहुत ही विकट कामों में लगा दिया करता था। फिर चाहे उसमें कितनी ही अधिक जोखिम क्यों न हो। बस, एथेंसवाले ऐसे ही लोगों की सलाह पर चला करते थे। जो लोग लंबी-चौड़ी बातें बघार सकते थे, उनका कहना एथेंसवाले तुरंत मान लेते थे। पर जो लोग अच्छे सेनापति तथा नेता थे, और जो यह जानते थे कि इस समय कौन-सा काम बुद्धिमत्ता-पूर्ण है और कौन-सा मूर्खता-पूर्ण, उन लोगों का जनता पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता था।

अब एथेंसवालों में एक यह भी दुर्गुण आ गया था कि वे अपने अच्छे-से-अच्छे और योग्य-से-योग्य नेताओं का भी बहुत सहज में अविश्वास कर बैठते थे। स्पार्टावालों ने एटिका पर जो आक्रमण किया था, उसके लिये उन्होंने पेरिक्लीज़ तक पर जुर्माना कर दिया था। उन्होंने एल्किबियाइडीज़ को अपना प्रधान सेनापति चुन लिया। जब एल्किबियाइडीज़ सेनाओं को लेकर युद्ध-क्षेत्र की ओर रवाना हो गया, तब लोगों ने उसे फिर वापस बुला लिया। इसका कारण यही था कि एल्किबियाइडीज़ के कुछ शत्रुओं ने उन लोगों को कुछ उलटी-सीधी बातें समझा दी थीं, जिससे उन लोगों का विश्वास तुरंत

* एल्किबियाइडीज एक दिन पेरिक्लीज से मिलने गया था। वहाँ पेरिक्लीज के आदमियों ने उससे कह दिया कि इस समय हमारे मालिक को फ़ुरसत नहीं है, क्योंकि वह यह सोच रहे हैं कि जनता को हिसाब-किताब कैसे समझाया जाय। इस पर एल्किबियाइडीज ने वहाँ से चलते समय कहा था—"उन्हें हिसाब-किताब समझाने के झमेले में ही नहीं पड़ना चाहिए और ऐसी तरकीब सोचनी चाहिए, जिसमें हिसाब-किताब बिलकुल समझाना ही न पड़े।"

ही एल्किबियाडीज़ पर से हट गया, और उन्होंने उसे वापस बुला भेजा। जब किसी ने एल्किबियाडीज़ से कहा कि एथेंसवालों ने आपकी अनुपस्थिति में आपको प्राणदंड देना निश्चित किया है, तब उसने उत्तर दिया था—"मैं उन लोगों को दिखला दूँगा कि मैं जीवित हूँ।" बस, तुरंत ही वह वहाँ से भाग निकला, और जाकर स्पार्टावालों के साथ मिल गया। स्पार्टावालों को उसने जो-जो परामर्श दिए थे, उनके कारण आगे चलकर युद्ध में एथेंसवालों की अनेक बड़ी-बड़ी हानियाँ हुई थीं। निकियास नाम का एक और व्यक्ति था, जो युद्ध-क्षेत्र में सेना का संचालन तो अच्छी तरह नहीं कर सकता था, पर राजनीति का वह बहुत अच्छा ज्ञाता और साथ ही ईमानदार भी था। यद्यपि वह स्वयं सेनापति नहीं बनना चाहता था, तो भी अपनी इच्छा के विरुद्ध वह बार-बार सेनापति नियुक्त किया जाता था। और, राजनीतिक विषयों में वह जो परामर्श देता था, उसकी ओर कोई ध्यान ही नहीं देता था। एक बार ऐसा हुआ कि छ सेनापतियों ने जल-युद्ध में एक बहुत बड़ी विजय प्राप्त की। उस विजय के उपरांत समुद्र में तूफ़ान आ गया, जिसमें एथेंसवालों के पचीस जहाज़ डूब गए। उन जहाज़ों पर जो आदमी सवार थे, उन्हें बाक़ी बेड़े के लोग किसी तरह बचा नहीं सके थे, क्योंकि तूफ़ान बहुत तेज़ था। बस, इसी अपराध में उन छ सेनापतियों को फाँसी दे दी गई।

इधर यह युद्ध तो चल ही रहा था; इसके लिये एथेंस-वालों को अपनी समस्त शक्तियाँ सावधानी से एकत्र करने की आवश्यकता थी, पर ऐसा न करके वे लोग नए-नए प्रांतों पर भी चढ़ाई कर उन पर विजय प्राप्त करने की उधेड़-बुन में लगे रहते थे। यह भी इस बात का एक प्रमाण है कि उस समय उनकी बुद्धि कैसी भ्रष्ट हो गई थी। ई० पू० ४१५ में सायराक्यूज़-नगर

पर आक्रमण करने के लिये एथेंसवालों ने सिसली में अपनी एक सेना भेजी थी, जिसकी वस्तुतः कोई आवश्यकता नहीं थी। पर इसमें सबसे अधिक आश्चर्य की बात यही है कि इस चढ़ाई में एथेंसवालों को एक बहुत बड़ी सीमा तक सफलता मिली थी। पर हाँ, इसके लिये प्रायः दो वर्षों तक उन्हें ऐसे समय में अपने बहुत-से सैनिक सिसली भेजने पड़े थे, जब उन्हें स्वयं अपने प्रांत के आस-पास ही उनकी बहुत बड़ी आवश्यकता थी। उन्होंने सायरा-क्यूजवालों के साथ युद्ध तो छेड़ दिया था, पर वे उसकी ठीक-ठीक व्यवस्था नहीं कर सकते थे। पहले उन्होंने अपनी सेनाएँ तीन सेनापतियों के अधीन रक्खी थीं, और तब केवल दो सेनापतियों के अधीन कर दीं। उनके सेनापति तो युद्ध-क्षेत्र के जो समाचार उनके पास भेजते थे, उनमें बराबर यही कहते थे कि इस अवसर पर युद्ध जारी रखना बहुत बड़ी जोखिम का काम है। पर फिर भी वे उनकी बात नहीं सुनते थे, और उन्हें बराबर लड़ाई जारी रखने का ही हुक्म देते थे। यद्यपि आरंभ में एथेंसवालों को इस युद्ध में बहुत कुछ सफलता हो चुकी थी, पर अंत में वे अपने इस प्रयत्न में बहुत बुरी तरह विफल हुए थे, और उन्हें भारी क्षति उठानी पड़ी थी। इस युद्ध में एथेंसवालों की सारी शक्ति व्यर्थ ही नष्ट हो गई। यद्यपि इसके बाद वे लोग प्रायः नौ वर्षों तक स्पार्टावालों के साथ लड़ते रहे, पर उसी समय उनकी अवस्था ऐसी हो गई थी कि नाम-मात्र के लिये भी उनके सफल होने की आशा नहीं रह गई थी।

लेकिन इतना सब होने पर भी यदि स्पार्टावाले विदेशियों को अपनी सहायता के लिये न बुलाते, तो बहुत संभव था कि वे और उनके साथी इस युद्ध में कभी विजयी न होते; और यदि वे किसी प्रकार इसमें विजयी हो भी जाते, तो भी उनकी विजय उस विशाल रूप में न होती, जिसमें हुई थी। एथेंस-

वाले जब तक अपना एक अच्छा समुद्री बेड़ा तैयार रख सकते, तब तक कोई शत्रु एथेंस पर अधिकार नहीं कर सकता था। इसीलिये एथेंस और उसके युद्ध का अंत तब हुआ, जब स्पार्टा ने पारस से सहायता ली। स्पार्टावालों ने पारसवालों से धन लेकर बहुत-से नए जहाज़ बनाए, और उन पर सैनिक भरती किए। इसीलिये वे लोग ईगोस्पोटामी के युद्ध में एथेंस के जहाज़ी बेड़े को पराप्त करके नष्ट कर सके। जब एथेंस का जहाज़ी बेड़ा नष्ट हो गया, तब उस पर समुद्र के मार्ग से आक्रमण करना बहुत सहज हो गया। स्पार्टा के जहाज़ बराबर आगे बढ़ते हुए पिरेइयस-नामक स्थान तक चले गए, और तब एथेंस को स्पार्टावालों के हाथ बिना किसी शर्त के आत्मसमर्पण कर देना पड़ा। कोरिंथ और थेबेस-वाले यह चाहते थे कि सारा एथेंस नगर ही पूरी तरह से नष्ट कर दिया जाय, और सारा राष्ट्र या सारी जाति गुलाम बनाकर बेच दी जाय, पर स्पार्टा इस चरम सीमा तक नहीं जाना चाहता था। अंत में हुआ यही कि एथेंसवालों के पास विदेशों में जो अधिकृत स्थान थे, वे सब उन्हें दे देने पड़े। उन्होंने अपने प्रांत की रक्षा के लिये एथेंस से पिरेइयस तक एक बहुत बड़ी और ऊंची दीवार बना रक्खी थी, और पिरेइयस में अच्छी-ख़ासी क़िलेबंदी कर रक्खी थी। वह सारी दीवार और क़िलेबंदी उन्हें गिरा देनी पड़ी। एथेंस को स्पार्टा का अधीनस्थ और मित्र बनना पड़ा; तथा यह निश्चय हुआ कि स्पार्टावाले जब और जहाँ चलकर युद्ध करने के लिये कहेंगे, तब वहाँ चलकर एथेंसवाले युद्ध करेंगे। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि स्वयं अपने प्रांत से संबंध रखनेवाली और आंतरिक बातों में उसे पहले से जो स्वतंत्रता प्राप्त थी, वह ज्यों-की-त्यों बनी रहने दी गई।

इस प्रकार एथेंस के साम्राज्य का अंत हो गया। एथेंस-

नगर फिर धीरे-धीरे शक्ति संपादित करने लगा, क्योंकि उसका व्यापार अभी तक उसके हाथ में ही था, नष्ट नहीं हुआ था। हाँ, उसका सारा सैनिक बल अवश्य नष्ट हो गया था। इसके बाद चालीस वर्षों तक यूनान में उसकी गिनती केवल दूसरे दर्जे के राज्यों में होती रही।

कला और साहित्य के क्षेत्रों में अब भी एथेंस में बहुत अच्छी-अच्छी और ऊँचे दर्जे की कृतियाँ प्रस्तुत होती रहीं। यूरिपाइडीज ने अपने जो अंतिम नाटक और अरिस्टोफेनीज ने जो सुखांत नाटक लिखे थे, उनमें से अधिकांश युद्ध-काल में ही लिखे थे। परंतु सुकरात के उपदेश, प्लेटो तथा जेनोफन के लेख और लीसियस, आसोक्रेटीज तथा डिमास्थिनीज के (डिमास्थिनीज के संबंध में अगले प्रकरण में कुछ और बातें बतलाई जायँगी।) भाषण आदि तथा प्राक्सिटिलीज की मूर्तियाँ आदि सब युद्ध-काल के उपरांत की ही कृतियाँ हैं। इसमें संदेह नहीं कि वे सभी बहुत बड़ी-बड़ी कृतियाँ हैं। विचार और साहित्य की दृष्टि से एथेंस अभी तक यूनान का केंद्र ही बना रहा। यूनान में पहलेपहल जिस स्थान पर कला की सृष्टि और विकास हुआ था, उस स्थान का प्रभाव कला पर अभी तक बराबर पड़ रहा था। पर इतना अंतर अवश्य हो गया था कि अब जो यूनानी चित्र आदि बनते थे, वे या तो धनवानों के लिये बनते थे या केवल बड़े-बड़े नगरों के लिये। पहले एथेंस में मूर्तियों तथा चित्रों आदि की बहुत अधिक बिक्री होती थी, पर अब वहाँ उनकी बिक्री कम हो चली थी। वास्तुकारों का भी एथेंस में अब पहले की तरह आदर नहीं होता था। अब तो संसार के अन्यान्य भागों में—विशेषतः एशिया माइनर के अमीर और शौक़ीन शहरों में—ही यूनान के बड़े-बड़े

वास्तुकार, स्कोपास-सरीखे मूर्तिकार तथा बड़े-बड़े प्रसिद्ध यूनानी चित्रकार जाकर रहते और काम करते थे। एथेंस फिर भी धीरे-धीरे उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रहा था, और अपना प्राचीन महत्त्व-पूर्ण स्थान फिर से प्राप्त करना चाहता था, पर अभी तक वह उस स्थान पर पहुँच नहीं सका था।

प्रायः छब्बीस वर्षों तक (ई० पू० ४०४ से ३७८ तक) स्पार्टा का सैनिक बल बहुत अधिक था; पर इस बीच में कभी उसने अपने को साम्राज्य का स्वामी होने के योग्य नहीं सिद्ध किया। वह जो कुछ कर सकता था, अपनी शक्ति के ही भरोसे कर सकता था—किसी बात के भरोसे वह कोई काम कर ही नहीं सकता था। यदि उसे किसी नगर की भक्ति या निष्ठा के संबंध में तनिक भी संदेह होता, तो वह बहुत ही भीषण रूप से उसका दमन करता था। यद्यपि अपने साथियों और मित्रों की सहायता से ही वह पेलोपोनीशियन-युद्ध में विजयी हो सका था, तो भी विजय प्राप्त करते ही वह अपने सभी मित्रों और साथियों को बिलकुल भूल गया, और विजय से होनेवाले सब लाभ वह अपने ही हाथ में रखने का प्रयत्न करने लगा। विशेषतः पारसवालों के साथ तो उसने सबसे बड़ी मूर्खता का व्यवहार किया। उसने एक प्रकार से एशियाई यूनानियों को पारसवालों के हाथ बेचकर उनसे सहायता प्राप्त की थी। अर्थात् उसने पारसवालों को यह वचन दे दिया था कि एशिया में रहनेवाले यूनानियों के साथ आप लोग चाहे जैसा व्यवहार करें, हम लोग उसमें कोई दख़ल नहीं देंगे। यह मानो यूनान के साथ बहुत बड़ी धोकेबाज़ी थी। इसके बाद एशिया के नगरों में रहनेवाले यूनानी फिर कभी स्वतंत्र नहीं हुए। यद्यपि स्पार्टा का यह कार्य बहुत ही अनुचित था, तो भी कम-से-कम पारसवालों के साथ उसे ईमानदारी का बर्ताव करना

चाहिए था। पर ऐसा न करके वह उलटे ऐसे काम करने लगा, जिससे पारसवालों की हानि होने लगी। जब पारस के बादशाह आर्टेक्स-रक्सीज के भाई साइरस ने उससे पारस का राजसिंहासन छीनना चाहा, तब स्पार्टा ने पारस के बादशाह की सहायता न करके उसके भाई साइरस की ही सहायता की। स्पार्टा का राजा एजिसिलास एशिया माइनर के पारसी प्रांतों पर आक्रमण करने के लिये भेजा गया। उसने बहुत-से यूनानी क़स्बों को फिर से जीतकर अपने अधिकार में कर लिया। अंत में पारसवालों ने एथेंस के कोनन-नामक एक जल-सेनापति को नियुक्त किया। तब कोनन ने पारसी जहाज़ों की सहायता से ई० पू० ३९४ में, नाइडस के युद्ध में, स्पार्टा का जहाज़ी बेड़ा नष्ट किया। तब कहीं जाकर एशियाई स्थानों पर से स्पार्टा का अधिकार उठा। इसके बाद बहुत दिनों तक पारस बराबर स्पार्टा का शत्रु बना रहा, और उसने एथेंसवालों को अपनी प्रसिद्ध लंबी दीवार फिर से बनाने के लिये धन दिया। हेल्लास के लिये इस समय सौभाग्य की यही बात थी कि पारसी साम्राज्य दिन-पर-दिन बल-हीन होता जा रहा था। हम यहाँ एक ऐसी घटना का उल्लेख करते हैं, जिससे भली भाँति यह सिद्ध हो जायगा कि उन दिनों पारस की शक्ति कितनी अधिक कम हो गई थी। जब साइरस पारस के राजसिंहासन पर अधिकार करने चला था, तब वह अपने साथ भाड़े के दस हज़ार यूनानी योद्धा लेता गया था। पर बैबिलोन के निकट उस सेना की पारसी सेना के साथ मुठभेड़ हो गई। उस युद्ध में साइरस मारा गया, और यूनानी सेना को पीछे हटना पड़ा था। इसके बाद यूना-नियों की वही भाड़ेवाली सेना सारा पारसी साम्राज्य पार करके सकुशल साथी कृष्ण सागर तक जा पहुँची। रास्ते में किसी ने उन सैनिकों से यह भी न पूछा कि तुम कहाँ जा रहे हो। यदि उस

समय पारसी साम्राज्य की शक्ति बहुत अधिक घट न गई होती, तो एक बार फिर उसकी जल तथा स्थल-सेनाएँ यूनान के तटों पर ही दिखलाई पड़तीं।

यूनान में स्पार्टा के जो मित्र और साथी थे, अब वे भी उसके विरोधी और शत्रु हो गए। स्पार्टा का विरोध और मुक़ाबला करने के लिये एथेंस, थीब्स, कोरिंथ और आरगोस ने मिलकर एक संघ बनाया। कुछ दिनों तक स्पार्टा जैसे-तैसे इस संघ का मुक़ाबला करता रहा; पर इसमें भी उसे कठिनता होती थी, क्योंकि अब उसकी सेना में वह पहले की-सी बात नहीं रह गई थी। अंत में उसका पतन एक ऐसी ही धोखेबाज़ी के कारण हुआ, जैसी वह प्रायः औरों के साथ किया करता था। एक बार थीब्सवालों के साथ उसकी स्थायी संधि हो गई थी, पर इसी बीच में उसने अपने कुछ सैनिकों को थीब्स के एक गढ़ पर अधिकार करने के लिये भेज दिया। इस निर्लज्जता-पूर्ण कार्य (ई० पू० ३८१) से थीब्सवाले फिर स्पार्टा के विरुद्ध उठ खड़े हुए। उन्होंने उस गढ़ पर पहुँचकर स्पार्टा के सब सैनिकों को वहाँ से भगा दिया। और, तब उन्होंने अपनी सेना में फिर से सुधार करना आरंभ किया। इसके बाद उन्होंने थिसली के जैसन-नामक एक राजा के साथ मेल करके थिसली की घुड़सवार सेना अपनी सहायता के लिये ले ली। थीब्स में उन दिनों दो बहुत ही अच्छे नेता और सेनापति थे। उनमें से एक का नाम पेलोपिडास था, जिसे युद्ध-क्षेत्र में विजय प्राप्त करने में बहुत अच्छी सफलता होती थी। उनका दूसरा नेता एपेमोनन्डास था। यह भी युद्ध-विद्या का बहुत अच्छा जानकार था। इसका चरित्र बहुत अच्छा था, और विचार भी बहुत उदार थे। यह थीब्स का बहुत बड़ा देशभक्त नागरिक था। इन दोनो नेताओं के नेतृत्व में थीब्सवाले बराबर सफलता-पर-सफलता प्राप्त करते गए। उन्होंने

दो-तीन स्थानों पर स्पार्टावालों को बहुत बुरी तरह से परास्त किया। अंत में वे लोग लेकोनिया में ऐसे स्थान पर पहुँच गए कि स्वयं स्पार्टा के बचने में भी संदेह होने लगा। इसके सिवा उन्होंने पेलोपोनीज़ के दक्षिण-पश्चिम में मेस्सिनी-नामक एक नया और स्वतंत्र नगर भी स्थापित करा दिया, जिससे स्पार्टा की शक्ति की नींव बहुत कुछ हिल गई। इससे पहले स्पार्टा ने मेस्सिनी के बहुत-से निवासियों को अपना ग़ुलाम बना रक्खा था। अब जो मेस्सिनी का नया और स्वतंत्र नगर स्थापित हुआ था, उसमें स्पार्टा के वे सब ग़ुलाम भागकर चले आते थे। साथ ही स्पार्टा जिन लोगों को देश-निकाले का दंड देता था, वे भी आकर वहीं बस जाते थे। ऐसे लोगों को शरण के लिये यह नगर बहुत अच्छा स्थान मिल गया था। वे लोग यहाँ आकर सुख-पूर्वक रह सकते थे। इस प्रकार स्पार्टा के पड़ोस में ही एक ऐसा नया राज्य तैयार हो गया था, जो स्पार्टा का पूरा शत्रु था। इसका परिणाम यही हुआ कि स्पार्टा को अपनी बहुत कुछ शक्ति स्वयं अपने घर में या उसके पास-पड़ोस में लगानी पड़ी। वह अब दूर-दूर के स्थानों में पहुँचकर उपद्रव नहीं कर सकता था।

इसके बाद कुछ वर्षों तक थीब्स ही यूनान में सबसे अधिक शक्तिशाली नगर रहा। पर जिस समय थीब्सवालों ने मैंटीनिया-नामक स्थान में एक बहुत बड़ी विजय पाई थी (ई० पू० ३६२), उसी समय इपैमिननडास की मृत्यु हो गई। पेलोपिडास इससे दो वर्ष पहले ही एक युद्ध में मारा जा चुका था। इन दोनो नेताओं के न रह जाने पर थीब्स फिर अपनी पुरानी गिरी हुई दशा पर पहुँच गया। उसके बाद से उसने फिर कभी यूनान में कोई बड़ा काम करने का प्रयत्न नहीं किया।

अब फिर यूनान का नेतृत्व एक बार एथेंस के हाथ में गया। इधर

चालीस वर्षों से यद्यपि यूनान के कामों में उसका स्थान कुछ गौण-सा था, तो भी वह स्थान प्रतिष्ठा-पूर्ण था। विदेश में उसके हाथ से जो स्थान निकल गए थे, उनमें से कुछ स्थानों पर उसका फिर से अधिकार हो गया था। कृष्ण सागर पर के तथा थ्रेस के कुछ क़स्बों के साथ उसका मित्रता-पूर्ण संबंध स्थापित हो गया था। उसके पास इतना धन नहीं था कि वह कोई बड़ी सेना रख सकता। और, अब युद्ध का स्वरूप ऐसा हो गया था कि बिना पेशेवर सिपाहियों के काम ही नहीं चल सकता था। अब तक तो यही होता आया था कि नागरिक लोग ही आवश्यकता पड़ने पर सेना में भरती हो जाते थे, और जब युद्ध समाप्त हो जाता था, तब वे अपने-अपने घर चले जाते थे। पर अब इस तरह से काम चलने के दिन नहीं रह गए थे। अब प्रत्येक राज्य को वैतनिक सैनिकों पर ही अधिकाधिक निर्भर रहना पड़ता था। इसीलिये बहुत-से लोग ऐसे निकल आए थे, जो सेनाओं में काम करके ही जीविका-निर्वाह करते थे। यद्यपि एथेंस की सेना छोटी थी, तो भी उसका जहाज़ी बेड़ा अच्छा था, उसके सेनापति बहुत योग्य थे, और उसका व्यापार भी अच्छी तरह चल रहा था। और, सबसे बड़ी बात यह थी कि पेलोपोनीशियन-युद्ध समाप्त हो जाने पर एथेंस-निवासियों में फिर बहुत कुछ दम आ गया था। दलबंदियाँ तो अब भी चल रही थीं, पर अब उनके कारण आपस में उतना अधिक राग-द्वेष नहीं होता था। इस समय एथेंस में जो राजनीतिज्ञ थे, वे प्रायः बुद्धिमान् और योग्य थे। एथेंस के सब काम वे बहुत सतर्क होकर और बुद्धिमत्ता-पूर्वक चलाते थे।

एथेंस-नगर अब पहले की तरह एक बड़े साम्राज्य का केंद्र नहीं रह गया था। इसके सिवा उसके निवासियों में जो दोष थे, वे अभी तक बने हुए थे। सारी शक्ति जनता की सभा या एसेंबली

के ही हाथ में थी। लोग एसेंबली से सहज में अपने मनोनुकूल निर्णय करा सकते थे। महत्त्व-पूर्ण विषयों पर भी एसेंबली उचित निर्णय न करके केवल भावुकता के वश होकर उलटा-सीधा निर्णय कर बैठती थी। यदि किसी विषय में वह आज एक प्रकार का निर्णय करती थी, तो कल ही वह पहला निर्णय बिलकुल उलट भी देती थी। कभी-कभी यह भी होता था कि वह युद्ध की घोषणा तो कर देती थी, पर जहाज़ी बेड़े को ख़र्च देने से इनकार कर देती थी, या जहाज़ी बेड़े को युद्ध के लिये भेजती ही नहीं थी, और तब उसे रसद आदि देने से भी इनकार कर देती थी। जनता का अपने सेनापतियों पर कभी पूरा और सच्चा विश्वास नहीं होता था। यदि दुर्भाग्य-वश किसी राजनीतिज्ञ या परामर्शदाता की सम्मति का फल कुछ उलटा निकल आता था, अथवा शक्ति विरोधी दल के लोगों के हाथ में चली जाती थी, तो उस राजनीतिज्ञ या परामर्शदाता पर मुक़द्दमा भी बहुत जल्दी चल जाता था। कभी-कभी तो कुछ शक्तिशाली लोग केवल प्रसिद्धि प्राप्त करने के लिये ही किसी बड़े नेता पर मुक़द्दमा चला दिया करते थे। इसका परिणाम यह होता था कि एथेंस के राजनीतिज्ञों को फूँक-फूँककर क़दम रखना पड़ता था। वे लोग कभी कोई बड़ा काम करने का परामर्श नहीं देते थे, क्योंकि आगे चलकर उसके कारण उन्हें अपने ऊपर विपत्ति आने की आशंका रहती थी।

जो राज्य ऐसी अवस्था में हो, उससे भला कब यह आशा की जा सकती थी कि वह दृढ़ता-पूर्वक कोई कार्य करेगा, अथवा जो कार्य आरंभ करेगा, उसका उचित निर्वाह कर सकेगा। ऐसा राज्य छोटी-मोटी कठिनाइयों से तो जैसे-तैसे पार पा सकता था, पर भारी विपत्ति के समय कुछ भी नहीं कर सकता था। बस, एथेंस उन दिनों इसी अवस्था में यूनान का नेतृत्व कर रहा था। अगले प्रकरण

में पाठकों को पता चलेगा कि मेसिडोनिया के फ़िलिप का मुख्य विरोध एथेंस ने ही किया था। पर वास्तविक बात यही है कि हेल्लास के नगर बहुत दिनों तक आपस में ही लड़ते-लड़ते थककर चूर हो गए थे, और उनकी बहुत-सी शक्ति नष्ट हो चुकी थी। यदि उस समय कोई यथेष्ट बलवान् शक्ति उन लोगों के सामने आ खड़ी होती, तो वे इतने अधिक दुर्बल थे कि ठीक तरह से उसका मुक़ाबला नहीं कर सकते थे।

---

४. मकदूनिया का युग

इधर सैकड़ों वर्षों से मकदूनिया में कई ऐसे वर्गों के लोग रहते थे, जो वस्तुतः यूनानियों की ही संतान थे, पर जिनमें संभवतः कुछ उत्तरी जातियों का भी रक्त मिश्रित हो गया था। हेलास के यूनानी उन लोगों को कभी शुद्ध यूनानी नहीं समझते थे। वे लोग परिश्रम-पूर्वक खेती-बारी का काम करते थे, और जंगलों में शिकार आदि करके अपना निर्वाह करते थे। वे सब वर्ग प्रायः आपस में भी लड़ा करते थे, और मकदूनिया के आस-पास थिसली, इल्लीरिया और थ्रेस के जो निवासी रहते थे, उनसे भी लड़ते रहते थे। वे लोग प्रायः असभ्य ही थे। यूनानी ज्ञान तथा कला की उन्नति में उन्होंने कोई सहायता नहीं की थी। वे वर्ग अपने-अपने सरदारों की अधीनता में बिलकुल जंगलियों की तरह रहा करते थे।

वहाँ सरदारों के कई वंश थे, जिनमें से एक वंश का नाम आरगीडी था। यह वंश धीरे-धीरे बहुत बलवान् हो गया था, और आगे चलकर इसी वंश के लोग सारे देश के राजा होने लगे थे। ई० पू० ४१३ में इस वंश का एक व्यक्ति, जिसका नाम आरकेलास था, सारे मकदूनिया का राजा हो गया। उसने देश में बहुत-सी नई सड़कें बनवाकर और नए नगर बसाकर उसकी दशा बहुत कुछ सुधार दी थी, और अनेक कलाविदों को भी बहुत कुछ प्रोत्साहित किया था। कई अच्छे गवैए, चित्रकार और कवि उसके दरबार में रहा करते थे। आरकेलास की मृत्यु के उपरांत देश में

अव्यवस्था फैल गई। आस-पास की कई जातियाँ तथा वर्ग मकदूनिया पर चढ़ दौड़े। अंत में फिलिप-नामक एक व्यक्ति ने उन लोगों से मकदूनियावालों की रक्षा की। और, ई० पू० ३५६ में वही मकदूनिया का राजा भी हो गया।

फिलिप वास्तव में बहुत योग्य व्यक्ति था, उसमें अनेक बड़े-बड़े गुण थे। वह अपने राज्य में अनेक प्रकार के सुधार करने लगा। जब वह नवयुवक था, तब एक बार थीब्सवाले उसे अपने यहाँ पकड़ ले गए थे। उन्होंने उसे कुछ दिनों तक अपने पास ओल में रक्खा था। उस समय एपेमिननडास ने थीब्सवालों को युद्ध-विद्या की जो-जो बातें बतलाई थीं, वे सब बातें फिलिप ने भी वहाँ रहने की दशा में सीख ली थीं। अब वह मकदूनिया की सेना के सुधार में उन्हीं सब बातों का उपयोग करने लगा। उसने ई० पू० ३५२ में सारे थिसली-प्रदेश पर विजय प्राप्त कर ली, और वहाँ के निवासियों तथा इल्लीरियावालों को मार भगाया। समुद्र-तट पर के भी तीन-चार अच्छे-अच्छे क़स्बों पर उसने अधिकार कर लिया, जिससे वहाँ की सोने की खानें भी उसके हाथ आ गईं। अब अपनी बड़ी-बड़ी योजनाओं के अनुसार काम करने के लिये उसके पास यथेष्ट धन हो गया। उस धन से उसने एक अच्छा जहाज़ी बेड़ा तैयार किया। इस प्रकार कुछ ही दिनों में मकदूनिया की शक्ति बहुत अधिक बढ़ गई। फिलिप के मन में यह आकांक्षा थी कि समस्त यूनानी मुझे अपना सरदार और नेता मानें। अब उसने इतनी शक्ति भी संगठित कर ली थी कि वह इस पद पर पहुँच सकता था।

यूनान के नगरों में न तो पहले ही कभी एकता थी, और न उन दिनों ही थी। यद्यपि एथेंसवालों को बहुत कुछ कटु अनुभव

हो चुका था, पर फिर भी ऐसा जान पड़ता था कि उस अनुभव से उसने कोई शिक्षा नहीं ग्रहण की थी, क्योंकि अब भी वह अपने साथियों के साथ ठीक तरह से व्यवहार नहीं करता था। बाक़ी नगर भी पहले की ही तरह आपस में लड़ा-भिड़ा करते थे। यों तो हेल्लास के यूनानी कभी किसी बात में आपस में सहमत नहीं होते थे, पर एक बात अवश्य ऐसी थी, जिसमें वे सब लोग एकमत थे। उन यूनानियों में कोई ऐसा नहीं था, जो फिलिप को यूनान का नेता होने के योग्य समझता। इस विषय में उन लोगों का कहना यही था कि फिलिप असली यूनानी ही नहीं है। दूसरी बात यह थी कि फिलिप राजा था, और यूनानी लोग कभी किसी राजा का प्रभुत्व सहन नहीं कर सकते थे। पर सच बात तो यह थी कि असल में वे न तो फिलिप की अधीनता में और न किसी दूसरे व्यक्ति की अधीनता में मिलकर एक होना चाहते थे।

इस प्रकार फिलिप की यह आकांक्षा देखकर हेल्लास के यूनानी अपने मन में समझते थे कि यह हमारी स्वतंत्रता पर आक्रमण करना चाहता है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि फिलिप की बढ़ती हुई शक्ति को रोकने के लिये यूनानियों ने कोई विशेष और उपयुक्त प्रयत्न किया था, पर फिर भी उसका जो थोड़ा-बहुत विरोध हुआ था, वह मुख्यतः एथेंस की ओर से ही अथवा उसके प्रयत्न से ही हुआ था। और, एथेंस ने इस विषय में जो थोड़ा-बहुत साहस दिखलाया था, उसका मूल-कारण एक ही व्यक्ति था, जिसका नाम डिमास्थिनीज़ था। वह बहुत अच्छा वक्ता था। बल्कि अच्छे-अच्छे जानकारों का तो यहाँ तक कहना है कि संसार में आज तक डिमास्थिनीज़ से बढ़कर और कोई वक्ता हुआ ही नहीं। वक्तृत्व शक्ति के अतिरिक्त डिमास्थिनीज़ में

देशहितैषिता भी बहुत अधिक थी। फ़िलिप के प्रयत्नों और कार्यों को वह बहुत संदेह की दृष्टि से देखता था, और एथेंसवालों को उसका अच्छा ख़ासा विरोध करने के लिये उसकाने और उत्तेजित करने में उसने अपनी शक्ति-भर कोई बात उठा नहीं रक्खी। इस काम में उसे बीच-बीच में थोड़ी-बहुत सफलता भी हो जाया करती थी; पर फिर भी जैसी सफलता चाहिए थी, वैसी उसे कभी नहीं हुई। एथेंसवालों के पास न तो सैनिक ही थे, और न सैनिकों को देने के लिये धन ही था; और अब तो इनके पास सेना का संचालन करने के लिये सेनापति भी नहीं रह गए थे। स्वयं डेमास्थिनीज़ को युद्ध-संबंधी कुछ भी ज्ञान नहीं था, और न वह यही समझता था कि फ़िलिप की शक्ति कितनी अधिक है। हेलास के दूसरे नगरों के विरुद्ध तो एथेंस फिर भी कुछ-न-कुछ कार्रवाई कर सकता था, पर मकदूनिया की उस नई सेना के मुक़ाबले में, जिसका संचालन फ़िलिप-सरीखा सेनापति करता था, एथेंस का कोई वश नहीं चलता था। और, यह बात निश्चित थी कि यदि एथेंस किसी प्रकार फ़िलिप पर चढ़ाई करता, तो युद्ध छिड़ते ही पूर्ण रूप से परास्त हो जाता।

यह आक्रमण भी अचानक नहीं हुआ। एक प्रकार से यह कहा जा सकता है कि ई० पू० ३५० से ३४६ तक एथेंस और मकदूनिया में कुछ-न-कुछ लड़ाई बराबर चलती रहती थी, पर उन दिनों फ़िलिप उत्तर की ओर अपनी शक्ति दृढ़ करने में लगा हुआ था, और अभी वह दक्षिण की ओर आने के लिये तैयार नहीं था। वह अब तक एथेंस से बराबर खेलवाड़ खेल रहा था। इसी बीच में उसका विरोध करने के लिये एथेंस ने थीब्स के साथ मित्रता भी स्थापित कर ली थी। पर ज्यों ही फ़िलिप ने अपनी कुछ विशेष शक्ति के साथ दक्षिण की ओर ध्यान दिया, त्यों ही केवल एक युद्ध

में सारा क़िस्सा ख़त्म हो गया।' यह युद्ध कैरोनिया-नामक स्थान में, ई० पू० ३३८ में, हुआ था। वह युद्ध बहुत ही भीषण हुआ था। उसमें एथेंस तथा थीब्सवाले बहुत अच्छी तरह लड़े थे। अंत में हुआ वही, जिसके होने की बहुत पहले से आशा थी। अर्थात् फ़िलिप के सामने इन दोनो की सम्मिलित सेनाएँ भी परास्त हो गईं। फ़िलिप को पूरी-पूरी विजय प्राप्त हुई, और कुछ समय तक हेलास में फ़िलिप की सेनाएँ ख़ूब मनमाने ढंग से चारो तरफ़ घूमती रहीं। थीब्स और बोएशिया को फ़िलिप ने अपने राज्य में मिला लिया, और लेकोनिया को ख़ूब अच्छी तरह लूटा। इसके सिवा कैल्सिस और कोरिंथ में मकदूनिया की पलटनें रख दी गईं। यद्यपि एथेंस के साथ बहुत कुछ रियायत की गई थी, तो भी उसे मकदूनिया का मित्र बनने के लिये विवश किया गया। फ़िलिप समस्त योरपियन यूनानियों का स्वामी हो गया, और अब वह अपने मन की दूसरी बात पूरी करने के उपाय सोचने लगा। वह चाहता था, समस्त यूनानियों की एक बहुत बड़ी सेना लेकर पारस पर चढ़ाई करे। वह सोचता था, यदि मैं एशिया के यूनानी नगरों को भी स्वतंत्र कर लूँगा, और उन्हें पारस के बादशाह की अधीनता से छुड़ा लूँगा, तो फिर मैं समस्त यूनानियों का राजा और सरदार बन जाऊँगा। यदि वह पारसी साम्राज्य पर आक्रमण करता, तो उसके सामने पारसी साम्राज्य का छिन्न-भिन्न हो जाना भी कोई बहुत बड़ी बात नहीं थी; और तब एक यूनानी शासक समस्त (पश्चिमी) सभ्य संसार का स्वामी हो सकता था।

फ़िलिप ने अभी पारसी साम्राज्य पर चढ़ाई करने की तैयारी भी पूरी नहीं की थी कि वह मार डाला गया। यह घटना ई० पू० ३३६ की है। पर अपना वह अधूरा काम वह अपने ऐसे पुत्र पर छोड़ गया था, जो इन कामों में उससे भी बढ़ा-चढ़ा था। सिकंदर

उन आदमियों में से है, जिनके नाम के साथ इतिहास ने 'महान्' विशेषण लगा दिया है, और सिकंदर इस विशेषण का पूर्ण रूप से अधिकारी था। वह जन्म-भर आश्चर्य-जनक रूप से विजय प्राप्त करता रहा, और अपनी इन विजयों का उसने जिस ढंग से उपयोग करना चाहा था, वह ढंग और भी अद्‌भुत था। उसकी इन सब विजयों का परिणाम यह हुआ कि सारे संसार का रूप ही बदल गया। वह केवल योद्धा और सेनापति ही नहीं था; उसमें युद्ध-बुद्धि तो असाधारण रूप से थी ही, पर इसके सिवा उसमें कुछ और भी विशेषताएँ थीं। उसकी शिक्षा-दीक्षा बहुत अच्छी और जैसी चाहिए, वैसी ही हुई थी। ज्ञान तथा कलाओं के प्रति उसमें वैसा ही पूरा अनुराग था, जैसा यूनानियों में बहुत दिनों से होता चला आता था। सुप्रसिद्ध मूर्तिकार लिसिप्पस तथा चित्रकार एपेल्लीस पर उसकी बहुत कृपा रहती थी। उसने उस सुप्रसिद्ध विद्वान् अरस्तू से शिक्षा पाई थी, जो यूनान का सबसे बड़ा पंडित था। अरस्तू बहुत ऊँचे दर्जे का वैज्ञानिक और विचारशील था। उसमें अध्ययन की असीम शक्ति थी। उसमें एक बहुत बड़ा गुण यह भी था कि वह जिन विषयों को जानता था, लिखने के समय उनका विन्यास बहुत ही अच्छे ढंग से करता था। उसका विषय-विभाग भी बहुत प्रशंसनीय होता था। वह बहुत सहज में यह समझ लेता था कि किन-किन बातों से दूसरी बातों के समझने में अधिक सहायता मिलती है। तात्पर्य यह कि वह ज्ञातव्य विषयों और बातों को बहुत ही अच्छे ढंग से और बहुत पूरी तरह से यथास्थान सज्जित करने की अद्‌भुत शक्ति रखता था। सिकंदर ऐसे ही गुरु का शिष्य था। चाहे हेल्लास के यूनानियों ने कभी यह बात न मानी हो कि मकदूनिया-वाले असली यूनानी थे, पर इसमें संदेह नहीं कि पेरिक्लीज के उपरांत सिकंदर ही सबसे बड़ा यूनानी कहलाने का अधिकारी

था। वस्तुतः यूनान की आत्मा उसी में बसती थी, और उसी ने उस यूनानी आत्मा की बड़ी-से-बड़ी विजयों के लिये मार्ग उन्मुक्त किए थे।

पारस पर आक्रमण करने के लिये निकलने से पहले सिकंदर को पहले दो वर्ष अपने राज्य को दृढ़ करने में लगाने पड़े थे। इस बीच में उसने थ्रेस और इल्लीरिया पर आक्रमण करके उन्हें अपने अधीन किया था। उसने थीब्स के विद्रोह का दमन किया था, थीब्स-नगर नष्ट कर दिया था, और वहाँ के निवासियों को गुलामों के तौर पर बेचकर हेल्लास पर अपना अधिकार दृढ़ किया था। इसके उपरांत ई० पू० ३३४ में वह विदेशों पर आक्रमण करने के लिये तैयार हो गया। चलते समय उसने मित्रों को ऐसी अच्छी-अच्छी चीज़ें उपहार-स्वरूप दी थीं कि उन मित्रों को उससे पूछना पड़ा—"आख़िर, आपने अपने लिये क्या बचा रक्खा है?" इस पर उसने उत्तर दिया था—"आशा।"

पारस का साम्राज्य अब भी पहले की ही तरह बड़ा और विस्तृत था; और आकार की विशालता के कारण उसकी जो प्रसिद्धि हुई थी, वह अभी तक बनी थी। उसके उस आकार अथवा प्रसिद्धि में अभी तक कोई अंतर नहीं आया था। पर हाँ, अब उसकी वह पहली शक्ति नहीं रह गई थी। वहाँ का बादशाह अयोग्य था, और सेना की दशा बहुत ख़राब हो गई थी। पारसवालों की जो सेनाएँ कुछ अच्छी तरह लड़ी थीं, वे उन्हीं यूनानी सैनिकों की सेनाएँ थीं, जो भाड़े पर लड़ने के लिये बुलाई गई थीं। पर वे सैनिक भी संख्या में इतने अधिक नहीं थे, जो पारस की शक्तियों की उस नाशक विपत्ति से रक्षा कर सकते, जो पारसियों की बहुसंख्यक, परंतु निकम्मी और कायर सेनाओं के कारण पारसी साम्राज्य पर आ रही थी। परिणाम यह हुआ कि पारस की शक्ति को सिकंदर

ने बहुत सहज में कुचल डाला। हेलास के छोटे-छोटे नगर-राज्य सिकंदर के इस अभिमान से मन-ही-मन जलते तो बहुत थे, पर उनमें से कोई कुछ कर नहीं सकता था। सिकंदर ने अपने साथ ३५,००० सैनिकों को लेकर हेलेस्पॉंट-नामक स्थान पार किया था, जिनमें से आधे तो मकदूनिया के निवासी थे, और बाक़ी थ्रेस, थिसली तथा उनके आस-पास के रहनेवाले लोग थे। वह जिधर चढ़ाई करता था, उधर बराबर जीतता हुआ ही चला जाता था। ई० पू० ३३४ में उसने ग्रैनिकस-नामक स्थान में पारसी सेना को पूर्ण रूप से परास्त किया, और तब वह यूनानी नगरों को पारसियों के शासन से मुक्त करता हुआ एशिया माइनर से होकर आगे बढ़ने लगा। आगे बढ़ने से पहले वह आस-पास के उन सभी लोगों को साफ़ करता चलता था, जिनसे उसे किसी प्रकार के शत्रुता-पूर्ण व्यवहार की आशा थी। इसलिये ई० पू० ३३३ में उसने आइसस-नामक स्थान पर फिर एक बार पारसियों को परास्त किया, और तब वह दक्षिण की ओर मुड़ा। उसने टायर पर अधिकार कर लिया, और पारसवालों से उनका फिनीशियन जहाज़ी बेड़ा छीन लिया। अब वह समुद्र के किनारे-किनारे आगे बढ़ने लगा, और गाज़ा-नामक स्थान पर आक्रमण करके उसने मिस्र में प्रवेश किया, और उसे अपने राज्य में मिला लिया। वहाँ उसने कुछ दिनों तक ठहरकर अपने नाम से असकंदरिया-नामक नगर बसाया, जो बहुत शीघ्र पूर्वी भूमध्यसागर का एक ख़ास बंदरगाह बन गया।

ई० पू० ३३१ में वह पारसी साम्राज्य के केंद्र पर आक्रमण करने के लिये तैयार हो गया था। आरबेला के युद्ध में उसने पारसी सेनाओं को पूरी तरह से परास्त किया था, और उसके थोड़े ही दिनों बाद पारस के बादशाह दारा की मृत्यु हो गई। बैबिलोन, सूसा, परसिपोलिस और एकबेटाना आदि पारसी साम्राज्य के
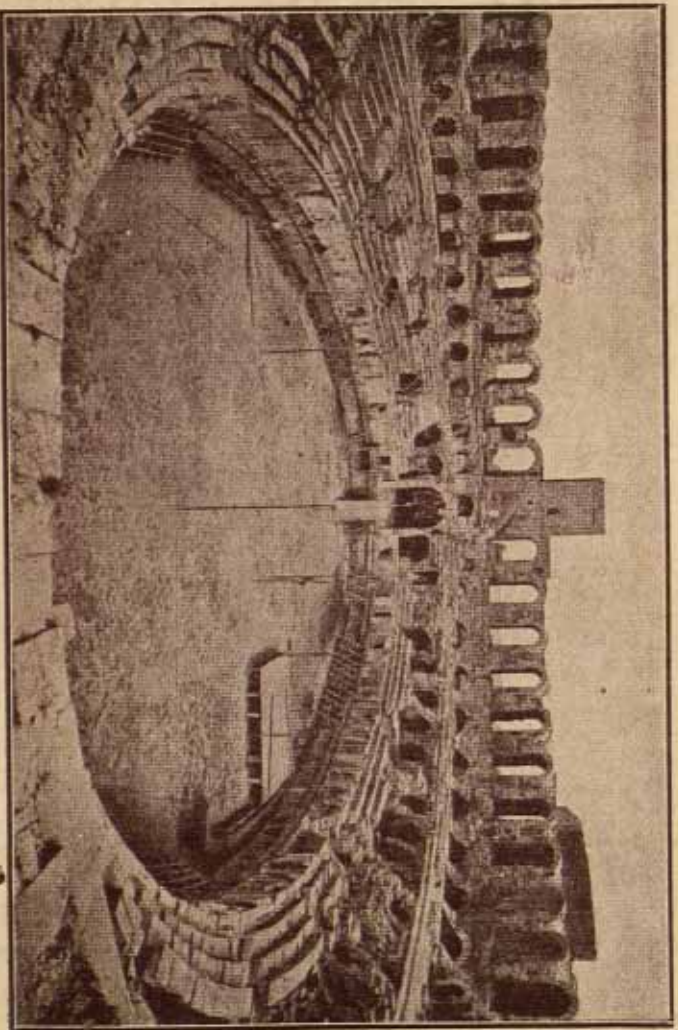
आरलीज़ का अखाड़ा
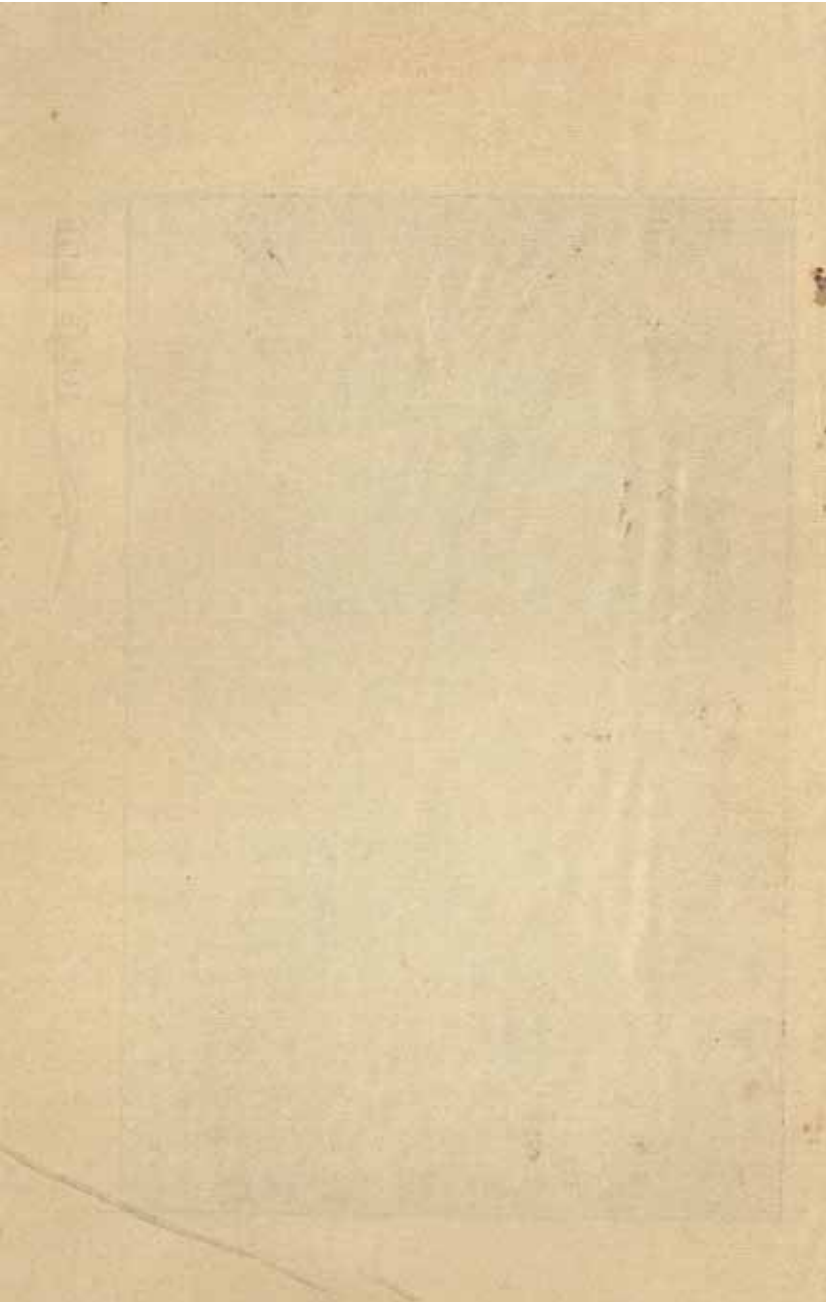
सभी नगरों ने एक-एक करके उसके हाथ में आत्मसमर्पण कर दिया। पर उसकी आकांक्षा अभी तक पूरी नहीं हुई थी; इसलिये पहले तो वह सोगडियाना गया, और तब वहाँ से होता हुआ सीधा भारत तक आ पहुँचा। ई० पू० ३२७ में उसने सिंध-नद पार किया। वहाँ मार्ग में जो सेनाएँ उसके सामने पड़ती थीं, उन्हें हराता हुआ वह सतलज-नदी तक आ पहुँचा। पर वहाँ पहुँचकर उसके सैनिकों ने आगे बढ़ने से इनकार कर दिया। इधर सात वर्षों से वे लोग बराबर आगे बढ़ते चले आ रहे थे, और अपने निवास-स्थान से बहुत दूर निकल आए थे। वे योरप से बहुत दूर आगे नहीं जाना चाहते थे। इसलिये सिकंदर को विवश होकर पीछे लौटना पड़ा *। वह अपनी सेना लेकर पश्चिम की ओर बढ़ा।

वहाँ उसे सिंध के रेगिस्तान का एक भाग पार करना पड़ा, जिसमें साठ दिनों तक उसके सैनिकों को भीषण कष्टों और विपत्तियों का सामना करना पड़ा था। इसी रेगिस्तान में उसके तीन-चौथाई सैनिक नष्ट हो गए थे। वह रेगिस्तान पार करने पर उसने कुछ समय तक विश्राम किया, और फिर से सेना एकत्र की। वहाँ से

---

* सिकंदर के साथ जो यूनानी इतिहास-लेखक भारत में आए थे, उन्हीं के लेखों के आधार पर यह कहा जाता है कि अपने सैनिकों के आगे बढ़ने से इनकार करने पर सिकंदर को विवश होकर स्वदेश की ओर लौटना पड़ा था। पर हाल में भारतीय विद्वानों ने इस विषय में जो खोज की है, उससे सिद्ध होता है कि उस समय मगध में चंद्रगुप्त मौर्य का बल बहुत बढ़ रहा था, और अपनी थकी हुई सेना को लेकर सिकंदर को चंद्रगुप्त मौर्य का सामना करने का साहस नहीं होता था; इसीलिये वह सब परिस्थितियों को समझ-बूझकर आगे नहीं बढ़ा, और स्वदेश लौट गया।—अनुवादक

वह मकदूनिया की ओर लौटा। वह अभी और बहुत-से देशों पर विजय प्राप्त करने की चिंता में था, पर इसी बीच में वह भीषण ज्वर से पीड़ित हुआ, और ई० पू० ३२३ में, बैबिलोन में, उसका स्वर्गवास हो गया।

थोड़े ही दिनों में सिकंदर ने इतने अधिक भूभाग को जीतकर अपने अधीन कर लिया। जितने अधिक भूभाग पर उससे पहले कभी किसी एक आदमी का अधिकार नहीं हुआ था। यद्यपि उसे विजय आदि प्राप्त करने का बहुत ही थोड़ा समय मिला था, तो भी उसने भली भाँति यह सिद्ध कर दिखलाया था कि जीते हुए प्रदेशों का किस प्रकार उपयोग करना चाहिए, और उनकी व्यवस्था कैसे करनी चाहिए। उसका मुख्य उद्देश्य यह था कि पूर्व और पश्चिम का, योरप और एशिया का, यूनान और पारस का संयोग करा दिया जाय, और वह उन सब पर सम्मिलित शासन करना चाहता था। उसने अपने यूनानी अफ़सरों को पारसी राजकुमारियों के साथ विवाह करने के लिये उत्साहित किया था, और स्वयं उसने भी दारा की कन्या के साथ अपना विवाह किया था। वह जहाँ कहीं जाता था, वहीं यूनानी ढंग के नगर बसाता था, और यूनानियों से उनमें आकर बसने के लिये कहता था। (कहा जाता है, उसने इस प्रकार के सत्तर नगर बसाए थे।) ऐसे नगरों के बसाने में उसके दो हेतु थे—एक तो यह कि वे नगर गढ़ों और क़िलों का भी काम दें, जिसमें आस-पास के बड़े-बड़े प्रांत उसके भक्त और निष्ठ बने रहें, और दूसरा हेतु यह था कि उसके साम्राज्य के पूर्वी प्रदेशों में व्यापार और सभ्यता के केंद्र स्थापित हों। वह अपने जीते हुए प्रांतों में यूनानी गवर्नर नियुक्त करता था, पर वहाँ के निवासियों के रहन-सहन के उन पुराने ढंगों में कोई विशेष परिवर्तन नहीं करता था। उसकी सभी बातों से ऐसा जान पड़ता है कि वह निश्चित रूप

से एक बड़े साम्राज्य की नींव स्थापित करना चाहता था, और उसकी इच्छा थी कि मेरे सारे साम्राज्य में एक ही प्रकार की सभ्यता दिखाई पड़े।

उसका यह विचार बहुत उच्च था। उसके कार्यों का परिणाम यह हुआ कि सारे संसार के इतिहास में बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया। उसने पूर्व को यूनानी प्रभावों से प्रभावान्वित किया। उसने जो द्वार खोला था, उससे पूर्व में यूनानी-भाषा तो आई ही थी, उसके साथ सभ्यता की भी एक बड़ी बाढ़-सी आ गई थी *। यहाँ तक कि उसके जीते हुए प्रदेशों के गाँवों और देहातों तक में यूनानी प्रभाव पहुँच गया था, और बड़े-बड़े नगर तो मानो उसकी शक्ति के मुख्य केंद्र ही हो गए थे। पर इतना अवश्य है कि उसके कारण पूर्वी देशों में जिस सभ्यता का प्रचार हुआ था, उसमें एशिया के तरफ़ की बहुत-सी पुरानी बातें भी मिली हुई थीं। इसीलिये इस मिश्रण का बोधक जो अँगरेज़ी-शब्द(Hellenistic) है, वह इस बात का सूचक है कि वह सभ्यता यूनानियों की सभ्यता से मिलती-जुलती हुई और उसी के ढंग की थी। इसका यह अर्थ नहीं कि वह शुद्ध यूनानी थी। स्वयं सिकं-

---

* मूल-लेखक का यह मत फ़ारस और अफ़ग़ानिस्तान आदि देशों के संबंध में तो बहुत कुछ मान्य हो सकता है, पर भारत के संबंध में उतना अधिक नहीं। एक तो भारत के बहुत ही थोड़े अंश में सिकंदर की सेनाएँ पहुँच सकी थीं, और दूसरे यहाँ के निवासी उस समय भी परम सभ्य थे, इसलिये भारत के संबंध में यह नहीं कहा जा सकता कि यहाँ भी यूनानी सभ्यता की बाढ़ आ गई थी। यूनानियों के साथ भारतीयों का अनेक क्षेत्रों में बहुत कुछ आदान-प्रदान हुआ था, और स्वयं यूनानियों ने ही भारत से बहुत कुछ सीखा था।—अनुवादक

दर ने ही पूर्व या एशिया की बहुत-सी बातें ग्रहण कर ली थीं, जिसके कारण उसके सैनिक और हेल्लास के बहुत-से यूनानी उससे अप्रसन्न हो गए थे *। विशेषतः इस कारण वे लोग उससे और भी अप्रसन्न हुए थे कि उस पर पूर्वीय भावों और विचारों का इतना अधिक प्रभाव पड़ा था कि वह देवताओं के समान अपनी पूजा तक कराने के लिये उत्सुक हो गया था। यद्यपि उसकी सभ्यता मिश्रित थी, तो भी वह देखने में यूनानी ही जान पड़ती थी, और यूनानी ढंग पर ही चलती थी। यही कारण था कि वह पश्चिम में बहुत दिनों तक बनी रही। एशिया के अनेक देशों की सभ्यता सैकड़ों वर्षों तक यूनानी ढंग की ही रही। जब अरबों का ज़ोर हुआ, तब कहीं जाकर उस सभ्यता का रूप बदला। यहाँ तक कि जब रोम ने बलवान् होकर एशिया पर विजय प्राप्त की, तब न तो उसने इन सब बातों को बदलने का ही कोई प्रयत्न किया, और न उसमें इनके बदलने की शक्ति ही थी। पूर्व या एशिया में जो रोमन साम्राज्य था, उसकी भी कई मुख्य-मुख्य बातें यूनानी ही थीं।

इस प्रकार सिकंदर की विजय ने एशिया के अनेक पुराने देशों में बहुत कुछ नवीन सभ्यता का प्रचार किया था, और इस संबंध में उसने जो कीर्ति संपादित की थी, वह उससे किसी प्रकार छीनी

---

* यहाँ आकर मूल-लेखक ने भी एक प्रकार से यह बात मान ली है कि एशिया और विशेषतः भारत में बहुत-सी ऐसी अच्छी और नई बातें थीं, जिन्हें गुण-ग्राहक सिकंदर ने ग्रहण कर लिया था। इसी से इस मत की भी पुष्टि होती है कि भारतवासियों पर यूनानियों का जितना प्रभाव पड़ा था, उसकी अपेक्षा यूनानियों पर भारतवासियों का अधिक प्रभाव पड़ा था।—अनुवादक

नहीं जा सकती। पर यदि संसार पर शासन करने के विचार से देखा जाय, तो यही मानना पड़ेगा कि उसे सब बातों की ठीक-ठीक व्यवस्था करने का समय ही नहीं मिला था, और न वह अपना कोई उत्तराधिकारी ही नियत कर सका था। उसने सारे संसार को एक ऐसा बड़ा साम्राज्य स्थापित करके दिखला दिया था, जिसमें प्रायः सभी जातियाँ आ गई थीं। पर इस साम्राज्य की उपयुक्त व्यवस्था करके उसे दृढ़ करने से पहले ही उसे मृत्यु ने आ घेरा। अभी तक उस बड़े साम्राज्य का उपयुक्त समय ही नहीं आया था, जिसमें एशिया और योरप दोनो एक साथ अंतर्भुक्त हो सकते।

सिकंदर की मृत्यु के उपरांत उसके साम्राज्य में सभी जगह उसके सेनापति आपस में लड़ने-झगड़ने लगे। उनमें से प्रत्येक सेनापति यही चाहता था कि या तो सारा साम्राज्य मैं ही अपने अधिकार में कर लूँ, या उसका अधिक-से-अधिक जितना अंश हो सके, उतने पर ही अधिकार कर बैठूँ। इस झगड़े का एक यह परिणाम अवश्य हुआ कि आफ्रिका, एशिया और योरप के निवासी अपने-अपने स्थान पर स्थित हो गए। मिस्र में सारा अधिकार टालेमी-नामक एक सेनापति के हाथ में चला गया। उसने वहाँ दृढ़ता-पूर्वक अपना अधिकार जमा लिया, और उसके वंशधरों ने वहाँ दो सौ वर्षों तक राज्य किया। इसके उपरांत उनकी शक्ति धीरे-धीरे क्षीण होती गई। इसका मुख्य कारण यही था कि वहाँ कई दल राजसिंहासन के लिये आपस में लड़ने-भिड़ने लग गए थे। इसके सिवा बाहरी शत्रुओं के साथ भी उन्हें अनेक युद्ध करने पड़े थे। अंत में रोमन लोग वहाँ जा पहुँचे, और उन्होंने उस देश पर अपना पूरा अधिकार कर लिया। एशिया में सिकंदर के जो प्रांत थे, उन पर सेल्यूकस ने अधि-

कार कर लिया*, और उसके उत्तराधिकारियों ने पश्चिमी एशिया के राज्यों को मिलाकर सीरिया का राज्य स्थापित किया। सीरिया भी मिस्र के साथ बराबर लड़ता रहता था, जिससे उसकी शक्ति भी धीरे-धीरे कम होती गई, और पीछे से उसे भी रोम ने थोड़ा-थोड़ा करके जीत लिया। योरप में कभी शांति स्थापित न हो सकी। यों तो यूनान की सभी रियासतों में मकदूनिया सबसे अधिक बलवान् था, पर वहाँ भी बहुत कुछ असंतोष फैला हुआ था, और सदा लड़ाई-झगड़े होते रहते थे। इसके उपरांत वहाँ कोई ऐसा राजा नहीं हुआ, जो हेल्लास के नगरों पर वैसा ही पूर्ण अधिकार रखता, जैसा फिलिप और सिकंदर ने रक्खा था। वे नगर स्वयं ही आपस में लड़ा-झगड़ा करते थे, और ऐसे ही संघ बनाया करते थे, जो न तो स्थायी ही होते थे, और न कुछ कर ही सकते थे। यूनान, बल्कि उसके साथ-साथ यूनानी युग का सारा संसार लड़-झगड़कर पूर्ण रूप से शिथिल हो गया था। ये सभी राज्य और रियासतें किसी तरह अपने दिन पूरे कर रही थीं, मानो इस बात की प्रतीक्षा कर रही थीं कि कोई बड़ी और बलवती शक्ति आकर हम लोगों पर अधिकार कर ले, और हम पर शासन करने लगे। और, यह बात तब हुई, जब रोमन-राज्य ने पूर्व की ओर

---

* पश्चिमी भारत के जिस थोड़े-से अंश पर सिकंदर ने अधिकार किया था, वह अंश भी चंद्रगुप्त मौर्य ने उससे बहुत शीघ्र छुड़ा लिया; बल्कि साथ ही सिंध-नदी के पश्चिम का भी बहुत-सा प्रदेश उसे सेल्यूकस से मिल गया। इसके अतिरिक्त सेल्यूकस को अपनी कन्या एथीना का विवाह भी चंद्रगुप्त के साथ कर देना पड़ा। इस प्रकार भारत पर सिकंदर का आक्रमण और अधिकार एक ऐसी मामूली हवा की तरह था, जो एक तरफ़ से आती है, और दूसरी तरफ़ निकल जाती है।—अनुवादक

रूख़ किया। इसलिये अब हम लोगों को फिर पीछे की ओर मुड़ना चाहिए, और यह देखना चाहिए कि रोम का प्राचीन इतिहास क्या था, तथा रोमवालों ने किस प्रकार धीरे-धीरे सिकंदर की बादशाहत पर क़ब्ज़ा किया। परंतु ऐसा करने से पहले हमें यह जान लेना चाहिए कि यूनानियों से संसार को मुख्यतः कौन-कौन-सी बातें मिली थीं। वस्तुतः इस समय योरप में जो सभ्यता फैली हुई है, उसका मुख्य आधार यूनानी ही है। यूनानियों ने ही सारे योरप को वे बातें सिखलाई थीं, जिन पर उनकी समस्त आधुनिक सभ्यता का आधार है। अतः यहाँ प्रश्न उत्पन्न होता है कि जो यूनानी आधुनिक सभ्य संसार के शिक्षक और गुरु थे, वे कैसे थे, और उन्होंने क्या-क्या काम किए थे? अगले प्रकरण में ये ही बातें बतलाई जायँगी।

---

५. संसार पर यूनानियों का ऋण

जिस प्रकार ब्रिटिश जाति के सब लोग एक समान नहीं हैं, उन सबमें कई प्रकार के अंतर हैं, उसी प्रकार यूनानी जाति के सब लोग भी एक समान नहीं थे। उन सबमें भी कई प्रकार के अंतर थे। एथेंस और स्पार्टा के निवासियों में उतना ही अंतर था, जितना इँगलैंड और स्काटलैंड के निवासियों में है। जब हम संसार पर यूनानियों के ऋण का उल्लेख करते हैं, तब पाठकों को इस बात का स्मरण रखना चाहिए कि हमारा अभिप्राय विशेषतः एथेंसवालों से है, और मुख्यतः एथेंस के उन निवासियों से है, जो पेरिक्लीज के समय में या उसके कुछ बाद हुए थे*, क्योंकि यूनानियों की अधिक-से-अधिक और अच्छी-से-अच्छी बातें एथेंसवालों से ही विकसित हुई थीं, और उन्हीं में थीं। एथेंस से जितनी अच्छी बातें पश्चिमी संसार को प्राप्त हुईं, उन सबकी सृष्टि पेरिक्लीज के ही युग में हुई थी।

एक बात यह भी है कि जिस तरह आजकल किसी एक नगर के सभी निवासी सब बातों में एक-से नहीं होते, उसी तरह उस समय भी एथेंस के सभी निवासी एक-से नहीं थे। एथेंस के बहुत-से निवासी चतुर या कला-कुशल थे और बहुत-से नितांत

---

* जिस प्रकार यूनान से मूल-लेखक का अभिप्राय केवल एथेंस के निवासियों से है, उसी प्रकार संसार से उनका अभिप्राय केवल पाश्चात्य संसार या योरप से समझना चाहिए, क्योंकि यह बात निश्चित है कि मध्य और पूर्वी एशिया के जीवन पर यूनानियों का प्रभाव शायद ही कहीं नाम-मात्र को पड़ा हो।—अनुवादक

मूर्ख या गवाँर । अतः पहले हम संक्षेप में यह बतला देना चाहते हैं कि उन दिनों एथेंस के निवासी साधारणतः कैसे होते थे। साथ ही हमें यह बात भी समझ रखनी चाहिए कि उनमें से कुछ लोग अच्छे भी थे और कुछ बुरे भी, तथा कुछ लोग इसके अपवाद रूप भी थे।

सबसे पहले हम यह बतला देना चाहते हैं कि जिस प्रकार धार्मिक विषयों में संसार में सबसे अच्छे शिक्षक यहूदी हुए हैं*, उसी प्रकार संसार को सौंदर्य का स्वरूप बतलाने में यूनानी लोग सबसे बढ़कर हुए हैं। जिन लोगों ने यूनानी साहित्य का अच्छा अध्ययन और यूनानी कला का अच्छा निरीक्षण किया है, उन्हें इस बात में तनिक भी संदेह नहीं कि यूनानियों ने ही सबसे पहले मानव-जाति को यह समझाया था कि सौंदर्य किसे कहते हैं, और किस प्रकार की शक्ति से सुंदर वस्तु प्रस्तुत की जा सकती है। हमारे पास यहाँ इतना स्थान नहीं है कि हम अपने इस कथन की पुष्टि में यूनानी साहित्य के उद्धरण अपने पाठकों के समक्ष उपस्थित करें, और न यूनानी कला के अच्छे-अच्छे छायाचित्रों से ही उसके वास्तविक गुणों का पता चल सकता है। तो भी संक्षेप में हम यह बतलाने का प्रयत्न करेंगे कि यूनानी लोग किस प्रकार का सौंदर्य पसंद करते थे, और वे किस प्रकार उसे दृष्टिगोचर कराने का प्रयत्न करते थे।

(१) सबसे पहली बात तो यह है कि यूनानी सौंदर्य सदा

---

* मूल-लेखक का यह कथन उसके संकुचित दृष्टिकोण का बहुत अच्छा परिचायक है। यह तो माना ही नहीं जा सकता कि इतना बड़ा विद्वान् भारत के आध्यात्मिक विचारों से परिचित न हो; फिर भी इस विषय में यहूदियों को ही प्रमुख स्थान देना संकीर्णता नहीं, तो और क्या है?—अनुवादक

सादा और सरल होता है। यूनानी लोग बहुत ज़्यादा बारीकी या बहुत ज़्यादा सजावट नहीं पसंद करते थे। उदाहरणार्थ, सिमनाइड की वह उक्ति लीजिए, जो थरमापिली में उस स्थान पर एक पत्थर पर अंकित है, जहाँ स्पार्टा के तीन सौ योद्धा कट मरे थे, पर अपने स्थान से हटे नहीं थे। वह लेख केवल इतना ही है—"ऐ अजनबी! तू स्पार्टा के निवासियों से कह दे कि आप लोगों की आज्ञा शिरोधार्य करके हम लोग यहाँ पड़े हैं।"

कवि को जो कुछ कहना था, वह सब उसने इन्हीं दो पंक्तियों में कह डाला है। न तो इसमें एक भी शब्द व्यर्थ कहा गया है, और न किसी प्रकार की अनुभूति को उत्तेजित करने का ही कोई प्रयत्न किया गया है। इससे सैनिकों का साहस और कर्तव्यपरायणता बिना बतलाए हुए आप-से-आप प्रकट हो रही है। आजकल भी युद्धों के बड़े-बड़े स्मृति-चिह्न बनते हैं, और उन पर बड़ी-बड़ी तारीफ़ें लिखी जाती हैं। ज़रा उन तारीफ़ों से ऊपर दिए हुए वाक्य से तुलना कीजिए। यूनानी लोग किसी वस्तु को ऐसा स्वरूप देते थे कि वह अपनी प्रशंसा आप ही, बिना किसी के कहे या सुझाए हुए, करा लेती थी*। पर आजकल के लोगों में यह बात नहीं पाई जाती। आजकल तो कोई बढ़िया बात कहने का प्रयत्न करके ही उसकी सारी सरलता नष्ट कर दी जाती है। यूनानी साहित्य में जो सर्वश्रेष्ठ अंश है, उसमें सब जगह यह सरलता आप-से-आप व्यक्त होती है। उदाहरण के लिये थ्यूसिडाइडीज़ के उस वर्णन का अंतिम अंश

---

* फ़ारसी की एक कहावत है—

مشک آنست کہ خود ببوید نہ کہ عطار بگوید

अर्थात् कस्तूरी वह है, जो स्वयं ही सुगंध दे, न कि अत्तार उसकी प्रशंसा करे।

ले लीजिए, जिसमें थिसलीवालों के आक्रमण या थ्यूसिडाइडीज के नगर के ध्वस्त होने का वर्णन है। (यह वर्णन कुछ बड़ा होने के कारण यहाँ उद्धृत नहीं किया गया।) अथवा प्लेटो का वह अंतिम वचन ले लीजिए, जो उसने अपने गुरु और मित्र सुक़रात की मृत्यु के वर्णन के अंत में कहा है, जो इस प्रकार है—"बस, इसी प्रकार हमारे उस मित्र का अंत हुआ था, जिसे हम अपने देखे और जाने हुए आदमियों में से सर्वश्रेष्ठ, सबसे अधिक बुद्धिमान् और सबसे अधिक न्यायपरायण कह सकते हैं।" सरलता का यही गुण हमें यूनानी मंदिरों में भी मिलता है, और हम कह सकते हैं कि यूनानियों ने जितनी सुंदर वस्तुएँ प्रस्तुत कीं, उनमें सबसे अधिक और पूर्ण रूप से सुंदर उनके मंदिर ही हैं। और, यदि यों देखा जाय, तो उन मंदिरों में सिवा इसके और कुछ भी नहीं है कि एक लंबा कमरा है, जिस पर चिपटी-सी छत है, सामने एक बरामदा है, और बाहर कुछ खंभे हैं। लंदन के ब्रिटिश म्यूज़ियम में जो बहुत-सी पारथेनन मूर्तियाँ हैं, उनमें भी यही सरलता पाई जाती है। उन मूर्तियों में एक ऐसे जलूस का दृश्य दिखलाया गया है, जो एक त्योहार के अवसर पर निकल रहा है। उन मूर्तियों को पहलेपहल देखने से यही जान पड़ता है कि ये सभी मूर्तियाँ प्रायः एक समान हैं, और इनमें परस्पर कोई विशेष अंतर नहीं है। उन मूर्तियों में कोई ऐसा विशेष या प्रत्यक्ष अंतर नहीं है, जो दर्शक को चकित कर सके। पर फिर भी उन सब मूर्तियों से कैसी शांति और शोभा टपकती है। यूनानी कृतियों में केवल सरलता का ही नहीं, बल्कि सजावट का भी सौंदर्य है। वह सजावट आवश्यकता से अधिक हो गई है। सबसे अधिक और शुद्ध सौंदर्य यूनानी सरलता में ही है।

(२) जिस प्रकार यूनानी कला सरल होती है, उसी प्रकार वह प्रत्यक्ष प्रभाव उत्पन्न करनेवाली भी होती है। यूनानी कलाविद् को जो कुछ कहना या कर दिखलाना होता है, उसे वह बिलकुल सीधी और सच्ची तरह से कह चलता या कर दिखलाता है। वह आपके सामने न तो बातों या कृतियों का ढेर ही लगाता है, और न वह अपनी चालाकी ही दिखलाना चाहता है। यदि किसी यूनानी कवि को किसी पक्षी का वर्णन करना होगा, तो वह कभी उस ढंग से वर्णन न करेगा, जिस ढंग से आजकल के कवि करते हैं। मनुष्यों में जितने प्रकार के विचार और अनुभूतियाँ आदि होती हैं, वे उन सबका उस पक्षी में आरोप करने का प्रयत्न करते हैं। पर यूनानी कवि किसी पक्षी को जिस रूप में देखते हैं, उसी रूप में उसका वर्णन करते हैं। आल्कमन-नामक एक यूनानी कवि ने एक स्थान पर एक पक्षी के संबंध में कहा है—"जिस प्रकार जलचर पक्षी निश्चिंत होकर तरंगों के ऊपर विचरते हैं, उसी प्रकार वसंत का नील पक्षी भी विचरता है।" होमर के वर्णनों और उपमाओं आदि में भी यही गुण है; और प्रकृति के जितने यूनानी चित्र हैं, उन सबमें भी यही विशेषता है। जीवन और मृत्यु के संबंध में भी उनके विचार इसी प्रकार के दिखाई पड़ते हैं। वे लोग बिलकुल सत्य बातें बहुत ही स्पष्टता-पूर्वक कहते हैं। कभी-कभी उनकी कल्पनाएँ कठोर और शुष्क भी जान पड़ती हैं। हमारे आधुनिक कवि बड़ी-बड़ी अतिशयोक्तियों और दंभ-पूर्ण उक्तियों से अपनी कृतियाँ नष्ट कर देते हैं; पर यूनानी कवि कम-से-कम ऐसी बातों से तो अवश्य बचते हैं। हेरोडोटस ने अपनी यात्राओं में जो-जो बातें देखी-सुनी थीं, अथवा उन बातों के संबंध में उसे जो कौतूहल हुआ था, उन सबका वर्णन जितना सरल है, उतना ही चमत्कार-पूर्ण भी। इसीलिये अँगरेज़ी के सुप्रसिद्ध कवि वर्ड-

रस्थं ने कहा है—"आज तक बाइबिल को छोड़कर इतना मनोरंजक और बोधप्रद कोई दूसरा ग्रंथ नहीं हुआ है, जितना हेरोडोटस का है।"

(३) यूनान की सारी कला कारीगरी और कौशल से भरी हुई है। यूनानी कलाविदों की कृतियों में सरलता तो होती है, पर वह सरलता लापरवाही की कारीगरी से नहीं लाई जाती। ऐसा जान पड़ता है, यूनानी कवि वैसी पंक्तियाँ लिख ही नहीं सकते थे, जिन्हें निकृष्ट तुकबंदी कहा जाता है। यूनानी मंदिर होते तो बहुत ही सादे हैं, पर उन्हें देखते ही पता चल जाता है कि वे ऐसे आदमियों के बनाए हुए हैं, जिन्होंने कोणों और रेखाओं आदि की अच्छी तरह नाप-जोख करके उनका सब हिसाब पहले से बैठा लिया था, और तब सारा मंदिर बहुत ही साव-धानी से प्रस्तुत किया था। यही बात यूनानी मूर्तियों में भी पाई जाती है। जब यूनानी मूर्तिकार कोई मूर्ति बनाने लगता है, तब वह संगमरमर के तल पर की कठोरता का एक-एक कण मिटाने का पूरा-पूरा प्रयत्न करता है; और इसके लिये चाहे कितना ही परिश्रम क्यों न करना पड़े, वह उसे व्यर्थ नहीं समझता। पर फिर भी न तो वह कभी उस पर आवश्यकता से अधिक परिश्रम करता है, और न अपने पत्थर को कोमल या अप्राकृतिक रूप देता है। सुना जाता है, अफ़लातून या प्लेटो ने अपने एक ग्रंथ के आरंभ के आठ शब्द केवल इसीलिये कई बार लिख-लिखकर बदले थे कि उनके पढ़ने में उपयुक्त प्रवाह आ जाय, और कहीं कोई खटक न रह जाय।

यूनानियों के संबंध में सबसे अधिक आश्चर्य-जनक बात यह है कि छोटे-छोटे सभी लोगों में यह सौंदर्य-ज्ञान समान रूप से पाया जाता है। यह बात नहीं है कि आजकल के लोगों की

तरह यह सौंदर्य-ज्ञान केवल उन थोड़े-से बहुत बड़े-बड़े आदमियों में ही हो, जो जन साधारण से बहुत आगे बढ़े हुए हैं। यूनान के सभी लोगों में सौंदर्य का आश्चर्य-जनक ज्ञान और प्रेम होता था; और वहाँ के बड़े-बड़े कलाविद् उन लोगों के सरदारों के समान जान पड़ते हैं। अब हमें यह जानने का प्रयत्न करना चाहिए कि जन साधारण तक में इस प्रकार का सौंदर्य-ज्ञान तथा सौंदर्य-प्रेम कहाँ से और कैसे आया। क्योंकि यूनानियों के संबंध में यह बात बहुत ही विलक्षण और असाधारण है; और उनके सिवा और कोई ऐसी जाति नहीं हुई है, जिसके सभी लोगों में सौंदर्य का इतना अधिक ज्ञान और प्रेम हो।

(१) यूनानी लोग स्वयं ही शरीर से सुंदर होते थे। यह बात नहीं है कि सभी यूनानी समान रूप से सुंदर होते थे, पर फिर भी ऐसा जान पड़ता है कि प्रायः यूनानी सुंदर ही होते होंगे। वे लोग बहुत अधिक खाते-पीते नहीं थे। वे प्रायः खुले मैदानों में रहते थे, और उन्हें दौड़ने-घूमने, कुश्ती लड़ने और अनेक प्रकार के व्यायाम करने का बहुत शौक़ था, जिससे वे लोग बहुत स्वास्थ रहते थे। आजकल के बहुत-से पाश्चात्य पहलवान या कसरती आदि अपने कुछ अंगों या उनके रग-पट्ठों को तो बहुत मज़बूत कर लेते हैं, और बाक़ी रग-पट्ठों को बहुत कमज़ोर ही रहने देते हैं। पर प्राचीन यूनानियों में यह बात नहीं थी। वे वही सौंदर्य पसंद करते थे, जिसमें समस्त अंगों का समान रूप से विकास हुआ हो। वे चाहते थे, सब अंगों में समान अनुपात हो, और सारा शरीर सुडौल और साँचे में ढला हुआ हो। उन लोगों ने अपने देवताओं और वीरों आदि की जो मूर्तियाँ बनाई हैं, उनमें इसी प्रकार का सौंदर्य देखने में आता है। इस प्रकार के सौंदर्य और विशेषतः पुरुषोचित सौंदर्य के वे बहुत बड़े उपासक थे। अनेक राजनीतिज्ञों

में एल्किबियाडीज केवल इसीलिये सबसे अधिक सर्वप्रिय हो सका था कि उसकी आकृति और स्वरूप बहुत अच्छा था। ज़ेनोफ़ेन ने एक स्थान पर उन गुणों का वर्णन किया है, जिनकी सहायता से मनुष्य राज्य में उच्च पद प्राप्त कर सकता है; और उन गुणों के अंतर्गत उसने यह भी कहा है—"ऊपर से देखने में मनुष्य का शरीर बहुत सुंदर और इस योग्य होना चाहिए कि वह कठिन-से-कठिन परिश्रम कर सके।" आकृति के अतिरिक्त यूनानियों का पहनावा भी बहुत सुंदर हुआ करता था। मूर्तियों आदि में जो पहनावा दिखाई पड़ता है, उसमें कपड़े बहुत ही अच्छे ढंग से तह किए हुए अंगों पर लटकते हैं, और कोई अंग कसा हुआ-सा नहीं जान पड़ता।

(२) यूनानियों की भाषा भी सुंदर थी। यदि आप यूनानी भाषा न जानते हों, तो उसके किसी ज्ञाता से कहिए, और वह आपको होमर की कविता की कुछ पंक्तियाँ, एरिस्टोफेनीज़ का कोई गीत या प्लेटो के कुछ वाक्य पढ़कर सुनावे। तब आप समझ सकेंगे कि वह भाषा कितनी संगीतमयी है। अँगरेज़ी के सुप्रसिद्ध औपन्यासिक हेनरी किंग्सले ने 'जाफ़रे हेम्लिन'-नामक एक उपन्यास में एक स्थान पर लिखा है कि एक छोटा बालक था, जो यूनानी भाषा का एक शब्द भी नहीं जानता था। एक बार उसके शिक्षक ने उसे हेरोडोटस का लिखा हुआ थरमापिली के युद्ध का थोड़ा-सा वर्णन पढ़कर सुनाया। वह बालक मंत्र-मुग्ध होकर वह सारा वर्णन सुनता रहा। अंत में जब उस बालक से पूछा गया कि यह तुम्हें कैसा लगा, तब उसने उत्तर दिया—"मैं तो समझता था कि आप गा रहे हैं।"

यहाँ हमें इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि यूनानी कलाकार न तो बहुत अधिक संपन्न होते थे, और न बहुत सुख-पूर्ण

जीवन व्यतीत करते थे। वे लोग बहुत दरिद्र होते थे। प्रायः अनेक प्रकार के शारीरिक कष्ट सहते थे, और बहुत थोड़े व्यय में अपना काम चलाते थे। एक स्थान पर यह उल्लेख मिलता है कि जब उन्हें आपस में एक दूसरे को कुछ नमक, दिए की बत्ती, सिरका या खाने-पीने की कोई चीज़ उधार देने की नौबत आती थी, तब वे लोग आपस में लड़ पड़ते थे। जब कभी उनके मकानों में कोई पंचायती भोज आदि होता था, तब वे सब लोगों की दी हुई चीज़ों में से ईंधन, सिरका, दाल, नमक या जलाने का तेल तक चुरा लेते थे। यूनानी नगर कभी बहुत अधिक संपन्न नहीं होते थे; और यही बात एथेंस के संबंध में भी थी। एक पेरिक्लीज के समय को छोड़कर एथेंस के सब काम बहुत मुश्किल से चलते थे, और उसे सदा आर्थिक कठिनता बनी रहती थी। फिर यदि हम लोग अपने मन से विचार करें, तो कह सकते हैं कि यूनानी लोग बहुत ज़्यादा साफ़ भी नहीं रहते थे, बल्कि अक्सर गंदे रहते थे। उनके क़स्बों की गलियाँ बहुत ही गंदी होती थीं। उनके मकान भद्दे, और तंग होते थे। उनमें नालियाँ या पनाले आदि नहीं होते थे *। वे गरमी के दिनों में भी ऊनी कुरते आदि पहनते थे, क्योंकि यदि सूती कपड़े पहनते, तो उन्हें बीच-बीच में धोना पड़ता। स्त्रियाँ और पुरुष सभी सार्वजनिक स्नानागारों में स्नान करते थे, जो बहुत ही मामूली, सादे और बहुत ही पुराने ढंग के

---

* कहाँ तो एक ओर यूनानियों का इतना ऊँचे दर्जे का सौंदर्य-प्रेम और कहाँ यह गंदगी! दोनो बातें एक दूसरे की परम विरोधिनी हैं, और दोनो में थोड़ी-बहुत अतिशयोक्ति की गई जान पड़ती है। ज़रा अपने देश की प्राचीन स्वच्छता और सौंदर्य-प्रेम से इसकी तुलना कीजिए, और तब देखिए कि दोनो में से कौन श्रेष्ठ ठहरता है।—अनुवादक

होते थे। वे लोग साबुन का व्यवहार नहीं करते थे, पर शरीर में तेल मलते थे, और यदि आवश्यकता होती थी, तो कुछ सुगंधित द्रव्यों का भी व्यवहार कर लेते थे। एक यूनानी लेखक ने तो यहाँ तक लिखा है कि जो आदमी बहुत ज़्यादा सफ़ाई पसंद करता हो, समझ लेना चाहिए कि उसके विचार और आकांक्षाएँ तुच्छ हैं। वह कहता है, ऐसे तुच्छ विचारों-वाला आदमी अपने सिर के बाल ठीक ढंग से कटवावेगा, और दाँत साफ़ रक्खेगा। एल्किबियाडीज़ के शयनागार की जो चीज़ें मिली हैं, उनसे पता चलता है कि उसमें हाथ-मुँह आदि धोने की कुछ भी व्यवस्था नहीं थी। यहाँ हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि एल्किबियाडीज़ अपने समय में एथेंस में अच्छा शौक़ीन समझा जाता था।

इतना सब कुछ होने पर भी इस बात में कोई संदेह नहीं है कि एथेंसवालों में कला के प्रति सबसे अधिक अनुराग था। उनमें शरीर, वस्त्र और भाषण का सौंदर्य सब जगह समान रूप से पाया जाता है। जिन दिनों यूनान उन्नति के शिखर पर था, उन दिनों वहाँ का एक्रोपोलिस-नामक नगर बहुत प्रसिद्ध था। उसमें संगमरमर के बहुत-से सुंदर मंदिर और मूर्तियाँ थीं। उस नगर और उसके मंदिरों तथा मूर्तियों आदि को देखकर मनुष्य सहज में इस बात का बहुत अच्छा ज्ञान प्राप्त कर सकता था कि वास्तव में सौंदर्य किसे कहते हैं। सभी लोग इस सौंदर्यमय जीवन का सुख भोग सकते थे। वहाँ के सभी निवासी साधारणतः मौजी, चतुर और बुद्धिमान् होते थे। प्रारंभिक शिक्षा के लिये तो उनके यहाँ पाठशालाएँ थीं, पर आजकल जिसे हम लोग उच्च शिक्षा कहते हैं, उस प्रकार की शिक्षा का प्राचीन यूनान में कोई प्रबंध नहीं था। पर फिर भी उन दिनों वहाँ किसी को अशिक्षित नहीं

रहना पड़ता था, और बहुत ही थोड़े आदमी ऐसे होते थे, जो लिखना-पढ़ना नहीं जानते थे।

सबसे पहले राजनीति को ही लीजिए। प्रत्येक व्यक्ति राजनीति में कुछ-न-कुछ अनुराग रखता था। सभी लोगों को एसेंबली में सम्मिलित होने का अधिकार था, और सभी लोग बारी-बारी से कौंसिल के सदस्य और ज्यूरी हो सकते थे। यूनानी अदालतों में प्रायः ज्यूरी बहुत अधिक होते थे, और बड़े-बड़े मुक़द्दमों में उनकी संख्या कई सौ तक पहुँच जाती थी। इस प्रकार जनता की बुद्धि तीव्र और कुछ कर सकने के योग्य बनाई जाती थी। यह ठीक है कि ये सब बातें निम्न-लिखित दो मुख्य कारणों से हो सकती थीं— एक तो यह कि राज्य बहुत बड़े नहीं होते थे, जिससे सभी लोग सार्वजनिक कार्यों में सम्मिलित हो सकते थे। और, दूसरी बात यह थी कि उन दिनों लोगों को आजकल की तरह दिन-दिन-भर काम नहीं करना पड़ता था, और न उनका काम इतने अधिक परिश्रम का ही होता था। एथेंसवाले खेती-बारी, शिल्प, व्यापार या पेशा आदि कुछ-न-कुछ अवश्य करते थे, पर ये सब काम वे लोग केवल जीविका-निर्वाह के विचार से करते थे, धन एकत्र करने के विचार से नहीं। बीच-बीच में धार्मिक त्योहारों के लिये सारे राष्ट्र में छुट्टियाँ होती थीं। सभी लोगों को बीच-बीच में अपना निजी काम छोड़कर कुछ समय के लिये राष्ट्र का काम करने जाना पड़ता था, और किसी को ऐसे कामों के लिये अधिक समय तक अपने निजी कार्य की हानि नहीं उठानी पड़ती थी। जब उसकी बारी आती थी, तब वह बिना कोई विशेष क्षति उठाए राष्ट्र का कार्य करने चला जाता था। छोटे, गंदे और ख़राब काम करने के लिये उनके यहाँ बहुत-से ग़ुलाम भी होते थे। जो ग़ुलाम किसी शिल्प या व्यापार आदि में सहायता देते थे, उनके साथ अपेक्षाकृत

अच्छा व्यवहार किया जाता था। वे लोग अपने मालिकों के साथ मिलकर काम करते थे, धन कमाते और कुछ शर्तें पूरी करने के बाद स्वतंत्र भी हो सकते थे। पर जो गुलाम जत्थों में मिलकर काम करते थे, और विशेषतः जो लारियम की चाँदी की खान में काम करते थे, उन्हें बहुत ही शोचनीय परिस्थितियों में जीवन व्यतीत करना पड़ता था।

इसके अतिरिक्त हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि एथेंसवाले अपना अधिकांश समय सार्वजनिक स्थानों और खुली हवा में बिताया करते थे। अपने घरों में तो वे लोग ख़ाली खाते-पीते, सोते और दावतें आदि करते थे। अवकाश का समय वे लोग घर के बाहर ही बिताते और वहीं विश्राम करते थे। इसीलिये उन्हें अपने यहाँ के बड़े-बड़े आदमियों की बातें सुनने का सदा ही अवसर मिला करता था। एसेंबली, कौंसिल या अदालतों में जाकर सभी लोग डिमास्थिनीज और पेरिक्लीज के भाषण आदि सुन सकते थे, अथवा उनके पास बैठ सकते और उनके साथ मिलकर काम कर सकते थे। सार्वजनिक उत्सवों के समय सभी लोग जाकर होमर की कविताएँ या दूसरे बड़े-बड़े लेखकों के नाटक आदि सुन सकते थे। सुकरात आदि बड़े-बड़े लोग बाज़ारों और खुले मैदानों में जब मिल जाते थे, तब उन्हें बहुत-से लोग घेरकर खड़े हो जाते थे। उस समय वे लोग उनके सामने भाषण देते थे, जिसे सभी लोग सुन सकते थे। इन सब बातों के लिये किसी को कुछ भी व्यय नहीं करना पड़ता था। ग़रीब-से-ग़रीब आदमी भी बिलकुल मुफ़्त में इन सब बातों का आनंद ले सकता था। और, जिस समय वह सार्वजनिक सेवा के राजकीय कार्य करता, उस समय उसे कुछ वेतन भी मिल जाता था।

यद्यपि पेरिक्लीज के युग में एथेंस में बहुत कुछ दरिद्रता थी, तो भी वहाँ के प्रत्येक नागरिक को रुचि, विचार और मानसिक

फुरती को अच्छी शिक्षा मिल सकती थी, और मिलती भी थी। एथेंस-वालों के चतुर होने का एक बड़ा प्रमाण यह है कि जिन नाटकों को वे सबसे अधिक पसंद करते थे, वे कला की दृष्टि से बहुत ही उच्च कोटि के हैं। उनके यहाँ का मज़ाक़ या परिहास भी ऐसा होता था, जिसे केवल वही लोग समझ सकते थे, जिनकी बुद्धि तीक्ष्ण होती थी, रुचि परिष्कृत होती था, और जो उत्तम तथा निकृष्ट का अंतर भली भाँति जानते थे।

यूनानी लोग सदा प्रसन्न रहा करते थे। मिस्र के एक धर्म-पुरोहित ने एक बार यूनान के सुप्रसिद्ध विद्वान् सोलन से कहा था—"आप यूनानी लोग तो सदा बालक ही बने रहते हैं।" उस पुरोहित का यह कहना बिलकुल ही ठीक था। यूनानी लोग जीवन और यौवन के आनंद के बहुत प्रेमी थे, और उस मार्मिक विनोद में उन्हें बहुत आनंद मिलता था, जो यौवन-काल का एक लक्षण है। वृद्धावस्था उन्हें बहुत ही दुःखद और कष्टदायक जान पड़ती थी। सोफोक्लीज ने एक स्थान पर कहा है—"अंत में मनुष्य के भाग्य में वृद्धावस्था बदी होती है, जिसमें वह तिरस्कृत और दुर्बल हो जाता है, समाज में लोगों के साथ मिलने-जुलने के योग्य नहीं रह जाता, और कोई उसका मित्र नहीं रह जाता। इस प्रकार यह वृद्धावस्था सब प्रकार के दोषों का घर है।"

पाठकों को इन सब बातों से यह न समझ लेना चाहिए कि यूनानी लोग सदा सौंदर्य की धुन में ही मस्त रहकर अपना समय नष्ट किया करते थे। उनके जीवन का एक दूसरा अंग भी था, जो अनेक गहन विषयों से युक्त था। पहली बात तो यह है कि वे सक्रिय कर्मण्यता को बहुत अभिमान की वस्तु समझते थे। उनमें कोई ऐसा दंभ नहीं था, जिससे वे जीवन के आवश्यक कार्यों को हेच और न करने योग्य समझते हों। बड़े-बड़े यूनानी कलाकारों को

भी साधारण व्यक्तियों की भाँति सार्वजनिक कार्यों में सम्मिलित होना पड़ता था। एवकीलस और सुक्रात ने सेना-विभाग में साधारण सैनिकों की भाँति कार्य किया था। सोफोक्लीज और थ्यूसिडाइडीज ने जहाज़ी बेड़ों का सेनापतित्व किया था। सुक्रात तथा और कई बड़े-बड़े आदमियों ने अपने नगर में भी राज्य की अनेक सेवाएँ की थीं। यूनानी कलाकारों और विचारशीलों के साथ ऐसे विषयों में कोई रिआयत नहीं की जाती थी, और उन्हें भी सब लोगों की तरह साधारण जीवन के सभी काम करने पड़ते थे। और, फिर वे लोग स्वयं भी ऐसे कामों से अलग नहीं रहना चाहते थे। युरिपिडीज यूनान का पहला कवि था, जिसने अपना सारा जीवन केवल विद्याध्ययन में ही बिताया था।

इसके सिवा यूनानियों का यह भी एक विश्वास था कि सत्य और सौंदर्य दोनो सदा साथ-ही-साथ रहते हैं, वे एक दूसरे से अलग नहीं किए जा सकते। इसी विश्वास के अनुसार वे लोग सदा चिंतन करते थे, और बहुत अधिक चिंतन करते थे। भाषण और विचारों की जितनी अधिक स्वतंत्रता यूनानियों में थी, उतनी और कभी किसी में हुई ही नहीं। यूरिपाइडीज कहता है—"गुलाम वही है, जो अपने विचार कहकर प्रकट न कर सकता हो।" स्वयं यूरिपाइडीज ने जिस निर्भीकता से अपने ग्रंथों में अपने विचार प्रकट किए हैं, वे आश्चर्य-जनक हैं। उनसे सूचित होता है कि यूनानी लोग धर्म और नीतिशास्त्र के संबंध में कितना स्वतंत्र होकर विवेचन करते थे, इन विषयों के प्रतिपादित सिद्धांतों पर कैसी-कैसी आशंकाएँ करते थे, और उनकी कैसी कड़ी टीका-टिप्पणी करते थे। प्रत्येक व्यक्ति जो चाहता था, वह कह सकता था। एथेंसवालों ने केवल दो या तीन बार लोगों पर अपने विचार प्रकट करने के लिये मुक़दमे चलाए थे, जिनमें सुक्रात का

मुक़द्दमा सबसे बढ़कर है। जिस समय पेलोपोनीशियन युद्ध चल रहा था, उसी समय एरिस्टोफेनीज़ ने युद्ध की निंदा की थी, और राजनीतिज्ञों तथा सैनिकों की हँसी उड़ाई थी, और फिर भी उसे हास्य-रस का सबसे अच्छा नाटक लिखने के लिये पुरस्कार मिला था। थ्यूसिडाइडीज़ ने इस युद्ध का इतिहास लिखते समय न तो अपने नगर की प्रशंसा के पुल ही बाँधने का प्रयत्न किया है, और, न शत्रुओं की निंदा के पहाड़ लगाने का उद्योग किया है। और न उससे कोई इनमें से किसी काम की आशा ही कर सकता था। एथेंस के शिक्षकों, व्याख्यानदाताओं और साधारण निवासियों को सभी प्रकार की बातों पर विचार करने और स्पष्ट रूप से विचार प्रकट करने की पूरी-पूरी स्वतंत्रता प्राप्त थी।

धार्मिक विषयों में प्रत्येक व्यक्ति जैसा चाहता था, वैसा विचार कर सकता था। देवालयों में जाकर देव-पूजन करने के लिये कभी कोई विवश नहीं किया जाता था, और यूनान में सभी प्रकार के धार्मिक विचार प्रचलित थे। एथेंस में साधारणतः अनेक देवता होते थे, जो नगर के देवता माने जाते थे। नगर-निवासी इन देवतों पर श्रद्धा रखते थे, और उनके आगे बलि आदि चढ़ाते थे। पर होमर के समय से यूनानी लोग इन देवतों के संबंध में बहुत ही विलक्षण कथाएँ कहने लग गए थे, जिनकी सत्यता का बहुत-से लोग खुले शब्दों में अस्वीकार करते थे। और, ऐसा जान पड़ता है, स्वयं होमर भी इन सब कथाओं को सर्वांश में सत्य नहीं मानता था, बल्कि वह उन्हें सुंदर कहानियाँ-मात्र समझता था। वे अपने देवतों को साधारणतः मनुष्यों के समान ही अंकित करते थे। हाँ, मनुष्यों से उन्हें कुछ अधिक शक्तिशाली समझते थे। इसके अतिरिक्त मनुष्यों और देवतों में कोई विशेष अंतर नहीं मानते थे। यद्यपि कुछ शिक्षित लोग ऐसे भी थे, जो हार्दिक

श्रद्धा तथा भक्ति-पूर्वक इन देवतों का पूजन करते थे, पर फिर भी निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि सभी शिक्षित लोग उन पर वैसा ही हार्दिक विश्वास और श्रद्धा रखते थे। पर इसमें संदेह नहीं कि जनसाधारण प्रायः ओलंपियन धर्म पर ही विश्वास रखते थे। अपने नगर के देवतों का उन्हें वैसा ही अभिमान रहता था, जैसा किसी नगर के निवासियों का अपने यहाँ के गिरजे या मंदिर आदि के संबंध में होता है । कुछ लोग तो अपने नगर के गिरजे या मंदिर को बहुत ही धार्मिक तथा पूज्य दृष्टि से देखते हैं, और कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो केवल यह समझते हैं कि हमारे नगर का गिरजा या मंदिर बहुत ही सुंदर और बढ़िया है।

ओलंपियन धर्म में न तो यही शक्ति थी कि वह लोगों को नीतिमान् बना सकता था, और न लोगों के मन में भय या उत्तेजना का भाव ही उत्पन्न कर सकता था । यूनानियों में इस प्रकार के भाव कुछ और ही मार्गों से आए थे, जिनमें से कुछ का उल्लेख यहाँ कर देना आवश्यक जान पड़ता है—(१) गाँवों और देहातों के लोग सीधे-सादे होते हैं, और एथेंस के अधिकांश निवासी गाँवों और देहातों में ही रहते थे। अपने देहातों के जंगलों, सोतों और पहाड़ियों आदि के देवतों का ही पूजन करते थे (जैसे पान और निफस आदि)। लोगों का यह भी विश्वास था कि ये देवता समय-समय पर अपने भक्तों और उपासकों को अनेक प्रकार के उद्दंडता-पूर्ण कार्य करने के लिये भी उत्तेजित कर देते हैं । अँगरेज़ी का पैनिक (Panic) शब्द इसी पैन देवता के नाम से बना है, जिसका अर्थ है ऐसी उत्तेजना, जिसमें भय भी सम्मिलित हो। (२) बहुत-से लोग डायोनिसस (यह एक विदेशी धर्म था, जो थ्रेस से आया था) या इसी

प्रकार के और धर्मों के अनुसार पूजा और आराधना करते थे, जो अपेक्षाकृत अधिक उत्तेजक होती थी ; और कुछ लोग धार्मिक भ्रातृ-मंडल में सम्मिलित हो जाते थे (जिसे वे लोग गुप्त या रहस्य-मय मंडल कहते थे)। इस प्रकार के मंडलों की सृष्टि कर्मकांड या धार्मिक पूजा-विधियों के आधार पर होती थी, और इनमें मनुष्यों के भावों को उत्तेजित करने के अनेक प्रकार होते थे। (२) कुछ लोगों का विश्वास था कि मानव-जीवन में कुछ बड़ी-बड़ी अंध-शक्तियाँ भी काम करती हैं, जैसे भाग्य, ईर्ष्या, विनाश और संयोग आदि। और, इन सबका मनुष्यों के अतिरिक्त देवतों पर भी यथेष्ट प्रभाव पड़ता है। अतः ये लोग इसी प्रकार की शक्तियों पर विश्वास रखते थे, जिससे बहुत-से लोगों के मन में एक प्रकार का धार्मिक भय और आतंक उत्पन्न हो जाता था। वे लोग समझते थे कि इन प्रबल और अंध-शक्तियों से बचने का एकमात्र उपाय यही है कि मनुष्य बहुत ही शांत और संयम-पूर्ण जीवन व्यतीत करे। वे समझते थे, जब कोई आदमी बहुत अधिक धनवान्, बहुत अधिक अभिमानी या बहुत अधिक सफल हो जाता है, अथवा जब उसकी किसी बात में अति हो जाती है (अति सर्वत्र वर्जयेत् का सिद्धांत), तो ये शक्तियाँ उस पर आक्रमण कर बैठती और उसका पतन कर देती हैं। मतलब यह कि जैसे किसी बहुत ऊँचे वृक्ष पर ही बिजली गिरने की अधिक संभावना होती है, अथवा पंक्ति में खड़ा हुआ सबसे लंबा आदमी ही प्रायः गोली का शिकार होता है, उसी प्रकार जो आदमी किसी विषय में बहुत अधिक बढ़ जाता है, उसी पर ये दैवी विपत्तियाँ आती हैं।

यदि यूनानी-धर्म की ईसाई-धर्म (अथवा हिंदू आदि किसी और आस्तिक धर्म) के साथ तुलना करें, तो हमें कहना पड़ेगा कि यूनानियों में ईश्वर के व्यक्तित्व का कोई बड़ा या प्रबल भाव

अथवा धारणा नहीं थी। साधारणतः आस्तिक धर्मों में यही माना जाता है कि एक सर्वशक्तिमान् ईश्वर है, जो सब लोगों के पालन-पोषण, रक्षा आदि की चिंता रखता है। आस्तिक धर्मों में यह भी माना जाता है कि कुछ अनुचित कृत्य या पाप होते हैं, जिनके करने से ईश्वर अप्रसन्न और असंतुष्ट होता है। पर यूनानियों में इस प्रकार की कोई धारणा नहीं थी। वे यह तो जानते थे कि संसार में दोष या पाप तो हैं, पर उन्हें इस बात की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती थी कि इन दोषों या पापों का नाश करना भी आवश्यक है। वे यही समझते थे कि जहाँ तक हो सके, मनुष्य को अपने आचरण में सचेत रहना चाहिए, और इन दोषों तथा पापों से बचने का प्रयत्न करना चाहिए; जीवन की उत्तम बातों का भोग करना चाहिए। और, यदि कोई विपत्ति या कष्ट आ पड़े, तो उसे वीरता-पूर्वक सहन करना चाहिए। यूनानी लोग अधिक-से-अधिक यही चाहते थे कि हम सदा स्वस्थ, भाग्यवान् और सुंदर बने रहें, अपने बाल-बच्चों में सुखी रहें, और हमारे जीवन का अंत प्रतिष्ठा-पूर्वक हो। वे यह तो मानते थे कि मृत्यु के उपरांत भी मनुष्य का कोई जीवन होता है, पर उस जीवन को वे पैशाची और नीरस मानते थे; इसीलिये उस जीवन का ध्यान रखते हुए कोई मनुष्य अपने लिये भविष्य में कोई बहुत बड़ी या अच्छी आशा नहीं रखता था।

यूनानी लोग धर्म-हीन या नास्तिक तो नहीं होते थे, पर उनकी धार्मिकता या आस्तिकता हम लोगों की धार्मिकता या आस्तिकता के समान नहीं होती थी। कुछ अंशों में सुक़रात और उससे अधिक अंशों में प्लेटो में ही कुछ ऐसे धार्मिक विचार मिलते हैं, जो ईसा के धार्मिक विचारों से मिलते-जुलते हैं। इनके अतिरिक्त और किसी यूनानी में इस प्रकार के विचार नहीं पाए जाते।

यूनानियों की विचार-शैली में एक प्लेटो ही इस विषय में भी तथा कुछ और विषयों में भी अपवाद रूप है। साधारणतः यूनानी लोग धर्म के विषय में यही समझते थे कि वह भी जीवन का एक ऐसा अंग है, जो मनुष्य में सौंदर्य, उत्तेजना या भय आदि उत्पन्न कर सकता है। पर वे धर्म को जीवन की ऐसी आत्मा नहीं मानते थे, जो जीवन के समस्त उल्लासों, दुःखों और कर्तव्यों में मनुष्य के लिये मार्ग-दर्शक और प्रेरक का काम करती है।

यूनानी जीवन में सबसे अधिक गहन और गूढ़ विषय उनका धर्म नहीं था, बल्कि उनका दर्शन-शास्त्र था, जिसे अँगरेज़ी में आजकल फ़िलास्फ़ी कहते हैं। यह शब्द वस्तुतः यूनानी है, और इसका अर्थ है 'ज्ञान के प्रति प्रेम या अनुराग'। जैसा कि सदा और सभी स्थानों में हुआ करता है, दर्शन-शास्त्र का अध्ययन और मनन यूनानियों में भी बहुत ही थोड़े आदमी करते थे। पर हाँ, अन्यान्य देशों की अपेक्षा यूनान के निवासियों पर दर्शन-शास्त्र का विशेष प्रभाव होता था। वे बिना अपने धर्म से सहायता लिए केवल अपने बुद्धि-बल और तर्क की सहायता से यह समझने का प्रयत्न करते थे कि संसार क्या है और जीवन-निर्वाह का सबसे अच्छा मार्ग कौन-सा है। यूनान के आरंभिक विचारशीलों ने (ई० पू० ५८५ के थेल्स और उनके परवर्तियों ने) यह प्रश्न उठाया था कि यह संसार किन-किन पदार्थों से बना है, पर उन आरंभिक दिनों में इस विषय में वे लोग अनुमान-मात्र कर सकते थे, और कभी-कभी उनके अनुमान आश्चर्य-जनक रूप से बुद्धिमत्ता-पूर्ण होते थे। पर हाँ, इसमें संदेह नहीं कि पश्चिम में यूनानियों का ध्यान ही सबसे पहले इस बात की ओर गया था कि यह एक विचारणीय प्रश्न है। पाश्चात्य विज्ञान का आरंभ यहीं से हुआ था; और तब से आज तक सारा विज्ञान उसी प्रश्न का उत्तर

ढूँढ़ने का प्रयत्न कर रहा है, जो प्रश्न सबसे पहले यूनानियों ने उठाया था।

ई० पू० पाँचवीं शताब्दी में वे लोग उत्पन्न होने लगे, जो सोफ़िस्ट कहलाते हैं। ये लोग वैज्ञानिक विषयों पर लेख आदि लिखते और भाषण आदि तो देते ही थे, पर साथ ही वे विशेष रूप से इस प्रकार के कुछ प्रश्न भी करते थे—जीवन-निर्वाह करने का उचित मार्ग क्या है? मनुष्य उस मार्ग का किस प्रकार अनुसरण कर सकते हैं? किन नियमों के पालन से मनुष्य अच्छा नागरिक, अच्छा राजनीतिज्ञ और अच्छा मनुष्य हो सकता है? वे लोग इस प्रकार के प्रश्नों के जो उत्तर देते थे, वे बहुत संतोष-जनक नहीं होते थे। और, यह मोटी बात तो पाठक स्वयं भी समझ सकते हैं कि केवल नियमों का ज्ञान हो जाने से ही मनुष्य भली भाँति जीवन-निर्वाह नहीं कर सकता। परंतु इसी आधार पर कुछ लोग (उदाहरणार्थ थ्यूसिडाइडीज़, जो पहले एक प्रसिद्ध सोफ़िस्ट का शिष्य रह चुका था।) और भी अधिक गहन तथा सूक्ष्म विचार करने लगे, और यह सोचने लगे कि राज्यों का शासन किस प्रकार होना चाहिए, तथा राष्ट्र किस प्रकार सफल हो सकते हैं। सोफ़िस्टों के बाद सुक़रात हुआ था, जो इस प्रकार के प्रश्नों पर विचार करता था—न्याय क्या है? सत्य क्या है? इत्यादि। इस प्रकार के प्रश्नों का उसे प्रायः कोई स्पष्ट उत्तर नहीं मिलता था, पर उसने लोगों को ऐसे प्रश्नों पर विचार करने के लिये विवश किया, और उन्हें यह बतलाया कि ऐसे प्रश्नों का कोई ऐसा-वैसा उत्तर पाकर मनुष्य को संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिए, बल्कि समस्त विषय पर पूर्ण रूप से विचार करना चाहिए। उसमें ठीक और सत्य विचार करने की बहुत उग्र वृत्ति थी। इसके साथ ही उसके मन में इस बात की भी बहुत प्रबल कामना थी

कि लोगों को इस बात का विश्वास दिला दिया जाय कि जीवन उत्तमता-पूर्वक व्यतीत करने की आवश्यकता है। वह सच्चा धर्मोपदेशक था, और एथेंसवालों ने उसे सच्चा शहीद भी बना दिया। उसे मारकर यूनानियों ने भी ठीक उसी प्रकार अपने पैग़ंबर की हत्या की थी, जिस प्रकार यहूदियों ने अपने पैग़ंबर की।

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, यद्यपि बहुत ही थोड़े-से यूनानियों ने इन सब प्रश्नों पर गूढ़ विचार किया था, तो भी इसमें संदेह नहीं कि उन दिनों एथेंस में विज्ञान और दर्शन की कुछ-न-कुछ जानकारी रखने का फ़ैशन-सा हो गया था। सोफ़िस्टों के बहुत अधिक शिष्य हुआ करते थे। युरिपाइडीज़ ने कई ऐसे नाटक लिखे थे, जिनमें देवतों के संबंध में जन साधारण में प्रचलित विचारों की अच्छी आलोचना की गई थी, और औचित्य तथा अनौचित्य-संबंधी सभी प्रकार की बड़ी-बड़ी समस्याओं पर विचार किया गया था। और, ये सब नाटक इतने लोकप्रिय हुए थे कि हरएक आदमी इन्हें देखने जाया करता था। सुक़रात के सबसे अधिक घनिष्ठ मित्र एथेंस के रईस-घरानों के नवयुवक थे, और वे उसके पास उसके उपदेश केवल इसलिये सुनने जाया करते थे, जिसमें वे सज्जन और सत्पुरुष बन सकें, और यह सीख सकें कि घर-गृहस्थी में नौकर-चाकरों के साथ, अपने संबंधियों और मित्रों के साथ तथा अपने देश और देशवासियों के साथ किस प्रकार उचित व्यवहार करना चाहिए। यह ठीक है कि इस प्रकार के ऊँचे और सद्विचार केवल कुछ चुने हुए लोगों के मन पर ही अपना पूरा-पूरा प्रभाव डालते थे, पर फिर भी जिन उपदेशकों और महात्माओं के नाम हमने बतलाए हैं, उनका प्रभाव केवल उनके निकटस्थ शिष्यों पर ही नहीं पड़ता था, बल्कि उनके अतिरिक्त और भी बहुत-से लोगों पर पड़ता था। कम-से-कम इतना तो अवश्य था कि इस

प्रकार के विषयों की चर्चा जन साधारण में से बहुत-से लोग किया करते थे। यद्यपि इन बातों का उनका शौक़ बहुत गहरा नहीं होता था, पर फिर भी नैतिक तथा राजनीतिक विषयों के ज्ञान और विचारों से एथेंस के साधारण लोग उतने कोरे और रहित नहीं होते थे, जितने और देशों के लोग हुए हैं। एथेंस की साधारण जनता इन सब विषयों का बहुत कुछ ज्ञान रखती थी।

इस प्रकार विज्ञान और दर्शन का आरंभ (कम-से-कम पाश्चात्य देशों में) यूनानियों से ही हुआ था। और, सुक़रात के समय के बाद से यूनानियों की अनेकानेक पीढ़ियाँ बराबर इन दोनो विषयों का अध्ययन और मनन करती रहीं। दर्शन-शास्त्र में सुक़रात का शिष्य प्लेटो था, जिसने जीवन, कर्तव्य, सौंदर्य और सत्य के संबंध में अपने विचार बहुत ही सुंदर यूनानी भाषा में प्रकट किए हैं, और इस बात का बहुत अच्छा विवेचन किया है कि मनुष्यों को किस प्रकार जीवन-निर्वाह करना चाहिए, और राज्यों का किस प्रकार शासन होना चाहिए। वह समस्त विचारशीलों का गुरु है। अरस्तू, जो उसके बाद हुआ था, समस्त ज्ञानियों का गुरु है। उसने सभी प्रकार का ज्ञान संपादित किया था, और प्रायः सभी प्रकार के वैज्ञानिक तथा दार्शनिक विषयों पर विचार किया था, और ग्रंथ आदि लिखे थे। उसके बाद भी दर्शन-शास्त्र के क्षेत्र में यूनानियों का प्रभाव बना रहा, और वहाँ अनेक प्रकार के लेखक तथा आचार्य होते रहे, जिन्होंने दर्शन-शास्त्र और धर्म में एकता स्थापित करने के लिये अनेक प्रकार के और वास्तविक प्रयत्न किए थे। यही बात हमें संत पाल में भी दिखाई देती है, जो केवल एक बहुत बड़ा ईसाई संत और महापुरुष ही नहीं है, बल्कि अरस्तू के बाद सबसे बड़ा विचारशील भी हुआ है।

विज्ञान-क्षेत्र में भी यूनान बहुत दिनों तक काम करता रहा।

परवर्ती काल के यूनानियों ने प्रायः सभी वैज्ञानिक विषयों का अध्ययन किया था, और इन पर ग्रंथ लिखे। व्याकरण, संगीत-शास्त्र, ज्योतिष, ज्यामिति, आयुर्वेद, यंत्र-विद्या, भूगोल और कृषि-शास्त्र आदि में से कोई विषय उनसे नहीं छूटा था। वैज्ञानिक विषयों में उन लोगों ने जितनी बातों का पता लगाया था, यद्यपि उनकी अपेक्षा आधुनिक काल में विज्ञान का बहुत अधिक विस्तार हो गया है, तो भी इसमें संदेह नहीं कि पाश्चात्य संसार में यूनानियों ने ही सबसे पहले इन विषयों का अध्ययन आरंभ किया था, और उन्हीं से योरपवालों ने ये सब विज्ञान आदि सीखे थे। आजकल भी पाश्चात्य देशों में शायद ही कठिनता से विज्ञान की कोई ऐसी शाखा मिलेगी, जिसके विवेचन में यूनानी भाषा के बहुत-से शब्दों का प्रयोग न किया जाता हो।

इस प्रकार हम पेरिक्लीज़ के युग से बहुत दूर चले आए हैं। ऊपर हमने जितने कार्यों का उल्लेख किया है, वे सभी कार्य एथेंस या यूनान में नहीं हुए थे, तो भी वे सब कार्य यूनानी जाति और यूनानी भाषा-भाषियों के अवश्य थे। जब एथेंस का उन्नति-युग समाप्त हो गया, तब वहाँ के निवासियों का दिन-पर-दिन पतन होने लगा। एथेंस-नगर के बुरे दिन आने लगे। जिन अंतिम युद्धों में एथेंस को विफलता हुई थी, उनके कारण एथेंसवालों की बहुत-सी शक्ति नष्ट हो गई थी, जन साधारण का उत्साह बहुत कुछ मंद हो गया था, और अब उनमें वे सब बातें नहीं रह गई थीं, जो पेरिक्लीज़ के युग में थीं। राजनीति, विचार और जीवन-चर्या, सभी बातों में कमी होने लग गई थी। यदि हम ध्यान-पूर्वक देखें, तो शायद हमें यह भी पता चल जायगा कि जीवन की इस ऊपरी चमक-दमक के नीचे पहले से ही अनेक प्रकार की विपत्तियों के बीज उपस्थित थे। शायद एथेंसवालों ने पहले यही सोचा था कि

जीवन इस समय जितना सरल है, वस्तुतः वह उसकी अपेक्षा और भी अधिक सरल है, और उसमें कहीं कठिनाइयों या जटिलताओं आदि का नाम भी नहीं है। आत्म-संयम तो उन्होंने कभी सीखा ही नहीं था, और उनमें सत्य का अनुसंधान करने की उतनी सच्ची लगन नहीं रह गई थी। बेईमानी और धोखेबाज़ी उनमें सदा और बहुत अधिक होती रही। वे वस्तुतः किसी बात को भी पाप नहीं समझते थे, और उनका व्यक्तिगत धर्म भी बहुत दुर्बल था, इसीलिये उन लोगों ने कभी उच्च कोटि का और श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करने का कोई विशेष अथवा निरंतर प्रयत्न नहीं किया। सभी नवीन विचारों के संबंध में उनके मन में कुतूहल उत्पन्न होता था, और वे उन्हें जल्दी-जल्दी ग्रहण करने का प्रयत्न करते थे। साथ ही उनमें चालाकी भी बहुत थी। पर वे लोग बहुत झगड़ालू और छिछोरे हो गए थे, और सत्यासत्य का निर्णय करने की उत्सुकता उनमें नहीं रह गई थी।

यूनानियों के पतन से हम यह शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं कि हमें केवल शिक्षा, बुद्धि और चतुराई पर ही सारा भरोसा नहीं करना चाहिए। इन्हीं बातों को अपने जीवन का मार्ग-दर्शक नहीं बनाना चाहिए, क्योंकि इसमें अनेक प्रकार की विपत्तियों के आने की संभावना है। पर साथ ही हमें यह भी मानना पड़ेगा कि इस प्रकार की शिक्षा के अतिरिक्त और भी अनेक बातों में पाश्चात्य संसार उनका ऋणी है, और अब पाश्चात्य संसार द्वारा शेष संसार भी उनका बहुत कुछ ऋणी है। जिन अनेक बातों से जीवन को सुंदर और महान् बनाने में सहायता मिलती है, उनमें से प्रायः सभी बातों में यूनान ही सबसे पहले अग्रसर हुआ, और उसी ने मार्ग-प्रदर्शन का काम किया था। कला और साहित्य-क्षेत्र में शुद्ध तथा स्वच्छ सौंदर्य के स्थायी आदर्श

उन्हीं लोगों ने प्रस्तुत करके संसार के सामने रक्खे थे। उन्होंने हमारे सामने एक ऐसे राज्य का भी उदाहरण उपस्थित किया था, जो स्वतंत्रता के भावों और विचारों का पूरा-पूरा पोषक था, और जिसने यह बतलाया था कि प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह सदा यह ध्यान रक्खे कि हमारे राज्य का शासन-कार्य किस प्रकार चलता है; और जहाँ तक हो सके, उस शासन को उत्तम बनाने का प्रयत्न करे। दर्शन-शास्त्र के क्षेत्र में यूनानियों ने स्पष्ट तथा सत्य विचारों का आदर्श हमारे सामने रक्खा है, जो सभी युगों में सत्य और उचित विचार-प्रणाली का सबसे अच्छा मार्ग-दर्शक है। साथ ही उन लोगों ने हमारे सामने एक ऐसे आनंद-पूर्ण नागरिक जीवन का चित्र उपस्थित किया है, जिसमें सौंदर्य स्वयं ही आनंद-रूप माना गया है, और जिसमें मनुष्य के सच्चे जीवन के लिये स्वतंत्रता एक परम आवश्यक वस्तु मानी गई है, और यह बतलाया गया है कि और सब बातों का विचार छोड़कर केवल सत्य के विचार से ही सत्य का मूल्य अंकित करना और उसका अनुसंधान करना चाहिए। रोमन संसार पर सैकड़ों वर्षों तक यूनान का प्रभाव बराबर बना रहा। इसके उपरांत शीघ्र ही उस प्रभाव का सदुपयोग करने के लिये ईसाई-धर्म आ पहुँचा, और जब अंधकार-युग के बाद योरप जागा, तब उसने कला और ज्ञान के क्षेत्रों में एक अच्छा क़दम आगे बढ़ाया। प्राचीन यूनान के जिन ज्ञान-कोशों का योरप ने फिर से पता लगाया था, उन्होंने योरप को आधुनिक उन्नति का मार्ग दिखलाया, और उस मार्ग पर अग्रसर होने के लिये प्रोत्साहित किया था।
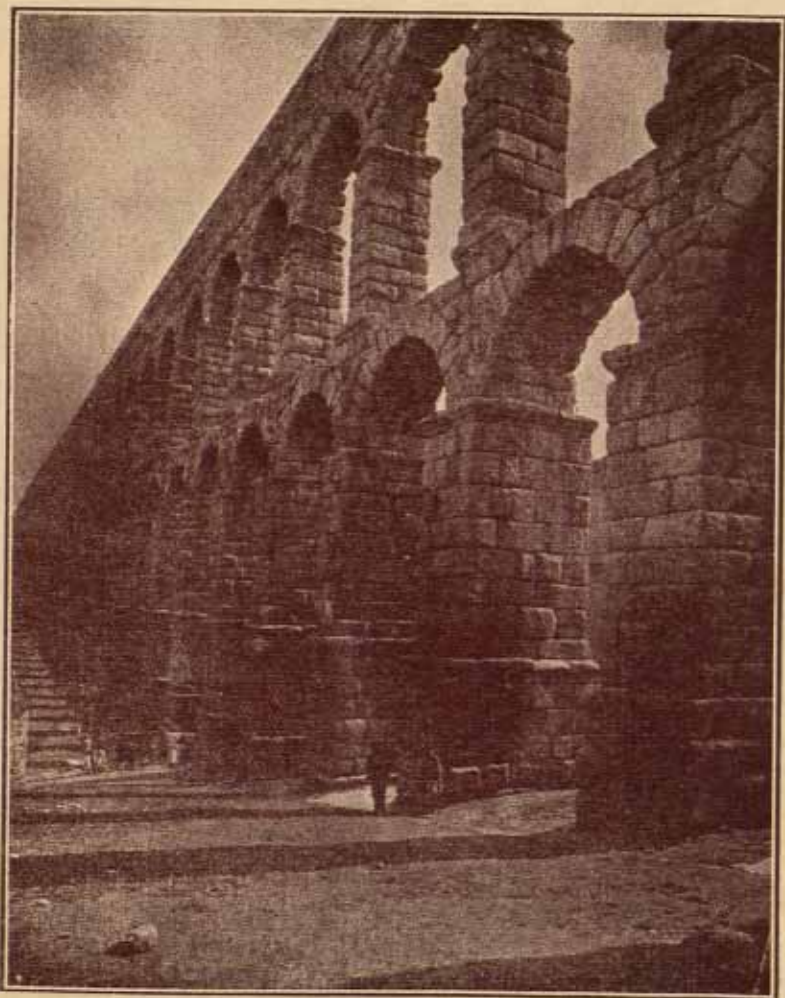
सिगोविया का राज-बहा
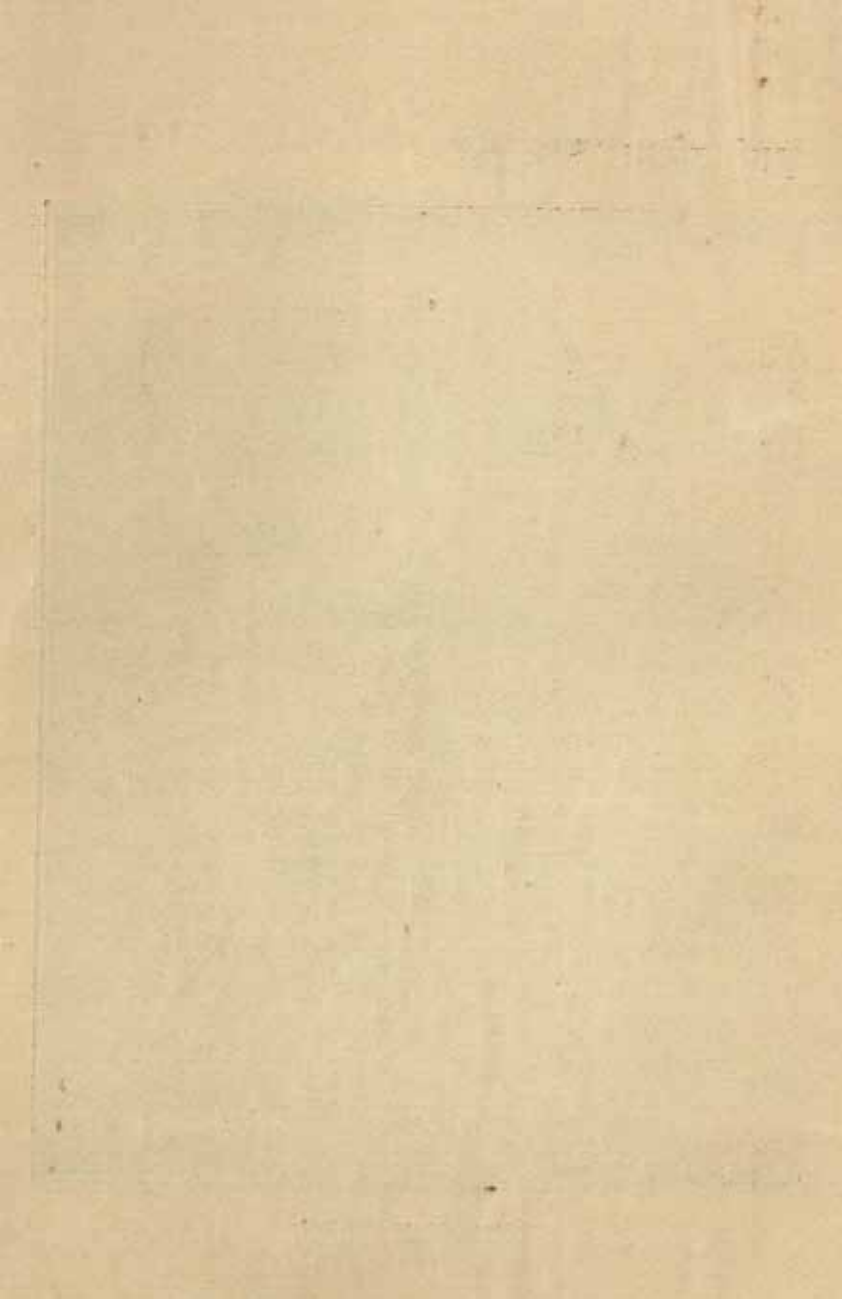
तीसरा भाग

रोम

१. रोम का उदय

इटली के पश्चिमी समुद्र-तट पर प्रायः आधी दूर तक वह मैदान है, जो इतिहास में 'लैटियम का मैदान' के नाम से प्रसिद्ध है, और ऐसा अनुमान किया जाता है कि आरंभ में इस लैटियम-शब्द का अर्थ चौड़ा या खुला हुआ मैदान रहा होगा; इसके अतिरिक्त उसका और कोई अर्थ न रहा होगा। समुद्र-तट को छोड़कर और सभी ओर वह मैदान ऊँची ज़मीन से घिरा हुआ है। उसके उत्तर और दक्षिण में पहाड़ी प्रदेश हैं, और उसकी पूर्वी सीमा पर एपीनाइन पर्वत-माला है। इस मैदान की ज़मीन ऊँची-नीची और ऊबड़-खाबड़ है, और बीच-बीच में कुछ छोटी-मोटी पहाड़ियाँ भी हैं। पर फिर भी इस मैदान के अधिकांश में नीची ही भूमि है।

प्राचीन काल में कुछ लोग डैन्यूब-नदी के आस-पास के प्रदेशों से चलकर इटली के उत्तरी भाग में आ बसे थे। कुछ दिनों बाद वे लोग वहाँ से भी आगे बढ़कर, इस मैदान में आकर रहने लगे थे। जब वे लोग दक्षिण की ओर बढ़ते-बढ़ते इस मैदान में आ पहुँचे, तब इसे अनेक दृष्टियों से उपयुक्त समझकर इसी में स्थायी रूप से बस गए। ये ही वे लोग हैं, जो आजकल लैटिन कहलाते हैं (लैटिन शब्द का अर्थ है लैटियम के निवासी)। इस मैदान में उन लोगों ने अनेक नगर बसाए थे। यद्यपि ये सभी नगर अपना-अपना शासन स्वतंत्र रूप से स्वयं ही करते थे, तो भी, ऐसा

जान पड़ता है, इन सबमें आपस में किसी-न-किसी प्रकार का संबंध या संघ बन गया था, जो इतिहास में लैटिन लीग के नाम से प्रसिद्ध है।

इनमें से एक नगर टाइबर-नदी के दाहने किनारे पर, उसके मुहाने से प्रायः पंद्रह मील की दूरी पर, कई छोटी-छोटी पहाड़ियों के समूह पर, बसा था। ये पहाड़ियाँ प्रायः डेढ़ सौ फ़ुट ऊँची थीं। यही सुप्रसिद्ध रोम नगर था। रोमनों का कहना है कि इस नगर की नींव ई० पू० ७५४ में पड़ी थी। उन दिनों इटली के उत्तरी भाग में इट्रुस्कन लोग बसते थे। इस स्थान पर यह नगर कदाचित् इसी विचार से बनाया गया था, जिसमें इट्रुस्कन लोग टाइबर-नदी पार करके इस ओर न आ सकें। अतः हम कह सकते हैं कि आरंभ में यह नगर लैटिन मैदान के किनारे पर केवल एक बड़े गढ़ के रूप में बनाया गया था; और इसके अतिरिक्त उन दिनों इसका और कोई विशेष महत्त्व नहीं था।

पहले लैटिन क़स्बों में से कोई ऐसा क़स्बा नहीं था, जिसका इटली में कोई विशेष महत्त्व रहा हो। इटली के दक्षिणी भाग में बहुत-से यूनानी पहुँच गए थे, जिन्होंने वहाँ कई नगर बसाए थे। उदाहरणार्थ रेगियम (ई० पू० ७१२), क्रोटन (ई० पू० ७१०) और टेरेंटम (ई० पू० ७०८)। इन नगरों का जीवन यूनानी सभ्यता के आधार पर ही आरंभ हुआ था, और ये नगर शीघ्र ही संपन्न तथा उन्नत हो गए थे। पर ये सब नगर लैटियम से बहुत दूर थे, इसलिये वहाँ के नगरों के कामों में न तो कोई हस्तक्षेप ही कर सकते थे, और न उन पर इनका कोई प्रभाव ही पड़ सकता था। इसके अतिरिक्त उधर उत्तरी आफ्रिका में कारथेज की शक्ति बराबर बढ़ती जा रही थी, और उसके मुक़ाबले में इन यूनानी नगरों को अपनी स्थिति तथा व्यापार बनाए रखने के लिये

भी बहुत कुछ उद्योग करना पड़ता था। पर हाँ, लैटिन क़स्बों के लिये उनके आस-पास ही कई विपत्तियाँ थीं। इस मैदान के आस-पास ऊँचे और पहाड़ी स्थान पड़ते थे, जिनमें वाल्सियन तथा सबेलियन आदि कई छोटी-छोटी जातियाँ बसती थीं। इसके अतिरिक्त इन क़स्बों को और भी विशेष भय इट्रुस्कन संघ के उन नगरों से भी बना रहता था, जो टाइबर-नदी के उत्तर में इट्रूरिया-नामक प्रदेश में थे। ये इट्रुस्कन लोग कदाचित् पूर्व की ओर से इटली में आए थे। उत्तरी तथा मध्य इटली में इन लोगों की शक्ति शीघ्र ही बहुत बढ़ गई थी। उनके पास जल-सेना भी यथेष्ट थी और स्थल-सेना भी। इसके अतिरिक्त उनके व्यापार तथा सभ्यता में भी अपने पड़ोसियों की अपेक्षा अधिक और शीघ्र उन्नति तथा विकास हुआ था।

रोम के आरंभिक इतिहास का अभी हम लोगों को बहुत ही कम ज्ञान है। रोमनों में उनके आरंभिक इतिहास के संबंध में बहुत-सी कहानियाँ और आख्यायिकाएँ प्रचलित थीं। उन आख्यायिकाओं आदि में इस बात का वर्णन है कि इनियस किस प्रकार ट्राय से भागकर इटली में आया था, वहाँ उसने लैनूवियम-नामक नगर बसाया था; रोम्यूलस और रेमस के आश्रय में उनके उत्तराधिकारियों ने किस प्रकार रोम-नगर बसाया था; न्यूमा-नामक एक आरंभिक रोमन राजा पर देवताओं की कैसी कृपा रहती थी; किस प्रकार अभिमानी राजा टारक्विन ने ल्यूक्रेसिया का अपमान किया था, और किस प्रकार रोमन लोगों ने उसे मार भगाया था; और जब उसने इट्रुस्कन लोगों की सहायता से फिर इधर लौटने का प्रयत्न किया था, तब किस प्रकार होरेशियस ने शत्रुओं से रोम के पुल की रक्षा की थी; और तब किस प्रकार रेगिलस-झील के किनारेवाले युद्ध में कैस्टर तथा पोलक्स-नामक देवताओं ने रोमन सेना का संचालन करके

उन्हें विजयी किया था। इन कहानियों में कदाचित् सत्य का तो उतना अधिक अंश नहीं है, पर फिर भी ये बहुत उत्तेजक, रोमांचकारिणी तथा सुंदर हैं। जो बात हम निश्चित रूप से जानते हैं, वह केवल यही है कि अंत में लैटिन नगरों में रोम सर्व-प्रधान हो गया था। साथ ही बहुत कुछ संभावना इस बात की भी जान पड़ती है कि सबसे पहले उसकी उन्नति का आरंभ ई० पू० छठी शताब्दी में उस समय हुआ था, जब कुछ दिनों के लिये उस पर इट्रुस्कन सरदारों का अधिकार हुआ था। इन्हीं लोगों ने उस नगर का विशेष विस्तार किया होगा, और रोमन लोगों को इट्रुस्कन सभ्यता की कुछ कलाएँ तथा शिल्प आदि सिखलाए होंगे। विशेषतः उन्होंने रोमनों को इतना तो अवश्य ही सिखलाया था कि बड़ी-बड़ी इमारतें कैसे बनानी चाहिए, और नगरों में नलों और नालियों आदि की व्यवस्था कैसे करनी चाहिए। रोम का सबसे बड़ा और मुख्य नल*, जो 'क्लोअका मैक्सिमा' कहलाता है, संभवतः उसी समय बना था। इस प्रकार बहुत आरंभिक काल में ही रोमनों को यह शिक्षा मिल गई थी कि नागरिकों के स्वास्थ्य और सुबीते के लिये बड़े-बड़े सार्वजनिक इमारती काम किस प्रकार किए जाते हैं; और यह काम वे लोग बहुत दिनों तक बराबर करते रहे। यह बात प्रायः निश्चित-सी जान पड़ती है कि इट्रुस्कन सरदारों की अधीनता में रहने के कारण ही रोम आगे चलकर लैटियम का सर्व-प्रधान नगर बन सका था।

ई० पू० छठी शताब्दी के अंत में इट्रुस्कन लोग वहाँ से भगा दिए गए थे। रोम अपने विदेशी स्वामियों के पंजे से तो

---

* पहले वहाँ एक बहुत बड़ी दलदल थी, जिसे सुखाकर बस्ती के योग्य बनाने के लिये ही पहलेपहल यह बड़ा नल बनाया गया था।

निकल गया, पर इसके बाद ही उसे अपने अस्तित्व की रक्षा करने के लिये बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ा था। इसके बाद प्रायः साढ़े तीन सौ वर्षों तक उसे लगातार बड़े-छोटे अनेक युद्ध करने पड़े थे। इस बीच में उसे बड़ी-बड़ी बाधाओं का भी सामना करना पड़ा, और उस पर अनेक प्रकार की विपत्तियाँ भी आईं। पर इन सबके अंत में वह धीरे-धीरे पहले समस्त इटली का स्वामी बन गया, और तब उसने संसार के सबसे बड़े साम्राज्य का रूप धारण किया। उस काल की समस्त घटनाओं को हम नीचे लिखे तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—(क) इटली के स्वामित्व के लिये युद्ध, जो ई० पू० ५०० से २६४ तक होते रहे, (ख) पश्चिमी समुद्रों के आधिपत्य के लिये युद्ध, जो ई० पू० २६४ से २०० तक होते रहे, और (ग) पूर्वी युद्ध, जिनका समय ई० पू० २०० से १५० तक है।

(क) इट्रुस्कन शक्ति के अच्छे दिन चले गए थे। उस पर दक्षिण-पूर्व की ओर से सेमनाइट लोगों के आक्रमण होने लगे थे, और उत्तर की ओर से केल्ट या गाल लोग उन पर चढ़ाइयाँ करते रहते थे। (ई० पू० ३६० में तो ये गाल लोग रोम तक आ पहुँचे थे, और उन्होंने रोम पर अधिकार करके उसे जला डाला था। पर अंत में वे लोग लूट का बहुत-सा माल लेकर वहाँ से चले गए थे।) उधर यूनानी लोग भी धीरे-धीरे समुद्र पर से उनका अधिकार हटाते जा रहे थे, औ ई० पू० ४७४ में सायराक्यूजवालों ने उन्हें जल-युद्ध में इतनी बुरी तरह परास्त किया था कि फिर उनकी जल-शक्ति किसी काम की न रह गई, और फिर कभी उठकर खड़ी न हो सकी। इन्हीं सब कारणों से इट्रुस्कन लोग धीरे-धीरे बहुत ही निर्बल हो गए थे। पर रोम के सबसे अधिक भीषण शत्रु उसके आस-पास के पहाड़ी लोग थे, जो वाल्सियन, सैबायन,

एक्वियन तथा सेमनाइट कहलाते थे। इनमें से सेमनाइट लोग रोम से कुछ अधिक दूरी पर रहते थे। रोम का बढ़ता हुआ महत्व देखकर इन लोगों के मन में बहुत ईर्ष्या उत्पन्न होती थी। फिर ये शत्रु भी कुछ साधारण नहीं थे, इनके कारण रोम को प्रायः बहुत कष्ट पहुँचता था। इन शत्रुओं को दबाने के लिये रोम को इनके साथ लगातार बहुत दिनों तक अनेक युद्ध करने पड़े थे। विशेषतः सेमनाइटों के साथ तो उन्हें तीन बार बहुत बड़े-बड़े युद्ध करने पड़े थे, जो ई० पू० ३४३ और २६० के बीच में हुए थे। परंतु लैटिन तथा हरनिकन लोगों की सहायता से अंत में सदा रोम की ही विजय होती रही। ई० पू० ३४३ में रोम ही समस्त मध्य इटली का स्वामी हो गया, और ई० पू० ३३८ में लैटिन संघ का अंत हो गया। अब केवल रोम ही सारे लैटियम और उसके आस-पास के प्रदेश का स्वामी रह गया।

जब रोम ने सेमनाइट लोगों पर विजय प्राप्त कर ली, तब दक्षिणी इटली के यूनानी नगरों के साथ उसका संबंध हुआ। रोमन लोगों को बराबर आगे बढ़ते हुए देखकर टेरेंटम-निवासियों के मन में इतना भय उत्पन्न हुआ कि अंत में, ई० पू० २८० में, उन लोगों ने एपिरस के राजा पाइरस से सहायता माँगी। दस वर्ष तक रोमनों को पाइरस से कई बार परास्त होना पड़ा। पर फिर भी शत्रुओं की ओर से संधि की जो शर्तें आती थीं, उन्हें मानने से रोमन लोग साफ़ इनकार कर देते थे। अंत में जब पाइरस ने देख लिया कि इन विजयों का भी हमें कोई विशेष फल प्राप्त नहीं होता, तब अंत में, ई० पू० २७५ में वह इटली छोड़कर चला गया। इसके बाद ही यूनानी नगरों ने बहुत सहज में रोम की अधीनता स्वीकृत कर ली, जिससे रोम का राज्य अरनो-नदी से लेकर दक्षिणी समुद्र-तट तक फैल गया। यह क्षेत्र वही है, जो आजकल इटली कहलाता है। हाँ,

अभी तक पो-नदी की तराई पर रोमनों का अधिकार नहीं हुआ था। वहाँ छोटी-छोटी कई गैलिक जातियाँ बसती थीं, जिन्हें रोम ने अभी तक स्पर्श नहीं किया था।

(ख) अब रोम का राज्य भूमध्यसागर तक पहुँच गया था। मेस्सिना के जल-डमरूमध्य के उस पार सिसली टापू पड़ता था, जहाँ की भूमि बहुत ही उपजाऊ थी। यहाँ बहुत दिनों से अनेक यूनानी नगर बसे हुए थे, जिन्हें बराबर कारथेजवालों का मुक़ाबला करना पड़ता था, क्योंकि इस टापू के पश्चिमी भाग में कारथेजवालों के हाथ में कई बहुत दृढ़ स्थान थे। कारथेज एक बहुत बड़ा नगर था। टायर से आए हुए फ़िनीशियन लोगों ने यह नगर बसाया था, और पश्चिम में यह सबसे बड़ा व्यापारी नगर हो गया था। थोड़े-से बहुत धनी व्यापारियों का एक दल इस नगर पर राज्य करता था। उसके नागरिक सैनिक नहीं, बल्कि व्यापारी थे। कारथेज के आस-पास जो आफ़्रिकन प्रदेश था, उसी में कुछ छोटी-छोटी न्यूमीडियन जातियाँ रहा करती थीं; और कारथेजवालों को जब आवश्यकता होती थी, तब वे इन्हीं जातियों में से अपने लिये भाड़े पर सैनिक मँगवा लिया करते थे। पर फिर भी कारथेज के निवासी सदा समुद्र-यात्रा में बहुत साहसी और चतुर होते थे। उनके व्यापारी जहाज़ उत्तर में ब्रिटेन तक और दक्षिण में आफ़्रिका के पश्चिमी समुद्र-तट पर बहुत दूर तक चले जाते थे। जब रोम की उन्नति होने लगी, तब कारथेजवालों के मन में ईर्ष्या भी उत्पन्न हुई और भय भी। अब यह बात निश्चित-सी हो गई कि इन दोनो राज्यों में शीघ्र ही युद्ध होगा।

रोमवालों के साथ कारथेजवालों के दो प्रसिद्ध और बड़े युद्ध हुए थे, जो प्यूनिक युद्ध कहलाते हैं। इनमें से पहला युद्ध ई० पू० २६४ से २४१ तक और दूसरा युद्ध ई० पू० २१८ से २०२ तक

होता रहा। इनमें से पहला युद्ध मुख्यतः समुद्र में हुआ था। सिसली में जो स्थल-युद्ध हुए थे, उनमें निर्णय कुछ भी न हो सका था; क्योंकि कभी एक पक्ष विजयी होता था और कभी दूसरा। पर रोम की जो सेना आफ़्रिका के तट पर जाकर उतरी थी, वह बिलकुल नष्ट कर दी गई थी। रोम ने समझ लिया कि हम विजय तभी प्राप्त कर सकते हैं, जब हम कारथेज को समुद्र में परास्त करें। पर जल-युद्ध में कारथेज पर विजय प्राप्त करने के लिये एक अच्छे जहाज़ी बेड़े की आवश्यकता थी*। इस प्रयत्न में उसने जितना अधिक अध्यवसाय दिखलाया था, वह अवश्य ही बहुत प्रशंसनीय है। यह ठीक है कि इस काम में रोम को यूनानी तथा इट्रुस्कन नाविकों से थोड़ी-बहुत सहायता मिल सकती थी, लेकिन फिर भी ऐसी अवस्था में, जब कि एक प्रबल शत्रु के साथ युद्ध छिड़ा हो, एक स्थल-शक्ति के लिये अपनी एक नई जल-शक्ति खड़ी कर लेना और उसी से ऐसी शक्ति का मुक़ाबला करना बहुत ही कठिन है, जो संसार में सबसे बड़ी जल-शक्ति हो। जब रोम ने पहलेपहल अपना नया और भारी जहाज़ी बेड़ा तैयार करना शुरू किया, तब भाग्य उसके विपरीत था। पहले उसने चार बेड़े तैयार किए थे, पर वे चारो या तो युद्ध में या तूफ़ान में नष्ट हो गए। पर रोमवालों के सौभाग्य से कारथेज की सरकार इतनी मूर्ख निकली कि वह अपने सौभाग्य का उचित उपयोग न कर सकी, और अपने जहाज़ी बेड़े को ठीक अवस्था में न रख सकी। इसके अतिरिक्त सिसली में कारथेज सरकार की ओर से हैमिल्कर

---

* रोम के पास पहले से कुछ जहाज़ तो अवश्य थे, पर रोमन लोग जहाज़ों पर और समुद्रों में काम करना कभी पसंद नहीं करते थे; और उनका जहाज़ी बेड़ा सिर्फ़ मज़ाक़ ही था।

नाम का जो सेनापति नियुक्त था, उससे स्वयं वह सरकार इतनी ईर्ष्या रखती थी कि उसके पास सिसली में उचित सहायता नहीं भेजती थी। इसलिये रोम को एक बार फिर अपना जहाज़ी बेड़ा तैयार करने का प्रयत्न करने के लिये एक और अच्छा अवसर मिल गया। पर उस समय रोम-सरकार के पास धन ही नहीं रह गया था, इसलिये रोम के कुछ धनिकों ने स्वयं ही दो सौ जहाज़ बनवाकर राज्य की भेंट कर दिए। बस, तभी से रोम का भाग्य पलटा। रोम के इस जहाज़ी बेड़े ने इगेशियन टापुओं के पास शत्रु के जहाज़ी बेड़ों को पूर्ण रूप से परास्त कर दिया, और कारथेज को विवश होकर शांति के लिये प्रार्थना करनी पड़ी; क्योंकि यदि उस समय वह शांति के लिये प्रार्थना न करता, तो रोम की सेना उसके देश में जा पहुँचती।

इस युद्ध के फल-स्वरूप रोम को सिसली मिल गया और सिसली ही रोमन साम्राज्य का पहला प्रांत बना। इसके कुछ ही दिनों बाद रोम ने कारसिका और सारडीनिया पर भी विजय प्राप्त कर ली, और इस प्रकार वह पश्चिमी समुद्रों का स्वामी बन गया। उधर उत्तर की ओर से कुछ गाल सैनिकों ने फिर इटली पर आक्रमण किया था; पर रोम ने उन आक्रमणकारियों पर भी विजय प्राप्त कर ली, और पो-नदी तक का सारा प्रदेश जीतकर अपने अधिकार में कर लिया।

लेकिन इतना होने पर भी यह न समझना चाहिए कि कारथेज के साथ रोम के युद्धों का अंत हो गया था। कारथेजवाले रोम से इस पराजय का बदला चुकाने के लिये अधीर हो रहे थे, इसलिये सेनापति हैमिल्कर को उसकी सरकार से यह आज्ञा मिल गई थी कि स्पेन के दक्षिणी भाग में कारथेज का राज्य स्थापित किया जाय। वहाँ हैमिल्कर ने प्रायः नौ वर्षों तक परम स्वतंत्रता-पूर्वक शासन किया था, उस देश में आकर अनेक नए साधन प्रस्तुत किए थे,

और एक अच्छी सेना भी तैयार कर ली थी। ई० पू० २२१ में जब हैमिल्कर की मृत्यु हुई, तब वह अपने अधिकार के साथ-साथ रोम से बदला चुकाने का भार भी अपने पुत्र हनीबाल को दे गया। ई० पू० २२० में हनीबाल युद्ध करने के लिये तैयार हो गया।

इतिहास में जो पाँच-छ बहुत बड़े-बड़े सेनापति हो गए हैं, हनीबाल भी उन्हीं में से एक है। रोम के साथ घृणा करना वह सदा अपना परम पवित्र कर्तव्य समझता था। इटली पर वह समुद्र के मार्ग से तो आक्रमण कर ही नहीं सकता था, क्योंकि समुद्र में रोमन बेड़े का पूरा-पूरा राज्य था। इसलिये वह अपने साथ एक लाख सैनिकों को लेकर स्थल के मार्ग से आगे बढ़ने लगा। पहले उसने पेरिनीज पर्वत-माला को पार किया, और बढ़ता हुआ रहोन तक चला गया। रास्ते में स्पेन और गालों की जो छोटी-छोटी अनेक जातियाँ पड़ती थीं, उन्हें भी वह जीतता और अपने अधीन करता गया। इसके उपरांत आल्प्स् पर्वत पार करने में उसे बर्फ़ आदि के कारण बहुत अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। आल्प्स् पर्वत पार करने के उपरांत उसके पास एक लाख सैनिकों में से केवल तीस हज़ार सैनिक बच रहे थे। बाक़ी सब रास्ते में मर-खप गए थे। उन्हीं तीस हज़ार सैनिकों को साथ लेकर उसने इटली में प्रवेश किया। संसार में अब तक जो इने-गिने परम साहस-पूर्ण तथा परम आश्चर्य-जनक अभियान या युद्ध-यात्राएँ हुई हैं, हनीबाल का यह अभियान या युद्ध-यात्रा भी उन्हीं में से एक है। पर कदाचित् इससे भी बढ़कर आश्चर्य-जनक बात यह है कि सोलह वर्षों तक उसने इटली में अपनी स्थिति बनाए रक्खी थी। सोलह वर्षों तक इटली में शत्रु की भाँति रहकर वह बराबर रोमन सैनिकों को परास्त करता रहा। टिकिनस और ट्रेबिया-नामक स्थानों में, ट्रेसिमेन-नामक झील के किनारे और केन्नेई के युद्ध-क्षेत्र में, सभी

जगह हन्नीबाल ने रोमन सैनिकों को परास्त किया । बल्कि हम कह सकते हैं कि इटली में रोमनों के साथ उसका एक भी ऐसा युद्ध नहीं हुआ, जिसमें उसकी हार हुई हो । गाल लोगों ने भी अपने सैनिक देकर उसकी सहायता की थी । उधर दक्षिणी इटली के निवासियों ने भी रोम के विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर दिया था, और रोम-नगर पर बहुत बड़ी विपत्ति आने की संभावना हो रही थी । पर फिर भी रोमन लोगों के सौभाग्य और दृढ़ता या हठ ने उनकी रक्षा कर ही ली ।

पहले रोम के सौभाग्य को ही लीजिए । कारथेजवालों ने हन्नीबाल को बिलकुल यों ही छोड़ दिया था । वे न तो हन्नीबाल की सहायता के लिये सैनिक आदि भेजते थे और न गढ़ों या परकोटों आदि को तोड़ने के यंत्र ही । हन्नीबाल ये सब यंत्र अपने साथ भी नहीं ला सका था, इसलिये वह रोम पर किसी प्रकार घेरा नहीं डाल सकता था । फिर रोम के सब साथियों ने भी (केवल दक्षिणवाले साथियों को छोड़कर) बराबर दृढ़ता-पूर्वक रोम का साथ दिया था । हन्नीबाल को यह आशा थी कि रोम के ये सब साथी विद्रोही हो जायँगे, पर यह बात नहीं हुई ।

अब रोम की दृढ़ता या हठ लीजिए । कठिन-से-कठिन विपत्तियाँ आने पर भी रोमन लोग कभी साहस नहीं छोड़ते थे । केन्नेई के युद्ध-क्षेत्र में रोमनों की इतनी बड़ी हार हुई थी कि उसमें उनके सत्तर हज़ार आदमी मारे गए थे, और अकेला सेनापति ही किसी प्रकार उस युद्ध-क्षेत्र से जीता बचकर लौटा था । फिर भी उस अकेले सेनापति का स्वागत करने के लिये रोम की सिनेट के सब सदस्य और बहुत-से निवासी नगर के बाहर आए थे, और सब लोगों ने मिलकर इसलिये उसे धन्यवाद दिया था कि "वह अभी तक रोमन प्रजातंत्र की ओर से निराश नहीं हुआ था ।"

हनीबाल का एक भाई था, जिसका नाम हसद्रूबाल था। वह इधर कुछ दिनों से स्पेन में पड़ा हुआ था, और रोमन सेनाएँ उसकी निगरानी कर रही थीं। हसद्रूबाल उन सैनिकों की निगाह बचाकर किसी तरह निकल आया, और अपने साथ एक बहुत बड़ी सेना लेकर हनीबाल की सहायता करने के लिये इटली आ पहुँचा। अब रोमवालों को सबसे बड़ी विपत्ति अपने सामने दिखाई दी। यदि इन दोनो भाइयों की सेनाएँ आपस में मिल जातीं, तो रोम का निस्तार होना बहुत ही कठिन था। पर हनीबाल की गति-विधि की निगरानी करनेवाली एक रोमन सेना के प्रधान अधिकारी ने, जिसका नाम क्लाडियस नीरो था, हसद्रूबाल के उन दूतों को पकड़ लिया, जो कुछ संदेश लेकर हनीबाल के पास जा रहे थे। हनीबाल को धोखे में रखने के लिये नीरो ने अपने थोड़े-से सैनिकों को तो वहीं छोड़ दिया, और अपनी मुख्य सेना को लेकर दूसरी रोमन सेना के साथ जा मिला। हसद्रूबाल के सैनिक अभी सुस्ताने भी नहीं पाए थे कि उक्त दोनो रोमन-सेनाओं ने उन पर आक्रमण कर दिया, और मेटारस-नदी के किनारे युद्ध करके उन्हें परास्त कर दिया। उस युद्ध-क्षेत्र में ही हसद्रूबाल मारा गया था। नीरो की बुद्धिमत्ता से रोमनों का यह काम बहुत मार्के का हो गया और हनीबाल को सहायता पहुँचने का जो अंतिम अवसर था, उससे भी वह वंचित रह गया, तो भी दक्षिणी इटली में हनीबाल चार बरस तक ठहरा रहा। पर वह रोम को कोई विशेष क्षति न पहुँचा सका। इसी बीच में कुछ रोमन सेना आफ़्रिका में जा पहुँची, और कारथेज की रक्षा करने के लिये हनीबाल वापस बुला लिया गया। उस समय हनीबाल के साथ बहुत ही थोड़े-से पुराने सैनिक बच रहे थे। अतः उन्हीं थोड़े-से साथियों और बहुत अधिक नए सैनिकों को लेकर उसने

आफ्रिका में जामा-नामक स्थान में ई० पू० २०२ में रोमनों का मुक़ाबला किया, पर वहाँ भी वह बुरी तरह से हार गया।

इस प्रकार कारथेजवालों के साथ रोमनों के युद्ध का अंत हो गया। कारथेज को बहुत कड़ी शर्तें मानकर संधि करनी पड़ी। विदेशों में जो उसके अधीनस्थ प्रदेश थे, वे सब उससे छिनकर रोमनों के हाथ में चले गए, और उसके बेड़े में केवल बीस जहाज़ रहने दिए गए। अब कारथेज एक छोटा-सा नगर-राज्य रह गया, जिसे आस-पास की छोटी-छोटी जातियाँ बराबर तंग करती रहती थीं, क्योंकि रोमन लोग उन जातियों को कारथेजवालों के खेत आदि लूटने के लिये बराबर उसकाया करते थे। इसमें रोमवालों का उद्देश्य यह था कि कारथेज के निवासी फिर से धनवान् या बलवान् न होने पावें। ई० पू० १४९ में रोम ने फिर अपनी एक सेना कारथेज पर चढ़ाई करने के लिये भेज दी। इस बार लड़ाई का कोई वास्तविक कारण तो था ही नहीं, रोमवालों को केवल इस बात का भय था कि कहीं कारथेजवाले फिर से हाथ-पैर निकालने का प्रयत्न न करने लगें। कारथेजवाले दो वर्ष तक तो रोमनों के साथ बहुत अच्छी तरह लड़ते रहे, पर अंत में रोमनों ने कारथेज पर अधिकार करके उसे नष्ट कर डाला। यह घटना ई० पू० १४६ की है। इतिहासज्ञ लोग इस युद्ध को तीसरा 'प्यूनिक युद्ध' कहते हैं। पर यदि वास्तविक दृष्टि से देखा जाय, तो यह कोई युद्ध नहीं था, बल्कि रोमनों की ओर से कोरा पाशविक दमन था। रोम ने अब तक जिस वीरता से कारथेजवालों के साथ इतने दिनों तक युद्ध किया था, उसका अंत उन्होंने इस अनुचित और अयोग्य रूप से कर डाला।

इन प्यूनिक युद्धों का परिणाम यह हुआ कि सारे स्पेन पर रोम का अधिकार हो गया, और उत्तरी आफ्रिका में उसकी शक्ति

सर्वश्रेष्ठ हो गई। इसके बाद कुछ ही वर्षों के अंदर रोमवाले अपना अधिकार बढ़ाते हुए आल्प्स्-पर्वत तक पहुँच गए, और पो-नदी के उस पार जितनी गाल-जातियाँ बसती थीं, उन सबको उन्होंने परास्त कर दिया। अब पश्चिमी संसार में रोम ही सबसे अधिक बलवान् राष्ट्र रह गया था।

(ग) अभी दूसरे प्यूनिक युद्ध का अंत हुआ ही था कि रोम को पूर्व की ओर ध्यान देना पड़ा। मकदूनिया के राजा फिलिप और सीरिया के राजा एंटियोकस ने आपस में मित्रता कर ली थी। फिलिप उस समय यूनानी नगरों पर आक्रमण कर रहा था, और लक्षणों से ऐसा जान पड़ता था कि वह फिर से यूनान में अपना साम्राज्य स्थापित करने का प्रयत्न कर रहा है। उसी समय रोम ने युद्ध की घोषणा कर दी, और ई० पू० १९८ में साइनोसेफैलो-नामक स्थान पर उसने फिलिप को भली भाँति परास्त किया। उसका साथी एंटियोकस कुछ देर करके बहुत बड़ी सेना लेकर बड़े ठाट से, ई० पू० १९२ में, यूनान की ओर बढ़ा, पर वह भी थरमापिली में हराकर एशिया की ओर भगा दिया गया। रोमनों ने रहोड्स और परगेमम से सहायता ली, जो पहले से ही सीरिया से ईर्ष्या रखते थे, और एंटियोकस के फिनीशियन बेड़े को उन्होंने दो बार परास्त किया। इसके बाद रोमनों की एक बड़ी सेना एशिया में जा पहुँची, और उसने ई० पू० १९० में मैगनेशिया-नामक स्थान में एंटियोकस की सारी शक्ति छिन्न-भिन्न कर डाली। एंटियोकस को विवश होकर यह स्वीकृत करना पड़ा कि हम रोम को राज-कर दिया करेंगे; और साथ ही उसे पश्चिमी एशिया की देशी रियासतों को स्वतंत्रता भी देनी पड़ी। उस समय रोम ने वहाँ अपना कोई निजी प्रांत नहीं स्थापित किया था। पर हाँ, तभी से एशिया माइनर में वह सर्व-प्रधान हो गया था। सीरिया का राज्य धीरे-धीरे टूटने लगा। बस, अब उसका अंत होने में बड़ी

कसर रह गई थी कि रोम तैयार होकर स्वयं ही उसे अपने हाथ में कर ले।

उस समय तक मेसिडोन अपने नए राजा परसियस के अधिकार में चला गया था, और अभी तक रोम को कुछ-न-कुछ तंग करता चलता था। पर अंत में ई० पू० १६८ में पाइडना के युद्ध में वह भी पूरी तरह परास्त कर दिया गया। ई० पू० १४८ और १४६ के बीच में मेसिडोनिया और सारा यूनान रोम के हाथ में चला गया, और अब ये दोनो प्रदेश रोमन साम्राज्य के प्रांत हो गए। ई० पू० १६८ में ही रोम ने मिस्र पर भी पूरा-पूरा अधिकार प्राप्त कर लिया था, और सीरिया के आक्रमणों से उसकी रक्षा करने का भार अपने ऊपर ले लिया था। मिस्र में वहाँ के राजों का अधिकार तो रहने दिया गया था, पर तब से वे राजा लोग रोमन साम्राज्य के अधीनस्थ माने जाते थे।

अब रोम सारे भूमध्य का स्वामी हो गया था, और उसने अधिकांश विजय मुख्यतः अपने सद्‌गुणों के कारण पाई थी। रोमन लोगों में प्राचीन रोमन वीरों के संबंध में जो कहानियाँ प्रचलित हैं, वे संभवतः मन-गढ़ंत ही हैं, पर फिर भी उन कहानियों से यह पता अवश्य चलता है कि रोमन लोग किस प्रकार के सद्‌गुणों के उपासक थे। उन लोगों में ब्रूटस के संबंध में एक दंतकथा प्रचलित है, जो 'रोमन पिता' था। कहते हैं जिस समय ब्रूटस ने स्वयं अपने पुत्र को राजद्रोह के अपराध में प्राण-दंड की आज्ञा दी थी, उस समय उसके चेहरे पर कहीं नाम को भी विकार नहीं दिखाई पड़ा था। एक और सेनापति के संबंध में, जिसका नाम सिनसिनेटस था, प्रसिद्ध है कि जिस समय उसके पास यह आज्ञा पहुँची थी कि तुम चलकर सेना का सेनापतित्व करो, उस समय वह अपने खेत में हल जोत रहा था। जब उसने युद्ध में विजय

प्राप्त कर ली, तब वह फिर पहले की ही तरह आकर खेती-बारी करने लगा। इनके सिवा डेसियाई नाम के दो भाई थे, जो युद्ध-क्षेत्र में सबसे आगे कूदे थे, और सबसे पहले मरे थे; क्योंकि उनके मन में यह दृढ़ विश्वास था कि हमारे इस प्रकार के आत्म-बलिदान से रोम पर अवश्य ही देवतों की कृपा-दृष्टि होगी। चाहे ये कथाएँ सत्य न हों, पर फिर भी इनसे इतना अवश्य सूचित होता है कि जिन गुणों के प्रति इन कथाओं में आदर प्रकट किया गया है, वे वही गुण थे, जो आरंभिक काल के रोमनों ने कार्यतः प्रकट किए थे।

स्वयं रोमनों के ही कथनानुसार उन लोगों में जो गुण थे, वे इस प्रकार हैं—प्रतिभा, जिसमें मनुष्य को आत्म-प्रतिष्ठा का ध्यान रहता है, और वह धीर तथा गंभीर होता है। भक्ति, जिसमें दैवी और मानवी दोनो प्रकार के अधिकारियों या सत्ताओं के प्रति कर्तव्य-पालन का ज्ञान रहता है; और सरलता, जिसमें मनुष्य अपने जीवन के सब कार्यों में सदा सच्चा और ईमानदार रहता है। रोमन नागरिकों में व्यवस्था और मर्यादा-पालन का सदा बहुत अधिक ध्यान रहता था। इस बात की शिक्षा उन लोगों को घर से ही मिलने लगती थी। घर में सारा और पूरा अधिकार पिता का ही रहता था। रोमनों का विश्वास था कि घर में दो कुल-देवता रहते हैं; और इसी विश्वास के कारण उनके घरों में व्यवस्था और मर्यादा-पालन का भाव बहुत अधिक होता था। कोई कभी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता था, और बड़ों की आज्ञा का सदा पालन करता था। जब बालकों को घर में ही आरंभ में इस प्रकार की पूरी-पूरी शिक्षा मिल जाती थी, तब वे बड़े होकर राज्य के प्रति भी अपने कर्तव्यों का उसी प्रकार पालन करते थे, और राज्य के देवतों की मर्यादा का भी वैसा ही ध्यान रखते थे। धीरे-धीरे रोमन लोगों के मन में यह विश्वास बैठ गया

कि ईश्वर ने रोम की सृष्टि अनेक महान् उद्देश्यों की पूर्ति के लिये की है; और इसी से उनके मन में रोमन राष्ट्र की निष्ठा-पूर्ण सेवा करने का भाव उत्पन्न हुआ था। रोम के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करना और उस पर पूरी-पूरी निष्ठा रखना उनकी 'भक्ति' का एक आवश्यक अंग था। इसके साथ ही उन्होंने पूर्ण मात्रा में साहस और अध्यवसाय को भी सम्मिलित कर लिया था। उनके सेनापतियों में बहुत ही थोड़े ऐसे हुए होंगे, जो बहुत अधिक कुशल हों। उनके अवैतनिक नागरिक सैनिक भी प्रायः पराजित हुआ करते थे; पर रोम कभी किसी से पूर्ण रूप से परास्त नहीं हुआ। रोम के आरंभिक इतिहास में पग-पग पर यही देखने में आता है कि उसके निवासियों में सबसे बड़ा गुण यह था कि उनका निश्चय बहुत ही दृढ़ होता और कभी टलता नहीं था।

रोम की इतनी अधिक उन्नति होने का कदाचित् सबसे बढ़कर कारण यह था कि अपने जीते हुए प्रदेशों को अपने हाथ में रखने की उसमें असाधारण शक्ति थी। एक पारस को छोड़कर और किसी दूसरी शक्ति ने तब तक इतने बड़े साम्राज्य पर पूर्ण रूप से शासन करने और सबको मिलाकर एक में रखने की इस प्रकार की योग्यता और सामर्थ्य नहीं दिखलाई थी। इटली के जितने ज़िलों को रोम ने जीता था, वे सब रोम के साथ संधि करके संबद्ध हो गए और उसके मित्र तथा साथी बन गए थे। रोम ने अपने इन मित्रों के साथ अनेक प्रकार की रिआयतें की थीं। इस प्रकार रोम के भाग्य के साथ उन लोगों का घनिष्ठ संबंध हो गया था। रोम इस प्रकार की नीति का प्रयोग प्रायः स्वार्थ की दृष्टि से ही करता था, और कदाचित् रोमन शासन का मूल-सिद्धांत यही था कि शासितों में परस्पर विभेद

अलग करके उन पर शासन करना चाहिए। रोम के मित्र और साथी राष्ट्रों को आपस में एक दूसरे के साथ मित्रता या संधि आदि करने का अधिकार नहीं था। पर यदि रोम का कोई साथी या मित्र राष्ट्र किसी प्रकार बहुत बलवान् या बहुत स्वतंत्र हो जाता था, तो रोम कभी उसके साथ कृतघ्नता का व्यवहार नहीं करता था। साधारणतः उसकी नीति बुद्धिमत्ता और उदारता-पूर्ण ही होती थी। रोम ने जो सफलताएँ प्राप्त की थीं, उनका कारण युद्ध तो था ही, पर साथ-ही-साथ उसकी यह नीति भी थी। यदि वाल्सियनों और सेमनाइटों के मुक़ाबले में उसे सौभाग्यवश लैटिन और हरनिकन लोग मिले थे, यदि हनीबाल के मुक़ाबले में उसे इटैलियन-सरीखे साथी पाने का सौभाग्य था, तो, हम कह सकते हैं, वह इस सौभाग्य का सर्वथा पात्र था।

रोम केवल अपनी राजनीतिक व्यवस्थाओं के आधार पर ही अपने मित्र और साथी राष्ट्रों का विश्वास नहीं करता था। उसने इटली के एक सिरे से दूसरे सिरे तक कई बड़ी-बड़ी सड़कें बनवाई थीं, जो फ़्लेमानियन मार्ग और एप्पियन मार्ग के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन सड़कों पर सैनिक और व्यापारी सभी आ-जा सकते थे। इन सड़कों के मुख्य-मुख्य स्थानों पर रोम ने कई 'उपनिवेश' या ऐसे नगर स्थापित किए थे, जिनमें स्वयं उसकी ओर से बसाए हुए ऐसे ही नागरिक रहते थे, जिन्हें कई विशिष्ट अधिकार प्राप्त थे, और जो राज-भक्ति के सूत्रों द्वारा रोम के साथ पूर्ण रूप से संबद्ध होते थे। ये उपनिवेश सैनिक छावनियों का भी काम देते थे, और रोमन-प्रभाव तथा प्रभुत्व के भी केंद्र होते थे। इस प्रकार जहाँ-जहाँ रोमनों का राज्य स्थापित होता था, वहाँ-वहाँ उसके साथ रोमन-क़ानून और शासन-प्रणाली, रोमन-व्यापार, रोमन-आचार-व्यवहार और रोमन-

वास्तु-कला आदि भी जाती थी। रोम के साथी और अधीनस्थ राष्ट्र भी धीरे-धीरे रोमन-रंग में ही रँग जाते थे; अर्थात् उनकी रहन-सहन भी रोमन-साँचे में ही ढल जाती थी। यह बात हमें विशेष रूप से ध्यान में रखनी चाहिए, क्योंकि यह समस्त रोमन-इतिहास में समान रूप से पाई जाती है। जब रोम ने अपने अधीनस्थ विदेशी प्रांतों के साथ उसी नीति का व्यवहार करना आरंभ किया, जिसका व्यवहार उसने इटली के साथ किया था, तभी से रोमन साम्राज्य की उन्नति का काल आरंभ हुआ था। रोम का सबसे बड़ा काम यही हुआ था कि उसने पहलेपहल सारे संसार को यह दिखला दिया कि किस प्रकार एक बहुत बड़े और संयुक्त साम्राज्य पर अधिकार रक्खा जा सकता तथा किस प्रकार उस पर शासन किया जा सकता है। इस विषय में रोम ने सबसे पहला काम यह किया था कि समस्त इटली को अपने अधिकार में करके एक में संयुक्त किया था, और उस समस्त प्रायद्वीप को एक रोमन देश के रूप में परिणत कर दिया था।

---

२. रोमन-प्रजातंत्र

आरंभिक काल में रोम में राजों का शासन था, जिनकी सहायता के लिये एक कौंसिल या सिनेट होती थी। इस कौंसिल के सदस्य अच्छे वंश के कुलीन लोग हुआ करते थे, जो पेट्रीशियन कहलाते थे। इसके अतिरिक्त और सब नागरिक प्लेब या प्लीबियन कहलाते थे। बस, रोमन राष्ट्र में यही दो प्रकार के लोग होते थे। कुछ विशिष्ट कार्यों के लिये ये दोनो ही प्रकार के लोग एक बड़ी सभा में एकत्र होते थे, जो एसेंबली कहलाती थी, और जिसका सभापति स्वयं राजा हुआ करता था। समस्त वास्तविक शक्ति राजा और सिनेट के हाथ में हुआ करती थी।

पर जब इट्रुस्कन सरदारों को रोमनों ने अपने देश से भगा दिया, तब उन लोगों ने निश्चित किया कि अब रोम में राजों का राज्य नहीं रहेगा। उन लोगों ने अपना एक प्रजातंत्र स्थापित किया, और राजा के स्थान पर दो प्रधान मजिस्ट्रेट रक्खे, जो कौंसिल कहलाते थे, और जिनका निर्वाचन एसेंबली में होता था। ये मजिस्ट्रेट केवल एक वर्ष तक अपने पद पर रहने पाते थे, इनका दुबारा निर्वाचन नहीं हो सकता था। इन्हीं कांसलों को राज्य के धार्मिक, सैनिक तथा आंतरिक सब प्रकार के कार्यों के संचालन का पूरा-पूरा अधिकार होता था। इनके अधिकारों पर केवल दो प्रतिबंध होते थे— एक तो यह कि हरएक कांसल दूसरे कांसल की दी हुई आज्ञा रोक सकता था, और दूसरे यह माना जाता था कि वे सब कार्य सिनेट से परामर्श लेकर करेंगे। एसेंबली केवल मजिस्ट्रेटों का चुनाव ही कर सकती थी, इसके अतिरिक्त उसे और बहुत ही थोड़े अधिकार प्राप्त थे।

कुछ दिनों बाद जब कांसलों का काम बहुत बढ़ गया, तब उनके कुछ विशिष्ट विभागों की देख-रेख करने के लिये छोटे दरजे के कुछ और मजिस्ट्रेटों की नियुक्ति की भी आवश्यकता हुई। ये लोग प्राएटर्स कहलाते थे। (पहले कांसल लोग ही प्राएटर्स कहलाते थे, पर जब छोटे दर्जे के और भी प्राएटर्स नियुक्त होने लगे, तब दोनो मुख्य प्राएटरों का नाम कांसल पड़ गया, और नए छोटे मजिस्ट्रेट प्राएटर ही कहलाते रहे।) ये प्राएटर लोग न्यायालयों में बैठकर मुक़दमे सुनते, राजकोश की व्यवस्था करते और नगर के कामों, नलों और गलियों आदि का प्रबंध करते थे। ज्यों-ज्यों रोम-नगर का विस्तार बढ़ने लगा, त्यों-त्यों इन पदाधिकारियों की संख्या भी बढ़ने लगी। पर इन सबका निर्वाचन एसेंबली में ही, केवल एक वर्ष के लिये, होता था।

पहले केवल पेट्रीशियन या कुलीन लोग ही कांसल हो सकते थे, और कोई कुलीन किसी प्लीबियन या साधारण आदमी के यहाँ शादी-ब्याह नहीं कर सकता था। पर नगर-निवासियों में बहुत अधिक संख्या इसी प्रकार के साधारण आदमियों की थी, और फिर, आवश्यकता पड़ने पर, प्रत्येक साधारण मनुष्य को सेना में काम करना पड़ता था, इसलिये जनसाधारण इस प्रकार के भेदों का विरोध करने लगे, और कहने लगे कि हमारी मर्यादा भी प्रायः कुलीनों के समान ही मानी जानी चाहिए। कुलीन लोग जनसाधारण की इस माँग का बहुत दिनों तक घोर विरोध करते रहे। धीरे-धीरे जनसाधारण की जीत होती गई, और कुलीनों ने विवश होकर जनसाधारण को बहुत-से नए अधिकार दिए। उनमें से कुछ का यहाँ वर्णन किया जाता है।—

(१) ई० पू० ४९४ में जनसाधारण में से दो विशिष्ट मजिस्ट्रेट नियुक्त किए गए, जिनका निर्वाचन जनसाधारण ने

ही किया था। इन मजिस्ट्रेटों को यह अधिकार था कि आवश्यकता पड़ने पर जनसाधारण को बुलाकर उनकी सभाएँ किया करें। ये लोग नए क़ानूनों के लिये प्रस्ताव तो नहीं कर सकते थे, पर यदि कोई दूसरा मजिस्ट्रेट काम करना चाहता या किसी नए क़ानून के लिये प्रस्ताव करता, तो ये लोग उसे रोक अवश्य सकते थे। यदि नगर में किसी साधारण मनुष्य के प्रति कोई अत्याचार आदि होता, तो ये लोग उसे भी रोक सकते थे। इनका पद 'पवित्र' या 'अवध्य' घोषित कर दिया गया था। अर्थात् यह बात खुले आम मान ली गई थी कि जब तक ये मजिस्ट्रेट अपने पद पर रहें, तब तक इन लोगों पर हाथ छोड़ना धार्मिक दृष्टि से पाप है। धीरे-धीरे इन मजिस्ट्रेटों का महत्त्व बढ़ता गया। यहाँ तक कि ई० पू० २८७ में इस आशय का एक क़ानून बन गया कि जनसाधारण की पर्सेंबली जो कुछ निर्णय करे, वे निर्णय भी उन्हीं क़ानूनों के समान माने जायँ, जो समस्त जनता की पूरी पर्सेंबली के बनाए हुए होते हैं।

(२) आरंभिक काल में रोम के क़ानून लिखे नहीं जाते थे, इसीलिये कोई निश्चित रूप से यह नहीं कह सकता था कि अमुक क़ानून का स्वरूप यह है, अथवा उसमें ये-ये बातें हैं। इसका परिणाम यह होता था कि कुलीन लोग जनता के इस अज्ञान का उपयोग स्वयं अपने लाभ के लिये किया करते थे, और उनका प्रयोग जनसाधारण के विरुद्ध भी हो जाया करता था। पर ई० पू० ४५० के लगभग रोमन-क़ानूनों का पहलेपहल लिखित संग्रह प्रस्तुत किया गया, जो इतिहास में 'बारह कोष्ठक' (Twelve Tables) के नाम से प्रसिद्ध है। कुछ ही दिनों बाद कुलीनों और जनसाधारण में विवाह-संबंध भी होने लगा।

(३) ई० पू० ३६७ में यह निश्चित हुआ कि जनसाधारण में

से तो कुछ लोग कांसल हो ही सकते हैं, साथ ही जनसाधारण का एक आदमी कांसल के पद पर अवश्य ही नियुक्त होना चाहिए।

उच्च और निम्न दोनो वर्गों में जो अंतर थे, वे इस प्रकार धीरे-धीरे दूर हो गए। जो राजनीतिक सुभीते अब तक केवल कुलीनों को प्राप्त थे, वे जनसाधारण को भी प्राप्त हो गए। फिर सिद्धांततः यही माना जाता था कि नागरिकों की एसेंबली का ही सब अधिकार है, और सब क़ानूनों का एसेंबली द्वारा स्वीकृत होना आवश्यक है। इसलिये, हम कह सकते हैं, रोम में उस समय तक पूर्ण रूप से लोकतंत्र स्थापित हो गया था। पर यह बात केवल सिद्धांत-रूप में ही मानी जाती थी, कार्य-रूप में निम्न-लिखित कारणों से परिणत नहीं होती थी। रोम को बहुत दिनों तक बराबर सब तरफ़ युद्ध ही करने पड़ते थे। वहाँ के मजिस्ट्रेट लोग अपने पद पर केवल एक वर्ष के लिये चुने जाते थे, और कांसलों को अपना अधिकांश समय युद्ध-क्षेत्र में, सेनाओं का संचालन करने में, ही बिताना पड़ता था। सिनेट में अधिकांश वही लोग हुआ करते थे, जो मजिस्ट्रेट रह चुके होते थे, और सिनेट सदा अपना काम करती रहती थी। इस प्रकार रोम में सिनेट एक ऐसी संस्था थी, जिसके पास समस्त अनुभव-जन्य ज्ञान रक्षित रहता था। जब कभी कोई विपत्ति आ खड़ी होती थी, तब लोग यही समझते थे कि सिनेट ही हमें इससे बचने का मार्ग बतलावेगी। इसीलिये मजिस्ट्रेटों और एसेंबली का महत्त्व तो धीरे-धीरे घटने लगा, और सिनेट का प्रभाव बढ़ने लगा। फिर प्यूनिक युद्धों के समय सिनेट ने ऐसे अच्छे ढंग से और उत्साह-पूर्वक काम किया था कि उसे देखते हुए, हम कह सकते हैं, उसने जो अधिकार और महत्त्व प्राप्त कर लिया था, उसकी वह पूर्ण रूप से पात्र और अधिकारिणी थी।

पर जब बड़े-बड़े युद्ध समाप्त हो गए, तब कुछ ऐसे परिवर्तन होने

लगे, जो रोमन जनता के लिये हानिकर थे, और जिनसे उनकी स्थिति पहले की अपेक्षा कुछ गिरने लगी थी।

(१) रोम की शक्ति बराबर बढ़ती जा रही थी, रोमन लोग बराबर युद्ध में विजयी होते जाते थे, इससे रोम-नगर में बाहर से बहुत अधिक नई संपत्ति आकर भर गई थी। अब व्यापारी लोग बहुत अधिक धनवान् हो गए थे। वे भी राज्य के प्रतिष्ठित कामों में सम्मिलित होना चाहते थे। पर सिनेटर लोग किसी प्रकार अपना पद और अधिकार छोड़ना नहीं चाहते थे। जहाँ तक हो सकता था, न तो नए आदमियों को ऊँचे पदों पर पहुँचने देते थे, न सिनेट में ही आने देते थे। धनवानों और जनसाधारण के झगड़ों का तो अंत हो गया था, पर उसका स्थान उस ईर्ष्या ने ग्रहण कर लिया था, जो ऊँचे घराने के सिनेटरों और धनवान् व्यापारियों में उत्पन्न हो गई थी। इस ईर्ष्या के कारण सिनेट में बहुत-सी नई-नई विपत्तियाँ खड़ी होने लगीं।

(२) साधारण जनता में अब उसके वे पुराने गुण नहीं रह गए थे। रोम को जो बराबर बहुत दिनों तक लड़ाइयाँ लड़नी पड़ी थीं, उनके कारण परिवारों के बड़े लोगों को प्रायः बरसों तक युद्ध-क्षेत्र में रहना पड़ता था, और उनमें से हज़ारों आदमी युद्धों में मारे भी गए थे। फिर जब रोम ने नए-नए प्रांत हस्तगत किए, तब उनमें स्थायी रूप से सेनाएँ रखना ज़रूरी हो गया, और बहुत-से लोग पेशेवर सिपाही बन गए। परिणाम यह हुआ कि गृह-जीवन शिथिल होने लगा। अब बालकों को पहले की तरह घर में अच्छी शिक्षा नहीं मिल सकती थी। देहातों में बड़े-बड़े खेत ख़ाली रहने लगे, क्योंकि उन्हें जोतने-बोने के लिये काफ़ी आदमी नहीं रह गए थे। धनवानों ने बहुत-सी ज़मीनें ख़रीद लीं, और उन्हें चरागाह बनवा दिया। युद्धों में जो हज़ारों क़ैदी

पकड़कर इटली लाए जाते थे, वे ही लोग गुलामों की तरह इन चरागाहों में काम करते थे। रोमन लोगों पर इन गुलामों का बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ा। एक ओर तो रोमन लोग बिलकुल अकर्मण्य हो चले, क्योंकि वे अपना सब काम-धंधा गुलामों पर छोड़ देते थे; और दूसरी ओर गुलाम लोग झूठ बोलने और चोरी करने लगे। देहातों में अब कोई ख़ास काम नहीं रह गया था, इसलिये ग़रीब किसान और मज़दूर, जिन्हें कुछ काम नहीं मिलता था, रोम-नगर में आकर रहने लगे थे। ऐसे किसानों और मज़दूरों की संख्या रोम में बहुत बढ़ गई थी। पर रोम में इतने अधिक आदमियों को काम नहीं मिल सकता था, क्योंकि वहाँ बहुत ही थोड़े आदमियों का काम था। इसलिये रोम में अधिकतर ऐसे ही लोगों का निवास हो गया, जिनके पास कुछ काम-धंधा नहीं था। ऐसे लोग कहीं चोरी करते थे, कहीं डाका डालते और कहीं भीख माँगते थे। एसेंबली के उम्मेदवारों से भी इन लोगों को कुछ आमदनी हो जाया करती थी, क्योंकि जो उम्मेदवार अधिक धन देता था, उसी को ये लोग अपना वोट देते थे। फिर रोमनों की एसेंबली में भी अधिकतर ऐसे ही लोग पहुँचते थे। रोम में कभी उस तरह की प्रतिनिधिसत्तात्मक शासन-प्रणाली प्रचलित नहीं हुई, जैसी आजकल इँगलैंड अथवा दूसरे बहुत-से देशों में प्रचलित है। जो नागरिक एसेंबली में उपस्थित होते थे, उन्हीं के वोट गिने जाते थे, और एसेंबली में उपस्थित होनेवाले साधारणतः इसी वर्ग के लोग हुआ करते थे। बस, ऐसे ही लोग उस राज्य के क़ानून बनाने में वोट देते थे, जो सारे संसार का स्वामी हो रहा था।

(३) जब नए-नए प्रांतों पर रोम का अधिकार होने लगा, तब उनके शासन की भी आवश्यकता पड़ी। पर रोम में मजिस्ट्रेटों के वार्षिक चुनाव की प्रथा प्रचलित थी, और रोम अपने प्रांतों में भी

यही प्रथा प्रचलित करने का प्रयत्न करता था। अब धीरे-धीरे यह भी एक नियम-सा हो गया कि रोम में जो लोग एक बार प्राएटर या कांसल रह चुके होते थे, वे ही लोग किसी प्रांत में एक वर्ष तक शासन करने के लिये भेज दिए जाते थे। प्रांतों पर शासन करने का यह समय, विशेष वोट के आधार पर, कुछ दिनों के लिये बढ़ भी सकता था; और प्रायः दो-दो या तीन-तीन वर्षों के लिये बढ़ाया भी जाता था, पर साधारणतः शासक लोग एक ही वर्ष तक शासन करने के लिये भेजे जाते थे। इसका परिणाम यही होता था कि शासकों को अपने अधीनस्थ प्रांतों के संबंध की भीतरी बातें जानने का पूरा-पूरा अवसर ही नहीं मिलता था। फिर जहाँ तक हो सकता था, वे लोग प्रांतों के अधिकारियों को दबाकर उनसे ख़ूब धन वसूल करते और अमीर बनने का प्रयत्न करते थे। ऐसी अवस्था में इन लोगों के मन में यह भी विश्वास रहता था कि यदि घर लौटने पर हम पर मुक़दमा चलाया जायगा, तो हम अपने जजों को इसी धन में से रिश्वत देकर अपने अनुकूल कर सकेंगे, और दंड से बच सकेंगे। रोम की क़ानूनी अदालतों में रिश्वतख़ोरी बहुत बढ़ गई थी। सिनेट के जो सदस्य ज्यूरी बनकर अदालतों में बैठते थे, वे भी रिश्वत के धन से अपना घर भरना चाहते थे। प्रांतों से राजकर वसूल करने का अधिकार रोम के धनवानों के हाथ नीलाम करके बेच दिया जाता था। रोम के वे धनवान् पहले तो नीलाम के समय राज्य को बड़ी-बड़ी रक़में दे दिया करते थे, और तब जहाँ तक अधिक हो सकता था या जहाँ तक प्रांतों के शासक उन्हें आज्ञा देते थे, वहाँ तक वे प्रांतों से अधिक धन वसूल किया करते थे। प्रांतों के शासकों को वे लोग रिश्वत देकर अपनी ओर मिला लिया करते थे, और तब प्रजा से मनमानी रक़म वसूल कर चलते थे।

उन दिनों शायद ही कोई ऐसा प्रांतीय शासक या गवर्नर रहा हो, जो ईमानदारी से अपना काम करता हो। उन दिनों रोम के अधीनस्थ प्रांतों की बहुत ही दुर्दशा थी। वे विद्रोह भी नहीं कर सकते थे, क्योंकि रोम बहुत बलवान् था। हाँ, उनके तबाह होने के अवश्य ही बहुत-से अवसर थे।

सच तो यह है कि प्राचीन रोमन शासन-प्रणाली, जिसमें अधिकारी और शासक लोग प्रतिवर्ष चुनकर शासन करने के लिये प्रांतों में भेजे जाया करते थे, एक ऐसे बड़े साम्राज्य के शासन के लिये बहुत ही अनुपयुक्त थी, जिसके प्रांत बहुत दूर-दूर तक और समुद्र-पार भी थे। इसके अतिरिक्त सिनेट के सदस्यों और जनता के अनेक पुराने गुण नष्ट हो चुके थे, इससे शासन में और भी बहुत-सी ख़राबियाँ होती थीं। अब रोम के अधिकार में बहुत-से नए देश आ गए थे। ऐसे देशों से युक्त विस्तृत साम्राज्य के लिये पुरानी रोमन प्रजातंत्र-शासन-प्रणाली कभी काम नहीं दे सकती थी, और न वह इतने बड़े साम्राज्य के शासन का भार ही सह सकती थी। इसके बाद के रोमन प्रजातंत्र के एक सौ वर्षों के इतिहास से यह बात स्पष्ट रूप से सिद्ध हो जाती है कि उस प्रजातंत्र-शासन-प्रणाली में केवल छोटे-मोटे सुधार और परिवर्तन करने से कभी काम नहीं चल सकता था। रोम, इटली तथा उनके अधीनस्थ प्रांतों के उत्तम शासन के लिये यह बात परम आवश्यक थी कि शासन की एक बिलकुल नई प्रणाली की सृष्टि की जाय।

शासन-सुधार में सबसे पहले दो आदमियों ने प्रयत्न किया था, और ये दोनो आदमी आपस में भाई थे। इनमें से एक का नाम टाइबेरियस और दूसरे का गेयसग्रेकस था। ये दोनो ही कुलीन, शिक्षित, सदाचारी और उदार विचारवाले थे। इन दोनो भाइयों के प्रयत्न अलग-अलग हुए थे, और दोनो के बीच प्रायः

दस वर्ष का अंतर पड़ता है। इसके अतिरिक्त इन दोनो के उद्देश्य भी बिलकुल एक-से नहीं थे, बल्कि उनमें बहुत कुछ अंतर था। पर इसमें संदेह नहीं कि ये दोनो ही सुधारक थे, और इनके भाग्य में भी वही भोगना बदा था, जो प्रायः सुधारकों को भोगना पड़ता है। टाइबेरियस यह चाहता था कि नगर की जो आबादी बहुत बढ़ गई है, वह कुछ कम हो जाय, और जो लोग खेती-बारी छोड़कर नगर में आ बसे हैं, वे फिर लौटकर गाँवों में चले जायँ, और खेती-बारी करने लगें। बहुत-सी ज़मीनें ऐसी थीं, जो 'सार्वजनिक भूमि' कही जा सकती थीं, अर्थात् जो वास्तव में सरकारी थीं। और ऐसी ज़मीनों पर बहुत-से धनवानों ने बिना किसी कारण के यों ही अपना अधिकार कर रक्खा था। टाइबेरियस चाहता था, उन अमीरों से यह ज़मीन छीन ली जाय, और रोम तथा इटली के ऐसे निवासियों को खेती-बारी करने के लिये दे दी जाय, जो बहुत ग़रीब हैं, और जिनकी जीविका का कोई ठिकाना नहीं है। गेयस का मुख्य उद्देश्य यह था कि रोमन लोगों को नागरिकता के जो अधिकार प्राप्त हैं, वे ही अधिकार इटली की और प्रजा को भी दे दिए जायँ, जिसकी सहायता से रोम ने बड़े-बड़े युद्धों में सफलता प्राप्त की है। वह यह भी चाहता था कि सिनेट के अधिकार कुछ कम कर दिए जायँ, और धनी व्यापारियों को भी अदालतों में ज्यूरी के तौर पर बैठने का अधिकार दिया जाय। इसके ये प्रस्ताव थे तो बहुत बुद्धिमत्ता-पूर्ण, और इनका उद्देश्य भी बहुत अच्छा था, पर फिर भी ये बहुत बुरी तरह से विफल हुए थे। धनवानों ने जो ज़मीनें अपने हाथ में कर रक्खी थीं, उन्हें वे किसी प्रकार छोड़ना नहीं चाहते थे, इसलिये उन्होंने इस प्रस्ताव का विरोध किया। उधर सिनेट भी अपने अधिकार कम नहीं होने देना चाहती थी; और न रोम की प्रजा ही इस

बात के लिये सहमत होती थी कि नागरिकता के जो अधिकार स्वयं उसे प्राप्त थे, वे इटली के अन्यान्य निवासियों को भी दिए जायँ। परिणाम यह हुआ कि ये दोनो ही भाई दंगों में मार डाले गए। टाइबेरियस की हत्या तो ई० पू० १३३ में हुई, और गेयस ई० पू० १२१ में मार डाला गया। इन दोनो भाइयों के समस्त प्रयत्नों के केवल दो ही परिणाम हुए—एक तो यह कि सिनेट के सदस्यों और धनी व्यापारियों में परस्पर ईर्ष्या और द्वेष उत्पन्न हो गया। दूसरा फल यह हुआ कि उन्होंने एक ऐसा निश्चय करा लिया कि रोम के दरिद्र निवासियों के हाथ सस्ते दाम पर अनाज बेचा जाय; और इस प्रकार उन्होंने जनता को अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न किया था। इन दोनो के निहत हो जाने के उपरांत भी दरिद्रों को सस्ते दाम पर अनाज मिलता रहा; बल्कि आगे चलकर तो मुफ़्त में ही मिलने लगा। पर इसका परिणाम भी उल्टा ही हुआ। अब रोम के बहुत-से निवासी और भी अकर्मण्य तथा उद्दंड हो गए, क्योंकि अब उन्हें कुछ काम-धंधा नहीं करना पड़ता था, और खाने को मुफ़्त में मिलता था। इटली की प्रजा को भी अंत में नागरिकता के समान अधिकार दिए गए। पर कब? जब ई० पू० ९० में इसके लिये एक गृह-युद्ध हो गया, तब। उस गृह-युद्ध से सिनेट के सदस्य और रोम की जनता इतनी अधिक भयभीत हो गई थी कि इस संबंध में इटैलियन प्रजा की जिस माँग का वे सब लोग इतने दिनों से अनादर और उपेक्षा करते आ रहे थे, और जिसे पूरा करने से वे बराबर इनकार करते रहे थे, उसकी वह माँग उन लोगों ने गृह-युद्ध के कारण चटपट स्वीकृत कर ली, और उन्हें भी अपने ही समान नागरिकता के अधिकार दे दिए।

पर ग्रेकस की हत्या का सबसे बुरा प्रभाव यह हुआ कि सब लोग समझ गए कि इन दोनो भाइयों को विफलता क्यों हुई थी।

इन लोगों की विफलता का मूल-कारण यही था कि ये लोग एसेंबली पर ही निर्भर रहते थे, और इनकी सहायता के लिये इनके पास कोई सेना नहीं थी। अतः अब सब लोगों की समझ में यह बात स्पष्ट रूप से आ गई कि यदि कोई काम हो सकता है, तो केवल सैनिक शक्ति की सहायता से। इसके बाद ही ऐसे लोग निकलने लगे, जो इस शिक्षा से लाभ उठाने के लिये तैयार थे, और जिन्होंने अपने उद्देश्यों की सिद्धि के लिये अपने पास सेनाएँ रखना आरंभ कर दिया।

इस प्रकार काम करनेवालों में जो पहला आदमी हुआ, उसका नाम मेरियस था। एक तो न्यूमीडियन लोगों के साथ यूनानियों को बहुत दिनों तक भीषण युद्ध करना पड़ा था (ई० पू० ११२ से १०६ तक), और दूसरे उत्तर की ओर से किंबी और ट्यूटन नाम की दो जर्मन जातियाँ चढ़ाई कर रही थीं। इन जातियों से युद्ध करने के लिये रोमनों ने चार बार बड़ी सेनाएँ भेजी थीं, पर चारो बार वे सेनाएँ परास्त हो गई थीं (ई० पू० ११२ से १०५ तक)। इन दोनो युद्धों के कारण जिस समय सारे रोम में भीषण आतंक छाया हुआ था, उस समय मेरियस जनता का बहुत ही प्रेम-पात्र हो रहा था। जनता ने पहले प्रसन्न होकर उसे कांसल चुना, और तब उसके कार्यों से वह इतनी प्रसन्न हुई कि वह लगातार छ बार फिर कांसल-पद के लिये चुना गया। उसने न्यूमीडियन युद्ध का भी अंत कर दिया, और जर्मन बर्बरों को भी ई० पू० १०२ और १०१ में दो स्थानों पर बुरी तरह परास्त किया। इन बातों का परिणाम यह हुआ कि रोम में सारी शक्ति अब उसी के हाथ में चली गई। यहाँ तक कि अब सेना भी यह समझने लग गई कि हमारा मालिक मेरियस है, और सिनेट का हम पर कोई अधिकार नहीं है। अपना वेतन और पेंशन आदि भी वह उसी

से माँगती और पाती थी, और सदा सब कामों में इसकी सहायता करने के लिये तैयार रहती थी। मेरियस ने अपनी इस शक्ति और अधिकार का उपयोग यह किया कि एक तो अपने मित्रों की सब प्रकार से सहायता की; और दूसरे सिनेट के अधिकारों पर आक्रमण किया। अब रोम में दंगों, हत्याओं और अराजकता की वृद्धि होने लगी।

मेरियस और उसके दलवालों का (स्वयं मेरियस की ई० पू० ८६ में मृत्यु हो गई थी।) एक दूसरा सैनिक नेता खड़ा हो गया, जिसका नाम सिल्ला था। इसे एक बार एशिया में एक युद्ध करने के लिये विशेष रूप से सेनापति नियुक्त किया गया था, और इसी कारण इसकी कीर्ति तथा प्रसिद्धि बहुत बढ़ गई थी। ई० पू० ८३ में सिल्ला अपनी सेना लेकर इटली पहुँचा। उस समय वह अपने मन में दृढ़ निश्चय कर चुका था कि जैसे होगा, मैं मेरियस के दल का पूरी तरह से नाश करके ही छोड़ूँगा। सिल्ला के इस आक्रमण के बाद रोम में जो-जो भीषण घटनाएँ हुईं, उन्हें रोमवाले फिर कभी भूल नहीं सके। पाँच हज़ार आदमियों की एक साथ ही हत्या कर डाली गई थी, और इससे कहीं ज़्यादा आदमी रोम छोड़कर भाग गए थे। इन सब लोगों की सारी जायदादें ज़ब्त कर ली गई थीं। जिस समय मेरियस के हाथ में अधिकार और शक्ति थी, उस समय वह अपने शत्रुओं पर जंगली जानवर की तरह टूटता था। पर सिल्ला उसकी अपेक्षा कुछ मीठा और चालाक था, और इसीलिये अधिक भीषण भी था। उसने जो हत्याएँ कराई थीं, उनका रूप और भी अधिक भीषण था। इसके उपरांत उसने सिनेट की शक्ति और अधिकार बढ़ानेवाले क़ानून बनाए, और तब वह चुपचाप तथा शांति-पूर्वक एकांतवास करने लगा। इसके एक वर्ष बाद ही वह मर गया।

सिल्ला की मृत्यु होते ही उसकी की हुई अनेक व्यवस्थाओं में बहुत बड़ा उलट-फेर हो गया। वर्षों तक अव्यवस्था बनी रही, और कोई निश्चित या ठीक प्रबंध नहीं होने पाया। कुछ लोगों ने, जिनमें सुप्रसिद्ध व्याख्याता सिसरो भी था, इस बात का बहुत कुछ प्रयत्न किया कि सिनेट के सदस्यों, धनी व्यापारियों और इटली के निवासियों में परस्पर सद्‌भाव उत्पन्न हो, और इस प्रकार फिर से सुंदर तथा सुव्यवस्थित शासन स्थापित हो। पर सिनेट के सदस्य बहुत ही संकीर्ण-हृदय और स्वार्थी थे, और धनी व्यापारी भी अपने ईर्ष्या-भाव के कारण इस प्रकार उनके साथ सम्मिलित होना नहीं चाहते थे। उधर रोम के सभी अशिक्षित और निम्न कोटि के निवासी एसेंबली में भरे रहते थे, और इटलीवालों के हाथ में किसी प्रकार की शक्ति नहीं थी, इसलिये इन सब प्रयत्नों का कुछ भी शुभ फल न हो सका। इसके अतिरिक्त मेरियस और सिल्ला ने लोगों के सामने यह उदाहरण भी उपस्थित कर दिया था कि सैनिक अधिकारी और नेता किस प्रकार और कितनी अधिक शक्ति अपने हाथ में कर सकते हैं, इसलिये अब लोग जल्दी-जल्दी इन्हीं दोनो उदाहरणों का अनुकरण करने लगे।

अपनी-अपनी सेनाओं की सहायता से उच्च अधिकार प्राप्त करनेवाली दूसरी जोड़ी पांपी और सीजर की निकली। पांपी ने पूर्वीय रण-क्षेत्रों में (ई० पू० ६७-६२) सेनाओं का संचालन करके प्रसिद्धि प्राप्त की थी। पर उसकी योग्यताएँ तथा गुण बहुत कुछ परिमित थे। न तो वह स्वयं किसी विषय में शीघ्र और उचित निर्णय ही कर सकता था, और न अपने पद, मर्यादा तथा प्रसिद्धि का ठीक-ठीक उपयोग करना ही जानता था, जिसमें लोग उसका सम्मान करें या उससे डरें। पांपी के कुछ दिनों बाद सीजर की ख्याति और महत्त्व बढ़ा। संसार में आज तक जितने लोग

डेरिएस (दारा) की यूनानी चढ़ाई की तैयारियाँ
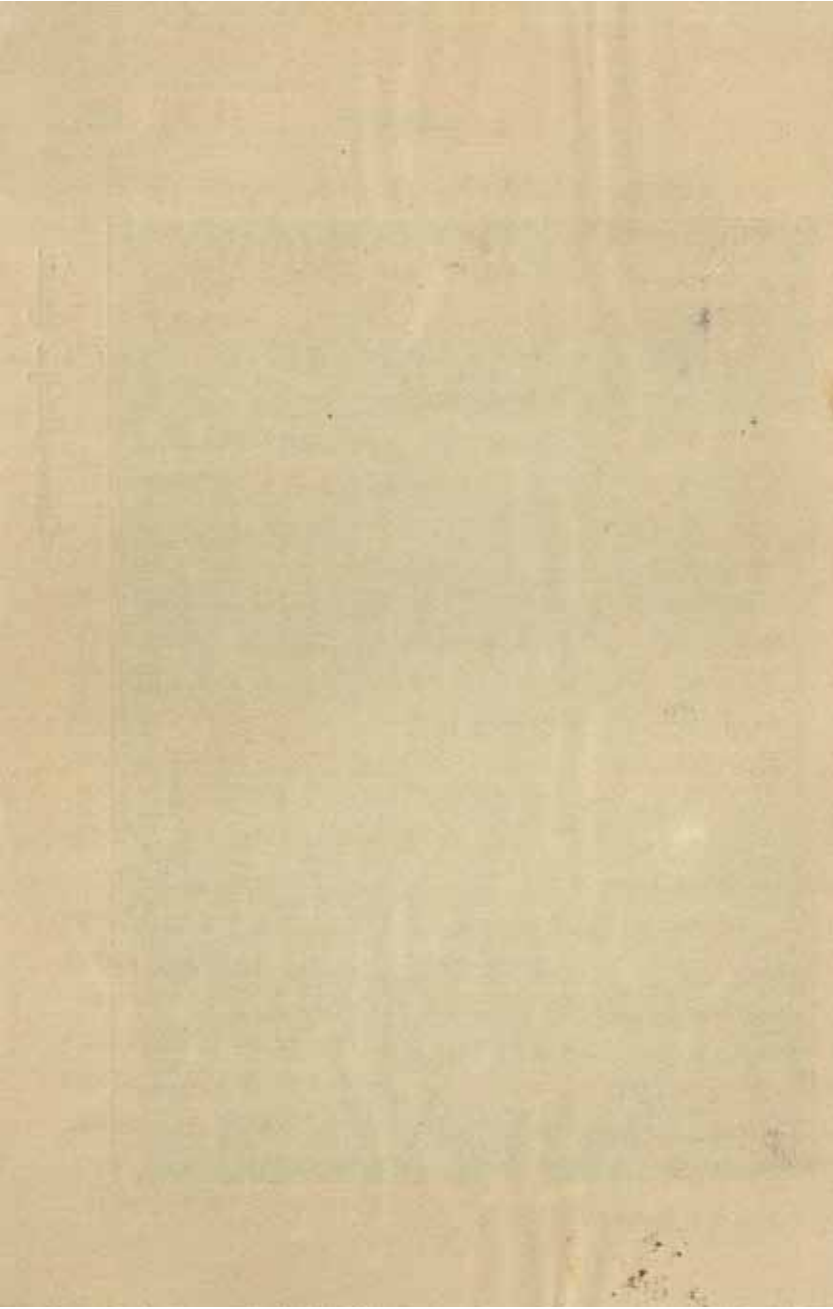
हुए हैं, उनमें सीज़र शायद सबसे बढ़कर विलक्षण और विचक्षण पुरुष था। युवावस्था में उसने अपना समय बहुत ही उद्दंडता-पूर्वक और वाहियात कामों में बिताया था। पर जब उसने महत्त्व प्राप्त करना प्रारंभ किया, तब सब लोगों ने अच्छी तरह समझ लिया कि वह एक बहुत योग्य सेनापति, एक अच्छा लेखक, प्रत्येक बात का तथ्य और वास्तविक रूप समझनेवाला, सदुद्देश्य रखनेवाला और साहसी पुरुष है। उसका व्यक्तित्व बहुत मोहक और आकर्षक था। वह उपयुक्त समय की प्रतीक्षा करना जानता था, और भली भाँति समझता था कि मेरे अमुक कार्य की सिद्धि के लिये अमुक समय उपयुक्त होगा। और, सबसे बढ़कर बात यह थी कि राजनीतिक विषयों में उसने अपनी असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया था। समस्त रोमनों में कदाचित् वही एक ऐसा आदमी था, जो वस्तुतः यह समझता था कि किन कारणों से प्रजातंत्र की दुर्दशा हो रही है, रोमन-संसार को इस समय किन बातों की आवश्यकता है, और किन उपायों से फिर से सुंदर शासन स्थापित किया जा सकता है।

ई० पू० ६३ और ४८ के बीच में पांपी और सीज़र में जो प्रतियोगिता चलती रही, उसकी पेचीली कहानी यहाँ देने की हम आवश्यकता नहीं समझते। पहले तो ये दोनो आपस में साथी और मित्र थे। उस समय सीज़र तो गाल की ओर चला गया (ई० पू० ५८), क्योंकि वह वहाँ का गवर्नर नियुक्त हुआ था, और पांपी रोम में ही रह गया। पर जब सीज़र की ख्याति बढ़ने लगी, और उसकी आकांक्षाएँ स्पष्ट होने लगीं, तब धीरे-धीरे दोनो आदमियों में प्रतियोगिता आरंभ हो गई, जिसका परिणाम यह हुआ कि ई० पू० ४९ में दोनो में गृह-युद्ध छिड़ गया। सीज़र ने बहुत शीघ्र सारे इटली पर अधिकार कर लिया, और पांपी यूनान में जाकर

सेनाएँ एकत्र करने लगा। उस समय स्पेन में पांपी-दल के कुछ सैनिक सरदारों ने उपद्रव खड़ा कर रक्खा था, इसलिये सीजर पहले उनकी तरफ़ बढ़ा। यद्यपि वह युद्ध थोड़े ही समय में समाप्त हो गया था, पर फिर भी उसका रूप भीषण हो गया था। इसके बाद पांपी की ख़बर लेने के लिये सीजर यूनान की तरफ़ बढ़ा। पहले तो दोनो दलों के सैनिकों में लुक-छिपकर छोटी-मोटी लड़ाइयाँ होती रहीं, पर अंत में, ई० पू० ४८ में, दोनो सेनाओं का फ़रसेलस-नामक स्थान पर सामना हो गया। वहाँ पांपी पूर्ण रूप से पराजित हुआ, और भागकर मिस्र चला गया, जहाँ वह मार डाला गया। फिर भी मिस्र, एशिया, यूनान, आफ़्रिका और स्पेन में सीजर के जो थोड़े-से विरोधी बचे रह गए थे, उन्हें दो वर्षों में सीजर ने अपने अधीन कर लिया। इसके बाद (ई० पू० ४५ में) वह लौटकर रोम आया, और समस्त रोमन-संसार का एकमात्र स्वामी हो गया।

इसके बाद जो कुछ हुआ, उसका वर्णन करने से पहले हम संक्षेप में यहाँ यह बतला देना आवश्यक समझते हैं कि इन अनेक सेनापतियों के कार्यों का एक बड़ा परिणाम यह हुआ था कि विदेशों में रोमन-साम्राज्य का विस्तार बहुत बढ़ गया था। इन सभी सैनिक नेताओं ने अपने-अपने समय में प्रसिद्धि प्राप्त करने के लिये अपनी सेनाओं को बहुत कुछ शिक्षित किया था। इसमें उनका उद्देश्य यही रहता था कि हम इन सैनिकों को अपने साथ लेकर रोम पहुँचें, और वहाँ सर्वश्रेष्ठ अधिकार प्राप्त करें। उनके इस प्रकार के कार्यों का फल यह होता था कि रोमन-साम्राज्य में एक-एक करके नए प्रांत सम्मिलित होते जाते थे। मेरियस ने न्यूमीडियन तथा गाल-जातियों पर जो विजय प्राप्त की थी, उसके कारण आफ़्रिका, लाइगुरिया और दक्षिणी गाल में रोमन-राज्य का बहुत कुछ विस्तार हो

गया था। गाल के दक्षिण नारबो-नामक स्थान में, ई० पू० ११८ में, इटली के बाहर रोमनों का पहला उपनिवेश स्थापित हुआ था। गाल में भी वर्षों तक रहकर सीज़र ने इँगलिश चैनेल तथा एट-लांटिक महासागर तक का बाक़ी का भी सारा प्रदेश जीत लिया, और जर्मनी की रहाइन-नदी को रोमन-साम्राज्य की सीमा बनाया। यहाँ तक कि वह ब्रिटेन में भी जा पहुँचा, और वहाँ के दक्षिणी भाग के निवासियों पर भी उसी प्रकार विजयी हुआ। उधर पूर्व में जब ई० पू० १३३ में परगमम का अंतिम राजा मरने लगा, तब वह अपना सारा राज्य रोम को सौंप गया, जिससे रोम ने एशिया में भी अपना एक प्रांत बना लिया। इसके बाद ई० पू० ११४ से ६६ तक रोमन लोग पॉटस के राजा मिथूडेटिज़ और उसके साथी आरमीनिया के राजा टाइग्रनीज़ से लड़ते रहे। मिथूडेटीज़ ने बहुत-सी लड़ाइयाँ जीती थीं, और एक बार सारे एशिया-माइनर का चक्कर लगाया था। सिल्ला, ल्यूकुलस और पांपी, इन तीनो रोमन सेना-पतियों ने बारी-बारी से मिथूडेटीज़ को एशिया-माइनर से निकाल बाहर करने का प्रयत्न किया था। पर फिर भी अंत में वह परास्त हो ही गया, और उसे आत्महत्या करनी पड़ी। फल यह हुआ कि सीरिया, जूडिया, सिलीशिया और बिथीनिया पर रोमनों का अधिकार हो गया। इस प्रकार फ़रात-नदी तक सिकंदर का जितना पूर्वी साम्राज्य था, वह सब रोमनों के हाथ में आ गया। पूर्व में अधिक-से-अधिक यही सीमा थी, जहाँ तक रोमन-साम्राज्य का विस्तार हो सका था। फ़रात-नदी के उस पार पारथिया का बड़ा राज्य था, जिसके साथ आगे चलकर रोमनों को बहुत दिनों तक बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ लड़नी पड़ी थीं।

लेकिन इतनी लड़ाइयाँ और देश जीतने पर भी रोमन प्रजातंत्र की किसी प्रकार रक्षा न हो सकी। जो लड़ाइयाँ और

देश आदि जीते गए थे, वे सेनापतियों और सेनाओं की कृपा से जीते गए थे। उसमें स्वयं रोमन-सरकार की कोई बड़ाई नहीं थी। जिस समय सीज़र ने रोम में एकमात्र शासक का पद ग्रहण किया था, उस समय की परिस्थिति इस प्रकार थी। इटली और उसके साथ-साथ सारे संसार की शांति और सुव्यवस्थित शासन की आवश्यकता थी। पर रोमन प्रजातंत्र इस आवश्यकता की पूर्ति नहीं कर सकता था। सिनेट केवल अपने स्वार्थों की सिद्धि की ही चिंता में रहती थी, और रोमन-जनता किसी प्रकार विश्वास-योग्य नहीं थी। यह एक प्रथा-सी चल गई थी कि सैनिक नेता अपनी-अपनी सेनाएँ लेकर अपनी ही आकांक्षाओं की पूर्ति का प्रयत्न करते रहते थे, और प्रजातंत्र की शक्ति घटाकर स्वयं अपनी शक्ति बढ़ाने की चिंता में रहते थे। यदि सीज़र भी सिल्ला तथा उसी प्रकार के दूसरे सैनिक नेताओं का अनुकरण करता, तो उसका यही परिणाम होता कि अव्यवस्था और लड़ाई-झगड़ा और भी बढ़ जाता, जिससे रोमन-संसार पूर्ण रूप से मिट जाता, सभ्यता के समस्त संचित कोश नष्ट हो जाते, और सारा योरप फिर पहले की तरह जंगली हो जाता। इस प्रकार, हम कह सकते हैं, उस समय संसार का भविष्य उस शक्ति के सदुपयोग पर ही निर्भर था, जो उस समय सीज़र के हाथ में आई हुई थी। यह एक ऐसा बड़ा अवसर था, जब एक आदमी के किए हुए अच्छे या बुरे काम समस्त सभ्य-संसार पर अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकते थे, और इस प्रकार का इससे बड़ा अवसर सीज़र को छोड़कर और किसी के हाथ में नहीं आया था।

---

३. आगस्टन-युग

सीज़र बहुत ही थोड़े दिनों तक शासन कर सका था। वह ई० पू० ४५ के आरंभ में लौटकर इटली आया था, और १५ मार्च ४४ ई० पू० को रोम में कुछ षड्यंत्रकारियों के हाथों मारा गया था। इन षड्यंत्रकारियों में से कुछ लोग सिर्फ़ इसलिये सीज़र से नाराज़ थे कि उसने उन लोगों पर कुछ विशेष कृपाएँ करने से इनकार कर दिया था। पर कुछ लोग ऐसे भी थे, जिनका सीज़र से नाराज़ होना वाजिब भी था, क्योंकि सीज़र का शासन प्रजातंत्र-शासन-प्रणाली के विपरीत होता था, और वे लोग समझते थे कि सीज़र इस साम्राज्य का बादशाह बन बैठना चाहता है। पर इन कुछ ही महीनों में सीज़र को यह दिखलाने का समय मिल गया था कि वह किस प्रकार संसार का शासन करना चाहता था। उसने जो आदर्श उपस्थित किया था, उसका प्रभाव बहुत दिनों तक बना रहा। और जब उसके उत्तराधिकारी आक्टेवियन ने शासनाधिकार अपने हाथ में लिया, तब उसने बहुत-सी बातों में उन्हीं सिद्धांतों के अनुसार कार्य किया, जो सीज़र ने स्थिर किए थे।

सीज़र ने मुख्यतः दो बड़े काम किए थे—एक तो यह कि उसने दिखला दिया था कि मैं एकमात्र शासक बनकर स्वयं अपने व्यक्तिगत अधिकार से ही शासन करना चाहता हूँ। उसने सिनेट से अपने को डिक्टेटर या सर्वाधिकार-प्राप्त शासक नियुक्त करा लिया था। प्राचीन काल में विशेष अवसरों पर जब कोई भारी विपत्ति आती थी, और जब इस बात की आवश्यकता प्रतीत होती थी कि राज्य के समस्त अधिकार एक ही आदमी के हाथ में

रहने चाहिए, तब कोई योग्य और कार्य-कुशल व्यक्ति इस पद पर नियुक्त किया जाता था। सीजर अपने मृत्यु-काल तक डिक्टेटर बना रहा, और उसने स्पष्ट रूप से यह बतला दिया कि मेरी सम्मति में सुव्यवस्थित शासन स्थापित करने के लिये स्थायी रूप से किसी एक ही आदमी का शासन होना आवश्यक है। दूसरा यह कि उसने कभी किसी विशिष्ट दल के स्वार्थों के साधन के लिये अपनी शक्ति और अधिकार का उपयोग नहीं किया। उसका कोई विशिष्ट कृपा-पात्र नहीं था। उसने सिल्ला के ढंग पर काम नहीं किया था, बल्कि समस्त दलों के साथ उचित और उदारता-पूर्ण व्यवहार किया था, सभी प्रकार के लोगों को अपना सहायक बनाने का प्रयत्न किया था। उसने जल तथा स्थल-सेनाओं, राजकोश और न्यायालयों आदि का सुधार किया था, और यह दिखला दिया था कि मैं सब लोगों का समान रूप से कल्याण करना चाहता हूँ। और, इसके लिये सुंदर तथा सुव्यवस्थित शासन स्थापित करना चाहता हूँ।

सीजर की हत्या के कारण लगातार चौदह वर्षों तक सारे देश में अराजकता फैली, और प्रजा आपस में लड़ती-भिड़ती रही। यह युद्ध क्या था, मानो प्रजातंत्र का मरते समय हाथ-पैर पटकना था। उस समय एक सिसरो ही ऐसा योग्य आदमी था, जिसका यह दृढ़ विश्वास था कि अब भी प्रजातंत्र की रक्षा की जा सकती है। उसने सच्ची दृढ़ता और साहस के साथ सिनेट को फिर से वीरता-पूर्वक तथा उचित रूप से काम करने के लिये तैयार करने का प्रयत्न किया था। पर इस प्रयत्न में उसे सफलता नहीं हुई। यदि सच पूछिए, तो सफलता हो भी नहीं सकती थी। इस विफलता का दंड उसे यह भोगना पड़ा कि उसकी हत्या कर डाली गई। इस युद्ध में मुख्य प्रश्न यह था कि रोमन-साम्राज्य पर कौन

शासन करे। इसके लिये दो हक़दार मैदान में थे—एक तो सीजर का एक अफ़सर एंटोनी था और दूसरा आक्टेवियन। पहले तो कुछ समय तक ये दोनो साथ काम करते रहे। उस समय एंटोनी तो मिस्र में रहता और पूर्वी प्रदेशों का शासन करता था, और आक्टेवियन इटली में रहकर पश्चिमी प्रदेशों की देख-भाल करता था। धीरे-धीरे इन दोनो में शत्रुता उत्पन्न हो गई। अंत में, एक्टियम के युद्ध में (ई० पू० ३१), एंटोनी की सेनाएँ आक्टेवियन की सेनाओं के सामने पूर्ण रूप से परास्त हो गईं। उस युद्ध में हारकर एंटोनी ने तो आत्महत्या कर ली, और आक्टेवियन ने, जो इतिहास में आगस्टस के नाम से प्रसिद्ध है, सीजर का काम अपने हाथ में लिया।

आक्टेवियन में उतनी अधिक प्रतिभा नहीं थी, जितनी सीजर में। पर वह सीजर के भतीजे का लड़का और स्वयं सीजर का दत्तक पुत्र था, साथ ही उसमें कुछ ऐसे गुण भी थे, जिनके कारण वह उस काम के लिये बहुत उपयुक्त था, जो उसने हाथ में लिया था। वह शांत स्वभाव का था, और सब काम ख़ूब समझ-बूझकर करता था। वह अपने विचारों और मनोभावों पर पूरा-पूरा अधिकार रखता था। वह कभी ऐसे उद्दंडता-पूर्ण कामों में हाथ नहीं लगाता था, जिनका होना असंभव या दुष्कर होता था। वह कभी केवल ऊपरी बातों या दिखावे पर नहीं भूलता था। वह कभी अपने सैनिक बल का प्रदर्शन नहीं करना चाहता था। और, अच्छी तरह समझता था कि इस समय संसार को सबसे अधिक आवश्यकता शांति और सुव्यवस्था की है। वह सब काम बहुत ही सावधानी और समझदारी के साथ करता था। अपने उद्देश्यों की सिद्धि बहुत शांति-पूर्वक करता था, केवल ऊपरी तड़क-भड़क से अपना काम नहीं निकालना चाहता था। उसके विचार बहुत ही स्पष्ट और

व्यवस्थित होते थे। वह अपना कोई काम अवसर या संयोग के भरोसे नहीं छोड़ता था, और न कोई काम कभी अधूरा ही छोड़ता था।

आगस्टस ने अपने इन सब गुणों का उपयोग अपने साम्राज्य के लिये एक संतोष-जनक शासन-प्रणाली का निर्माण करने में किया था। उसने अपना यह काम बहुत अच्छी तरह किया। इसका एक बड़ा प्रमाण यह है कि उसने जो प्रणाली चलाई थी, वह सैकड़ों वर्षों तक प्रचलित रही। उसे सौभाग्य-वश दो ऐसे प्रधान मंत्री भी मिल गए थे, जो बहुत योग्य थे। उनमें से एक का नाम एग्रिप्पा और दूसरे का मिसीनस था। दोनो में ही बहुत उच्च श्रेणी के गुण थे। विशेषतः सैनिक कार्यों में एग्रिप्पा और राजनीतिक कार्यों में मिसीनस बहुत ही कुशल था। दोनो ने अपने स्वामी की सेवा बहुत निष्ठा और भक्ति-पूर्वक की थी।

अब हम संक्षेप में यह बतलाने का प्रयत्न करेंगे कि आगस्टस ने कौन-कौन-से मुख्य कार्य किए थे। एंकाइरा-नामक स्थान पर (जो आजकल एंगोरा कहलाता है) एक ऐसा मंदिर मिला है, जिसकी दीवारों पर एक बहुत बड़ा लेख अंकित है। यह वास्तव में एक ऐसे लेख की प्रतिलिपि है, जो सम्राट् आगस्टस ने अपने जीवन के अंतिम दिनों में स्वयं लिखवाया था, जिसमें उन सभी बड़े-बड़े कामों का वर्णन है, जो उसने अपने जीवन-काल में किए थे। यह एन्कायरन मान्यूमेंट के नाम से प्रसिद्ध है। हम यहाँ उसी लेख की कुछ बातें अपने शब्दों में उद्धृत करेंगे।

आगस्टस ने जो शासन-प्रणाली प्रचलित की थी, उसमें एकतंत्री शासन और प्रजातंत्री शासन दोनो का सम्मिश्रण या समन्वय था, और यह सम्मिश्रण या समन्वय असाधारण बुद्धिमत्ता-पूर्वक किया गया था। यह आवश्यक था कि वस्तुतः सारा अधिकार इस

प्रकार स्वयं उसी के हाथ में रहे कि वह जब चाहे, तब उसका उपयोग कर सके। इस उद्देश्य की सिद्धि उसने दो रीतियों से की थी—(१) पहले तो सात वर्षों तक वह कौंसल के पद पर रहा, पर ई० पू० २३ में उसने अपने इस पद का परित्याग कर दिया, और अपने लिये वही प्रधान न्यायाधीश* का पद रक्खा, जो उसे ई० पू० ३६ में जन्म-भर के लिये मिला था। और, अपने लिये केवल यही पद रखकर वह संतुष्ट रहा। इस पद के कारण वह 'परम पवित्र और अवध्य' हो गया था, और रोम-नगर में उसे वे सब अधिकार प्राप्त हो गए थे, जिन्हें उसकी आवश्यकता थी। (२) वह सदा के लिये और स्थायी रूप से साम्राज्य की समस्त सेनाओं का प्रधान सेनापति हो गया था। समस्त सैनिकों को उसके प्रति आज्ञाकारी रहने की शपथ खानी पड़ती थी। साथ ही उसने ऐसी व्यवस्था कर रक्खी थी कि वे अपने वेतन और पेंशन आदि के लिये उसी के मुखापेक्षी होते थे।

वह समस्त सेनाओं का अध्यक्ष था, इसलिये उसकी शक्ति और समस्त राज्याधिकारियों की शक्तियों से बढ़ी-चढ़ी थी, तथा प्रत्येक विषय में प्रत्येक राजकर्मचारी उसी से अंतिम आज्ञा लेता था। उसके पास काम भी बहुत अधिक रहता था, इसलिये उन बढ़े हुए कामों को सँभालने के लिये उसने सिनेटरों के बदले धनवान् व्यापारियों को अपने कार्यालय में नियुक्त करना आरंभ किया। ये लोग क्लर्कों या

* वह कुलीन वंश का था, इसलिये न्यायाधीश Tribune तो नहीं हो सकता था, पर फिर भी उसे प्रधान न्यायाधीश Tribune के समस्त अधिकार दे दिए गए थे। यद्यपि वह वस्तुतः प्रधान न्यायाधीश के पद पर नियुक्त नहीं हुआ था, और व्यवहारतः वह इस पद का पदाधिकारी नहीं था, तो भी इस पद के समस्त अधिकार उसे अवश्य प्राप्त थे।

स्थायी अफ़सरों की भाँति उसके कार्यालय में काम करते थे। यह एक प्रकार की सिविल सर्विस का आरंभ था, और इसके सदस्य साधारण मजिस्ट्रेटों की भाँति हर साल बदले नहीं जाते थे, बल्कि स्थायी होते थे।

इस प्रकार वास्तव में सिनेट और मजिस्ट्रेटों के अधिकार बहुत कुछ घटा दिए गए थे, पर फिर भी आगस्टस ने इन सब बातों का ऊपरी रंग-ढंग ऐसा ही रक्खा था कि साधारणतः कोई इसका वास्तविक तथ्य समझ नहीं सकता था। वह जान-बूझकर न तो स्वयं बादशाह ही बनना चाहता था और न डिक्टेटर ही। वह 'इंपरेटर' कहलाता था; और अँगरेज़ी का एम्परर शब्द, जिसका अर्थ शाहंशाह है, इसी शब्द से निकला है। पर लैटिन भाषा में इसका अर्थ होता था सैनिक शासक। और, इसका यह मतलब नहीं था कि जो इस पद पर रहे, उसे एकतंत्री और स्वेच्छाचार-पूर्ण शासन करने का पूरा अधिकार हो। आगस्टस समस्त रोमन-सेनाओं का सर्व-प्रधान सेनापति था, इसीलिये उसे यह उपाधि दी गई थी। उसने अपने लिये केवल दो विशिष्ट उपाधियाँ रक्खी थीं, जिनमें से पहली उपाधि प्रिंसेप्स थी, जिसका अर्थ होता है मुख्य नागरिक। इसके बाद उसने दूसरी उपाधि आगस्टस की धारण की थी, जिसका अर्थ है पूज्य या माननीय। इसके साथ उसकी वंशगत उपाधि सीज़र भी (जिससे आगे चलकर 'क़ैसर' और 'ज़ार' शब्द निकले थे) थी। यह सीज़र उपाधि आगे चलकर सभी सम्राटों के नाम के साथ रहने लगी; पर ये दोनो ही सम्मान-सूचक उपाधियाँ थीं (जैसे आजकल के बादशाह हिज़ मजिस्टी कहलाते हैं। इन्हें पदों का नाम नहीं समझना चाहिए।)।

यह तो शासन का भीतरी स्वरूप था, पर इसके अतिरिक्त अपने

बाहरी या ऊपरी रूप में भी यह प्रणाली प्रजातंत्री ही बनी रही। मजिस्ट्रेटों का निर्वाचन अभी तक पूर्ववत् ही करती थी, पर वस्तुतः कोई आदमी तब तक अपना पद ग्रहण नहीं कर सकता था, जब तक सम्राट् उसका निर्वाचन मान्य न कर ले। सिनेट में अब भी सब विषयों का विवेचन होता था, पर अंत में सम्राट् ही निश्चित करता था कि किसी विषय में क्या कार्रवाई होनी चाहिए। मजिस्ट्रेट लोग अब भी अपने पदों पर रहते थे, पर वास्तव में वे लोग सम्राट् की इच्छा के विरुद्ध कोई काम नहीं कर सकते थे। पर फिर भी आगस्टस कभी कोई ऐसी बात नहीं कहता था, जिससे यह सूचित हो कि उसका उत्तराधिकारी ही (उसका कोई पुत्र नहीं था) उसके स्थान पर बैठेगा। सिद्धांततः यही माना जाता था कि उसकी मृत्यु के उपरांत उसके समस्त अधिकार फिर सिनेट के ही हाथ में आ जायँगे; और इस विषय में फिर जनता का मत लिया जायगा कि उसका स्थान कौन ग्रहण करे। पर कार्यतः सम्राट् ने ऐसी व्यवस्था करने का प्रयत्न किया था कि लोग उसी के मनोनीत व्यक्ति को उसके आसन पर बैठाने के लिये निर्वाचित करें। इस प्रकार ऊपर से देखने में यह एक ऐसी प्रणाली थी, जिसमें सम्राट् और सिनेट दोनो साझीदार जान पड़ते थे। पर वास्तव में इसका मुख्य और बड़ा साझीदार स्वयं सम्राट् ही था, क्योंकि सारी सेनाएँ उसी के हाथ में थीं, और इसीलिये यह प्रणाली वस्तुतः राजतंत्री थी। इसका ऊपरी या बाहरी प्रजातंत्री स्वरूप केवल इसलिये रक्खा गया था कि रोमन लोग शांत रहें, और उपद्रव न मचावें। क्योंकि यह निश्चित था कि यदि राजतंत्री शासन की मुख्य-मुख्य बातें स्पष्ट रूप से जनसाधारण के सामने न आवेंगी, तो पुरानी प्रणाली प्रचलित रखने के लिये उनका उतना अधिक आग्रह न रह जायगा।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आगस्टस के अधिकार असीम थे। अतः अब हम यह बतलाना चाहते हैं कि उसने अपने इन अधिकारों का एक तो रोम और इटली में और दूसरे विदेशी प्रांतों में किस प्रकार उपयोग किया था।

(१) रोम और इटली के साथ उसने सबसे पहला उपकार यह किया था कि वहाँ शांति स्थापित की थी। जो देश वर्षों तक गृह-युद्ध आदि करता-करता नितांत शिथिल हो गया था, और धीरे-धीरे नाश के गड्ढे की ओर गिरता जा रहा था, उसके लिये यह शांति अमृत-स्वरूप हो थी। जब देश में भली भाँति शांति स्थापित हो चुकी, तब आगस्टस ने उसे फिर से संपन्न बनाने का प्रयत्न आरंभ किया। ऊपर जिस भित्ति-लेख का हमने वर्णन किया है, उसमें एक स्थान पर लिखा है—"देश में जल लाने की जो बड़ी-बड़ी जल-प्रणालियाँ या राजबहे थे, वे अनेक स्थानों पर टूट-फूटकर नष्ट हो रहे थे। मैंने उनकी मरम्मत कराई......। मारकियन नाम के राजबहे की मैंने ऐसी व्यवस्था की कि उसमें पहले से दूना जल आने लगा......। फ़्लैमीनियन मार्ग मैंने एरिमीनम-नामक स्थान तक फिर से बनवाया, और साथ ही उस पर के सब पुल भी फिर से तैयार कराए......।" इसके कुछ दिनों बाद आगस्टस ने इटली की सड़कों और सार्वजनिक इमारतों की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया। कहने को तो यह एक बहुत साधारण-सा काम है, पर इटली की तत्कालीन दशा देखते हुए यह बहुत ही कठिन काम था। उसने पुराने नगर फिर से तैयार कराए थे, और कई नए नगर भी बसाए थे। वह कहता है—"मैंने इटली में २८ उपनिवेश स्थापित किए, जिनमें बहुत-से और संपन्न लोग बसते हैं।" इस प्रकार उसने उन पुराने सैनिकों के निवास और जीवन-निर्वाह की व्यवस्था की, जो पहले परम असंतुष्ट रहते थे। रोम में इधर-उधर घूमकर

उपद्रव मचाया करते थे, और इटली की शांति भंग करने के लिये जिससे धन पाते थे, उसी की सहायता के लिये सदा तैयार रहते थे। बहुत-से लुटेरे और भागे हुए ग़ुलाम आम रास्तों पर उपद्रव मचाते और लूट-पाट करते थे। इसके अतिरिक्त बहुत-से समुद्री डाकू भी थे, जो जहाज़ों को लूटा करते थे। उसने इस प्रकार के सब लुटेरों का दमन किया, और इटैलियन नगरों में ऐसे स्थानिक अधिकारियों की नियुक्ति को प्रोत्साहन दिया, जो स्थानिक कार्यों की देख-भाल करते थे। इस प्रकार इटलीवाले फिर से व्यापार करनेवाले हो गए, और उनका वैभव तथा संपन्नता बढ़ने लगी।

रोम में भी आगस्टस ने यथेष्ट शांति स्थापित की थी। उसने पुलिस और आग बुझानेवाले कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि की, और ऐसी व्यवस्था की, जिससे नगर के दरिद्रों को बराबर और नियमित रूप से मुफ़्त में अनाज मिलने लगा। यद्यपि उसने प्लेबियनों के हाथ से समस्त राजनीतिक अधिकार ले लिए थे, पर फिर भी उसने नगर-निवासियों के मनोविनोद आदि के साधन प्रस्तुत करके और उनमें धन-वितरण करके उन्हें सदा प्रसन्न रक्खा। वह कहता है—"मैंने आठ बार जनता को ग्लैडिएटरों (ग़ुलाम या लड़ाई में पकड़े हुए आदमी, जिन्हें हथियार देकर जनता के सामने अखाड़ों में छोड़ दिया जाता था, और जो आपस में लड़ते-लड़ते या तो एक दूसरे को मार डालते थे, या पूरी तरह से हरा देते थे।) के तमाशे दिखलाए; तीन बार बड़े-बड़े दंगल कराए, और सत्ताईस बार व्यायाम-संबंधी खेल कराए थे। प्रतिवर्ष होनेवाले सैनिकों के जो खेल बंद हो गए थे, वे मैंने फिर से जारी कराए, छब्बीस बार जंगली जानवरों के सामूहिक शिकार कराए थे, और एक बार ख़ास तौर पर तैयार कराई हुई झील में लड़ाई के जहाज़ों की नक़ली लड़ाई कराई थी।" इसके अतिरिक्त

लोगों को दान-स्वरूप धन देने में उसने अनेक बार जो व्यय किए थे, उनकी भी एक सूची उसने दी है। उसने रोम-नगर में इतने अधिक पुराने मंदिरों की मरम्मत कराई थी, और इतने अधिक नए मंदिर और दूसरे भवन आदि बनवाए थे कि वह उचित रूप से इस बात का अभिमान कर सकता था कि "रोम मुझे ईंट के रूप में मिला था, और मैंने उसे संगमरमर बनाकर छोड़ा।" इस प्रकार की इमारतों की सूची में उसने एक सिनेट-भवन, इमारतों के आगे की खंभेदार मेहराबें, सार्वजनिक सभाओं और न्यायालय के लिये एक बड़ी इमारत, दो रंगशालाएँ या थिएटर, दो बहुत बड़े-बड़े बाज़ार और सत्रह मंदिर गिनाए हैं। इसके अतिरिक्त वह यह भी कहता है—"मैंने बयासी पुराने मंदिरों की मरम्मतें कराई हैं", जिनके नाम नहीं दिए गए हैं।

(२) प्रांतों में आगस्टस ने दो प्रकार के काम किए थे—एक तो शासन-संबंधी और दूसरा सैनिक-रक्षा-संबंधी। (क) अनुभव से यह सिद्ध हो चुका था कि प्रजातंत्र शासन-प्रणाली हानिकारक है। अतः इस संबंध में सुधार करने के लिये आगस्टस ने प्रांतों के दो प्रकार के विभाग किए थे। जो प्रांत पुराने थे, और जहाँ अपेक्षाकृत अधिक शांति रहती थी, उनमें पुराने प्रजातंत्री शासन की भाँति प्रतिवर्ष निर्वाचित मजिस्ट्रेट लोग शासन करते थे। पर नए प्रांतों में और विशेषतः ऐसे प्रांतों में, जो सीमाओं पर पड़ते थे, और जहाँ बहुत-सी रोमन-सेनाएँ रखनी पड़ती थीं, सम्राट् अपनी ओर से अपनी पसंद के गवर्नर या शासक नियुक्त करता था। ये शासक आगस्टस के प्रतिनिधि कहलाते थे, और जब तक सम्राट् की इच्छा होती थी, तब तक ये उस पद पर रहकर काम करते थे। उनका निर्वाचन भी आगस्टस ही करता था; वही उन्हें पुरस्कार दे सकता था, और वही उनको

पद-वृद्धि कर सकता था; इसलिये उनके राजभक्त बने रहने की भी विशेष संभावना रहती थी। आगस्टस ने प्रत्येक प्रांत से लिया जानेवाला राज-कर भी निश्चित कर दिया था, जिससे प्रांतों की प्रजा को यह मालूम रहता था कि हमें कुल मिलाकर कितना राज-कर देना पड़ता है। ऐसी अवस्था में कर-संग्रह करनेवाले उन्हें सताकर उनसे अधिक कर नहीं वसूल कर सकते थे। यदि प्रजा के साथ किसी प्रकार का अन्याय-पूर्ण व्यवहार होता था, तो वह सम्राट् से अपील कर सकती थी, और सम्राट् उसका न्याय करता था। पहले प्रजातंत्र-शासन में कुछ ऐसी व्यवस्था थी कि यदि कोई प्रांतीय शासक या गवर्नर अपनी प्रजा पर किसी प्रकार का अत्याचार करता था, उसे पीड़ित करता था, अथवा अपने कर्तव्यों का उचित रूप से पालन न करता था, तो उसे सहसा किसी प्रकार का दंड नहीं मिल सकता था। क्योंकि सारे साम्राज्य में कोई ऐसा एक अधिकारी नहीं होता था, जो उसे दंड दे सकता। पर अब यह बात नहीं रह गई थी। आगस्टस इस प्रकार के गवर्नरों को दंड दे सकता था। (ख) साम्राज्य की सीमाओं के बाहर पूर्व में पारथियन लोग रहते थे, और उत्तर तथा पश्चिम में वर्बर जातियाँ बसती थीं, जिन्होंने अनेक बार इटली पर आक्रमण किए थे, और भविष्य में भी इस बात की संभावना थी कि अवसर पाते ही ये लोग फिर साम्राज्य पर आक्रमण कर सकेंगे। इन लोगों से अपने साम्राज्य की रक्षा करने के लिये आगस्टस ने सीमाओं पर सैनिक-रक्षा की भी एक अच्छी प्रणाली प्रचलित की थी। पूर्व की ओर उसने अपने साम्राज्य की सीमा फ़रात-नदी निश्चित की थी। यद्यपि बाद के ट्रेजन-नामक सम्राट् ने फ़रात-नदी के उस पार भी रोमन-राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया था, और थोड़े-से प्रदेश जीते भी थे, पर उसके उत्तराधिकारी ने वे प्रदेश अपने अधि-

कार से निकालकर छोड़ दिए थे। इस प्रकार फ़रात-नदी ही रोमन-साम्राज्य की पूर्वी सीमा बनी रही। योरप में आगस्टस ने यह निश्चित कर दिया था कि रहाइन और डैन्यूब नदियों तक हमारे राज्य की सीमा रहेगी। एक बार आगस्टस ने अपनी सेनाएँ रहाइन-नदी के उस पार एल्ब तक भी भेजी थीं, परंतु सन् ९ ई० में जर-मनों ने रोमन-सेना को बहुत बुरी तरह से परास्त किया था, जिससे आगस्टस ने अच्छी तरह समझ लिया था कि रहाइन-नदी के उस पार अपनी सेनाओं को भेजना ठीक नहीं है। डैन्यूब-नदीवाली सीमा पर सन् ६ ई० में पेन्नोनिया तथा डेलमेशिया-नामक प्रांतों में विद्रोह हुए थे, जिन्हें आगस्टस ने दबा दिया था; पर उनसे और आगे के प्रदेशों को वह कभी जीतना नहीं चाहता था। वह अपने साम्राज्य की सीमाओं के विषय में बहुत सचेत रहता और प्रत्येक कार्य समझ-बूझकर करता था। इस संबंध में उसकी बुद्धि-मत्ता का एक सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि उसके बाद के किसी भी सम्राट् ने उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन करने का कोई विशेष उद्योग नहीं किया। आगस्टस के बाद केवल ब्रिटेन का प्रांत ही रोमन-साम्राज्य में मिलाया गया था, जो उन दिनों एक प्रकार से गाल का बाहरी भाग ही समझा जाता था। इसके अतिरिक्त थोड़े-से और प्रांत भी रोमन-साम्राज्य में मिलाए गए थे; जैसे साम्राज्य की डैन्यूबवाली सीमा ठीक करने के लिये डेशिया और थ्रेस। एशिया का केप्पाडोशिया-प्रांत और आफ़्रिका का मारेटेनिया-प्रांत जो पहले से ही रोम पर निर्भर रहता था, ये सब छोटे-छोटे देश केवल उनके शासन के सुबीते के लिये ही रोमन-साम्राज्य के प्रांत बनाए गए थे। ट्रेजन ने पूर्व में अवश्य कुछ प्रदेश जीते थे, पर, जैसा कि ऊपर बत-लाया जा चुका है, उन पर रोमनों का अधिक समय तक अधि-कार नहीं रह सका, वे फिर साम्राज्य से अलग हो गए थे।

रोमन-साम्राज्य के लिये एक बहुत बड़े गौरव की बात यह है कि उसने अपनी सीमा के बाहर के बर्बरों के आक्रमणों से केवल अपनी सभ्यता और संस्कृति की ही रक्षा नहीं की थी, बल्कि जिन प्रांतों पर उसने अधिकार करके शासन किया था, उनके निवासियों को भी उसने सभ्य बना दिया था। साम्राज्य का सर्वश्रेष्ठ कार्य इन्हीं प्रांतों में हुआ था। यह ठीक है कि पूर्व में बहुत दिनों से सभ्यता चली आ रही थी, और वहाँ रोम ने केवल वही काम अपने हाथ में लिया था, जो पारसी और यूनानी राजा पहले से करते चले आए थे। हाँ, पश्चिम में रोम ही सभ्यता का सबसे पहला प्रचारक था। योरप में रोम ने सभ्यता के प्रचार का काम इतनी उत्तमता से किया था कि स्पेन, गाल और यहाँ तक कि ब्रिटेन के अनेक भाग भी बहुत-सी बातों में उसी प्रकार रोमन हो गए थे, जिस प्रकार स्वयं इटली था। और, साम्राज्य में जो अनेक लैटिन लेखक हुए थे, उनमें से कई सर्वश्रेष्ठ लेखक रोमन-साम्राज्य के अधीनस्थ प्रांतों में ही हुए थे।

योरप में सभ्यता के प्रचार का यह काम भी रोम ने उसी ढंग से किया था, जिस ढंग से उसने आरंभ में इटली में किया था। सभी प्रांतों में बड़ी-बड़ी सड़कें बनाई गई थीं। रोमन-सड़कों का नक़्शा देखने ही लायक़ है। उससे पता चल सकता है कि गमनागमन, व्यापार आदि काम उन सड़कों के कारण कितने अधिक सुगम हो गए थे। साम्राज्य के अनेक भागों में 'उपनिवेश' स्थापित किए गए थे, जो आस-पास के प्रदेशों के लिये रोमन आचार-विचार आदि के आदर्श-स्वरूप थे, और रोमन-प्रभाव के केंद्र थे। आगस्टस कहता है—मैंने आफ्रिका, सिसली, मेसिडोनिया, स्पेन के दोनो प्रांतों, एकेइया, एशिया, सीरिया (नरबोनीज या दक्षिणी), गाल और पिसीडिया में पुराने सैनिकों के उपनिवेश स्थापित किए

है। परवर्ती सम्राट् भी बराबर इसी नीति का अनुसरण करते रहे। उदाहरणार्थ, ब्रिटेन में आगस्टस के बाद रोमनों ने डोरसेट समुद्र-तट से लिंकन और यार्क तक एक बहुत बड़ी सड़क बनवाई थी, जो सिरेनसेस्टर और लिसेस्टर से होती हुई गई थी। एक दूसरी सड़क चिचेस्टर से लिंकन और यार्क तक बनाई थी, जो लंदन होती हुई गई थी। और, एक तीसरी बड़ी सड़क डोवर से राक्जीटर और चेस्टर तक बनाई थी, जो लंदन होती हुई गई थी। इसके अतिरिक्त ब्रिटेन में कोलचेस्टर, लिंकन, यार्क, ग्लौसेस्टर और चेस्टर में रोमनों के उपनिवेश स्थापित हुए थे।

इन उपनिवेशों की स्थापना से एक अच्छा आदर्श खड़ा हो गया था। जगह-जगह रोमन ढंग के क़स्बे बनने लग गए, जिनका शासन भी रोमन ढंग पर ही स्थानिक अधिकारी और स्थानिक या ज़िले की कौंसिलें करती थीं। पश्चिमी योरप में छोटे-छोटे क़स्बों और देहाती प्रांतों की जो कौंसिलें हैं, और आजकल संसार के अधिकांश भागों में जो म्युनिसिपल-प्रथा प्रचलित है, वह प्रत्यक्ष रूप से रोमन-साम्राज्य की शासन-प्रणाली से ही निकली हुई है। धीरे-धीरे रोमन क़ानूनों का भी प्रचार होने लगा, और रोमन ढंग पर शिक्षा-प्रचार के लिये विद्यालय और कारीगरों आदि के संघ बनने लगे। भिन्न-भिन्न स्थानों में इस प्रकार के कार्यों में परस्पर बहुत कुछ अंतर भी था। यदि किसी प्रांत की प्रजा अपने पुराने रीति-व्यवहार और पुराने धर्म ही प्रचलित रखना चाहती थी, तो उसमें भी रोम की ओर से कोई बाधा नहीं होती थी। पर फिर भी सब बातें धीरे-धीरे रोमन ढंग की होती चलती थीं, और रोम के प्रभाव से प्रांतों के शिल्प और व्यापार आदि की उन्नति होती चलती थी, और उनकी आय के साधन बढ़ते चलते थे। रोम ने अपने प्रांतों की प्रजा को यह सिखलाया था कि ज़मीनों और खानों से किस प्रकार

काम लेना चाहिए, किस प्रकार नई-नई चीज़ें तैयार करनी चाहिए, किस प्रकार व्यापार बढ़ाना चाहिए, और किस प्रकार अपने क़स्बे तथा ज़िले के कामों का आप प्रबंध करना चाहिए।

आगस्टस की प्रचलित की हुई प्रणाली एक सुंदर यंत्र के समान थी, और आश्चर्य-जनक रूप से सोच-समझकर प्रस्तुत की गई थी। पर वह समझता था कि जब तक स्वयं प्रजा में राजभक्ति, सुव्यवस्था और सुंदर रहन-सहन का भाव न होगा, तब तक यह यंत्र कभी संतोष-जनक रूप से काम नहीं कर सकता। अतः अब हम यह बतलाना चाहते हैं कि इस प्रकार के भावों की सृष्टि और प्रसार के लिये उसने क्या-क्या प्रयत्न किए थे।

रोम और इटली में कई बुरी बातों और प्रथाओं को रोकने के लिये क़ानून बनाए थे, और विवाह के संबंध में लोगों की जो पुरानी, शिथिल धारणा थी, उसने उसे दृढ़ करना चाहा था। पहले लोग विवाह-संबंध को खेलवाड़ समझते थे, और जब चाहते थे, तब उसे तोड़ देते थे। पर आगस्टस ने यह बात बहुत कुछ बंद कर दी। इसके उपरांत उसने धर्म का पुनरुद्धार करने का प्रयत्न किया। रोम का प्राचीन धर्म अनेक बातों में बहुत अच्छा था, और प्राचीन काल में रोम पर उसका बहुत अच्छा प्रभाव था। पर अब वह धर्म बहुत कुछ नष्ट हो गया था, केवल पुराने ढंग के कुछ शांत वंशों में ही बच रहा था। पुराना राष्ट्रीय धर्म, जिसमें ज्यूपिटर और मार्स आदि राष्ट्रीय देवतों की पूजा होती थी, अब नष्टप्राय हो गया था, और लोगों का उस धर्म या उनके देवतों पर विश्वास नहीं रह गया था। उसके स्थान पर अब पूर्व की ओर से आए हुए कई धर्मों का प्रचार हो गया था, और जन-साधारण में उन धर्मों का आदर बहुत बढ़ गया था। ये धर्म उत्तेजक तो थे, लोगों को कट्टर तथा उद्दंड

अवश्य बना देते थे, पर उनकी जीवन-चर्या सुंदर नहीं रह जाती थी। आगस्टस ने पुराने राष्ट्रीय धर्म को फिर से प्रचलित करने का प्रयत्न किया था। जैसा हम ऊपर कह आए हैं, वह स्वयं बतलाता है—"मैंने बहुत-से पुराने देव-मंदिरों का जीर्णोद्धार कराया है, और बहुत-से नए मंदिर बनवाए हैं।" पर इन सब बातों से जनता का कोई उपकार नहीं हुआ। रोमनों के सब पुराने गुण नष्ट हो गए थे, और रोम की तथा कुछ अंशों में इटली की भी नैतिक तथा धार्मिक स्थिति बहुत बुरी हो गई थी, और दिन-पर-दिन बराबर बिगड़ती ही जाती थी। जन-साधारण किसी प्रकार अपना सुधार ही नहीं कर सकते थे। ऐसे समय में ईसाई-धर्म का आविर्भाव हुआ। और, जब इटली में उसका प्रचार हुआ, तब जनता के आचरण आदि पर उसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। शिक्षित लोगों के आचार-विचार तो एक सीमा तक इसलिये अच्छे बने रहे कि उन्होंने यूनानियों से एक प्रकार का दर्शन-शास्त्र सीख लिया था, जो 'स्टोइसिज़्म' कहलाता था। इसका उन लोगों में प्रचार भी बढ़ रहा था। इसका फल यह हुआ कि लोग सुंदर रूप से जीवन व्यतीत करने लगे, उनका उनमें आत्म-प्रतिष्ठा का भाव आ गया, वे विपत्तियों आदि को वीरता-पूर्वक सहन करने लगे, और वे न्यायशील तथा विचारवान् होने लगे। रोम के उच्च वर्ग के निवासियों में इस प्रकार के विचारों का उन दिनों फ़ैशन-सा चल गया, और इसके कारण उन लोगों में तब तक कुछ-कुछ उच्च विचार चलते रहे, जब तक ईसाई-धर्म ने आकर यह काम अपने हाथ में नहीं उठा लिया।

प्रांतों में आगस्टस ने एक नए धर्म का प्रचार करने का भी प्रयत्न किया था। इस धर्म में 'जीनियस आगस्टी'-नामक देवता की पूजा होती थी, जिसका अर्थ है सम्राट् की रक्षा करनेवाली ईश्वरीय

शक्ति। आगे चलकर इसमें केवल सम्राट् की ही पूजा बाक़ी बच रही। सम्राट् की पूजा और भक्ति के सिवा और कुछ रह ही न गया। पूर्व में इस धर्म का अच्छा आदर हुआ। पूर्वीय देशों की प्रजा पहले से ही अपने शासकों को देवता-रूप में पूजने की अभ्यस्त थी। पूर्व से यह पूजा और भक्ति इटली और पश्चिमी प्रांतों में फैली। पर वहाँ धार्मिक क्षेत्र में उसका उतना अधिक प्रभाव नहीं था, जितना राजनीतिक क्षेत्र में था। इससे लोगों की जीवन-चर्या में तो कोई सुधार नहीं हुआ, पर हाँ, लोगों के मन में यह भाव बैठ गया कि साम्राज्य की रक्षा ईश्वर करता है, अतः लोगों के मन में रोम के प्रति धार्मिक श्रद्धा और भक्ति उत्पन्न हो गई। दो सौ वर्षों तक रोमन-साम्राज्य में इस 'सीज़र-भक्ति' का बहुत ज़ोरों से प्रचार रहा, और विशेषतः जन-साधारण में तो यह और भी अधिक प्रचलित हुई। पर रोम और प्रांतों के अधिक शिक्षित निवासियों में स्टोइसिज़्म का ही अधिक चार रहा। सेना में एक नए पूर्वीय धर्म का यथेष्ट प्रचार हुआ, जो मिथ्रेइज़्म कहलाता था। धीरे-धीरे यह धर्म भी बहुत शक्तिशाली हो गया। पूर्व से आए हुए अन्यान्य धर्म में तो यह बात नहीं थी, पर हाँ, इस धर्म के कारण बहुत-से लोग उत्तम रूप से जीवन व्यतीत करने लग गए थे।

साधारणतः हम कह सकते हैं, जब तक रोमन-संसार में ईसाई-धर्म का प्रचार नहीं हुआ था, तब तक वहाँ कोई ऐसा धर्म नहीं था, जो लोगों को एक सर्वशक्तिमान् ईश्वर पर विश्वास करना सिखलाता, और उन्हें यह शिक्षा देता कि इस प्रकार के धार्मिक विश्वास के साथ-ही-साथ यह भी आवश्यक है कि सदाचार-पूर्ण जीवन व्यतीत किया जाय।

रोमन-साम्राज्य में आगस्टस ने जो प्रणाली चलाई थी, उसकी मुख्य-मुख्य बातें ये हैं—

(१) सम्राट् की शक्ति उसके सैनिक अधिकार पर निर्भर करती थी; अर्थात् सम्राट् ही समस्त सेनाओं का प्रधान सेनापति होता था, और इसीलिये सब लोग उसकी आज्ञाएँ मानने के लिये विवश होते थे। यदि सम्राट् बुद्धिमान् और दृढ़ होता, तब तो इससे कोई हानि नहीं हो सकती थी, पर यदि वह दुर्बल या मूर्ख होता अथवा अपने सेनापतियों और सैनिकों को अपने प्रति निष्ठ न रख सकता, तो फिर अवश्य ही भारी विपत्तियाँ और संकट आ सकते थे। रोमन-साम्राज्य में ये विपत्तियाँ और संकट इसलिये और भी भारी हो सकते थे (जैसा हम पहले बतला चुके हैं) कि वहाँ यह आवश्यक नहीं था कि कम-से-कम सिद्धांततः साम्राज्य का स्वामित्व पिता के उपरांत उसके पुत्र को अथवा एक सम्राट् के उपरांत उसके उत्तराधिकारी को ही प्राप्त हो। इस प्रकार किसी सम्राट् के मरते ही वहाँ कुछ लोगों में सम्राट्-पद पाने के लिये प्रतिद्वंद्विता खड़ी हो सकती थी। यदि सेनापतियों में भी उच्चाकांक्षाएँ होतीं, तो वे सैनिकों को भी समझा-बुझाकर या और किसी प्रकार अपने वश में कर सकते थे, और स्वयं सम्राट् का पद प्राप्त करने में उनसे सहायता ले सकते थे। दूसरे शब्दों में हम यही बात इस प्रकार कह सकते हैं कि रोमन-साम्राज्य में सारा शासन सदा एक ही मनुष्य पर निर्भर रहता था। और, ऐसी प्रणाली की सफलता अधिकांश में उस सम्राट् के गुणों पर ही निर्भर करती है।

(२) प्रांत और उनमें के कस्बे स्वयं अपने स्थानिक विषयों की तो देख-रेख कर सकते थे, पर समस्त साम्राज्य के शासन-संबंधी कार्यों में वे किसी प्रकार का सहयोग नहीं कर सकते थे। इसीलिये धीरे-धीरे उन्हें इस बात की परवा कम होने लगी कि शेष साम्राज्य पर क्या बीत रही है। उन्हें जो कुछ चिंता रहती थी, वह स्वयं अपने यहाँ की और अपने पास-पड़ोस की बातों की ही रहती थी।

(३) रोम में सद्गुणों और धार्मिक भावों का जो ह्रास हो गया था, उसके परिणाम-स्वरूप उस नगर के समाज की अवस्था दिन-पर-दिन ख़राब होती गई, और आदरणीय नहीं रह गई। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, त्यों-त्यों उच्च कोटि के रोमन और इटैलियन बाहरी प्रांतों में जाकर बसने लगे, क्योंकि वहाँ की सामाजिक अवस्था बहुत कुछ अच्छी थी। इस प्रकार साम्राज्य के केंद्र का धीरे-धीरे पतन होने लगा। और, जिस साम्राज्य की ऐसी अवस्था हो, वह अधिक दिनों तक नहीं बना रह सकता।

इन सब दुर्बलताओं के दुष्परिणाम एक साथ ही नहीं दिखाई पड़ने लगे थे, बल्कि धीरे-धीरे प्रत्यक्ष हुए थे। इस साम्राज्य का ढाँचा ऐसी ख़ूबी के साथ खड़ा किया गया था कि वह बहुत दिनों तक जैसे-तैसे चलता रहा, और उसके ढहने के लक्षण बहुत दिनों बाद दिखाई पड़े। तो भी इसमें संदेह नहीं कि आगस्टस ने साम्राज्य में जो शासन-प्रणाली प्रचलित की थी, उसमें यह एक बहुत बड़ा गुण था कि वह प्रायः दो सौ वर्षों तक, बल्कि इससे भी कुछ और अधिक समय तक चलती रही, और तब कहीं जाकर उसका नाश आरंभ हुआ। अंत में यह सारी इमारत उस समय ढह गई, जब बर्बरों ने आकर उस पर आक्रमण करने आरंभ किए। पर इन्हीं दो सौ वर्षों में उसने समस्त योरप में एक ऐसी सभ्यता स्थापित कर दी थी कि जब बर्बर लोग आए, तब वे उस सभ्यता को किसी प्रकार नष्ट तो कर ही नहीं सके, उलटे उन्हें विवश होकर इसकी प्रशंसा करनी पड़ी, और उससे बहुत-सी बातें सीखनी पड़ीं।

स्वयं आगस्टस के शासन-काल में ऐसा जान पड़ता था कि स्वर्ण-युग जल्दी-जल्दी चला आ रहा है। कम-से-कम वरजिल और होरेस-सरीखे कवियों ने तो उसका ऐसा ही सुंदर वर्णन किया है, और

वह वर्णन है भी बहुत-से अंशों में ठीक। सारा संसार शांति और वैभव के लिये आशा-पूर्ण दृष्टि से केवल आगस्टस की ओर ही टक लगाए हुए था। वह स्वयं कहता है—"सिनेट ने यह घोषणा कर दी है कि प्रति पाँचवें वर्ष मेरे आरोग्य के लिये मन्नतें मानी जाया करें।" हो सकता है, सिनेट ने सिर्फ़ गुलामों की तरह ख़ुशामद करने के लिये ही ऐसी घोषणाएँ की हों। पर जब वह आगे चलकर कहता है—"समस्त नागरिकों ने व्यक्तिगत और निजी रूप से भी तथा म्युनिसिपैलिटियों के रूप में सामूहिक रीति से भी समस्त देव-मंदिरों में मेरे नीरोग रहने के लिये निरंतर बलिदान चढ़ाए थे।" तब मानो हमें उसकी सर्व-प्रियता का एक ऐसा प्रमाण मिल जाता है, जिसके विषय में किसी को कुछ कहने की जगह ही नहीं रह जाती। इटली और प्रांतों के असंख्य लेखों से यह बात निर्विवाद रूप से सूचित होती है कि सारे साम्राज्य में लोग कितने शुद्ध हृदय से और व्यक्तिगत या निजी रूप से उसका सम्मान करते थे, और कितने शुद्ध हृदय से वे लोग यह बात स्वीकृत करते थे कि सभ्य और शांति-पूर्ण जीवन का भोग करने की सारी आशाएँ एकमात्र आगस्टस पर ही निर्भर करती हैं।

आगस्टस का युग रोमन-काव्यों में स्वर्ण-युग माना जाता है। अतः यहाँ रोमन-साहित्य के संबंध में भी कुछ मुख्य-मुख्य बातें बतला देने का यह एक अच्छा अवसर जान पड़ता है। रोमनों की प्रकृति ऐसी थी कि वे कलाओं आदि की ओर बहुत ही कम ध्यान देते थे। अधिकांश में उनका जीवन व्यावहारिक होता था। और, फिर उनके इतिहास के आरंभिक पाँच सौ वर्ष तो इतने अधिक लड़ाई-झगड़ों में बीते थे कि उन्हें कलाओं आदि की ओर ध्यान देने का बिलकुल समय ही नहीं मिला था। जब ई० पू० तीसरी शताब्दी में रोमन लोगों का

यूनानियों के साथ संबंध स्थापित हुआ, तब कहीं जाकर रोमन-साहित्य का आरंभ होने लगा।

यहाँ हमें यह बात अच्छी तरह ध्यान में रखनी चाहिए कि यूनानी कला या ज्ञान का सिकंदर के युग के साथ ही अंत नहीं हो गया था। यद्यपि हेल्लास का धीरे-धीरे पतन हो गया था, पर फिर भी एशिया के नगरों, र्होड्स, सिसली और विशेषतः असकंदरिया में यूनानी संस्कृति बराबर बनी रही, और बढ़ती रही। असकंदरिया में तो मिस्री राजों ने एक बहुत बड़ा पुस्तकालय और अजायब-घर भी खोल रक्खा था। जितने अच्छे-से-अच्छे यूनानी काम हैं, उनमें से अधिकांश ई० पू० तीसरी या चौथी शताब्दी में ही हुए थे। हेलिकारनेसस का मोसोलियम (जो राजा मोसोलस ने अपनी पत्नी की स्मृति में बनवाया था।), साइडन के ताबूत (जिनमें से एक पर सिकंदर के युद्धों के चित्र अंकित हैं।), परगमन की वेदी और एफिसस-नामक स्थान आरटेमिस का मंदिर आदि हेल्लेनिस्टिक या यूनानी ढंग की कला में के बहुत ही बढ़िया नमूने हैं। सेमोथ्रेस-नामक स्थान पर विजय-लक्ष्मी की जो मूर्ति बनी थी (जो आजकल पेरिस में है), वह यूनानी तक्षण कला के रत्नों में से एक है। और, ये सभी चीज़ें सिकंदर के समय के बाद बनी थीं। उसी समय से साहित्य में भी हमें बहुत बड़े-बड़े कवि और लेखक आदि मिलते हैं। जैसे मेनैंडर, जो हास्य-रस का बहुत अच्छा कवि था, और थियोक्राइटस, जिसने ग्राम्य जीवन के संबंध में छोटी-छोटी कविताएँ लिखी थीं। यूनानी-साहित्य में इन सब लोगों की कृतियाँ सबसे अधिक मनोहर और आनंददायिनी हैं। उस समय तक यूनानी दर्शन-शास्त्र का उन्नति-युग तो समाप्त हो चुका था, पर फिर भी ऐसे लोग बराबर होते रहते थे, जो बड़े-बड़े प्रश्नों के संबंध में अनुशीलन और उपदेश करते

थे, और लोगों को उचित रूप से विचार तथा कार्य करने का मार्ग दिखलाते थे। इनमें से स्टोइक और एपिक्योरियन शाखा के लोग बहुत अधिक प्रसिद्ध हैं। और फिर, सबसे बढ़कर बात यह है कि यूनानी विज्ञान की उन्नति का भी यही युग है। इस युग में अलकंदरिया तथा दूसरे अनेक स्थानों में ज्योतिष, चिकित्सा-शास्त्र, गणित, ज्यामिति, भूगोल आदि क्षेत्रों में बड़े-बड़े विद्वान् बहुत अच्छा काम कर रहे थे। लोगों में साहित्य के अध्ययन का बहुत अधिक प्रचार था। जब रोम ने यूनानी संसार को जीत लिया, उसके बाद भी यह सब काम बहुत दिनों तक जारी रहा।

इस प्रकार जब रोम को यूनान का परिचय हुआ, तब उसे एक ऐसी संस्कृति दिखलाई दी, जो अभी तक जीवित थी, और बहुत कुछ काम कर रही थी। रोमनों में जो लोग अधिक शिक्षित थे, वे यूनानी चीज़ों को बहुत पसंद करने लगे, और उनका बहुत आदर करने लगे। इसी प्रेरणा के कारण रोमन-साहित्य का लिखा जाना भी आरंभ हुआ। स्वयं रोमन लोग ही बात बहुत शौक़ से कहा करते थे कि हमने जो कुछ सीखा है, वह सब यूनानी प्रभाव के कारण ही सीखा है। एक दृष्टि से यह बात बिलकुल ठीक भी है। काव्य में उन्होंने यूनानी रूप ग्रहण किया था, और दर्शन-शास्त्र में यूनानी विचार अपनाए थे। पर फिर भी रोमन-काव्य में एक ऐसा आनंद और महत्त्व है, जो यूनानी नहीं, बल्कि उसका निजी है। प्लाटस और टेरेंस के हास्य-रस के नाटक (जो ई० पू० २३० और १६० के बीच में लिखे गए थे।) यद्यपि यूनानी नाटकों की नक़ल ही हैं, पर फिर भी उनमें ख़ास जान है। कवियों में ल्यूक्रेशियस (ई० पू० ६६-५५) एक ऐसा कवि है, जिसमें औरों की अपेक्षा सबसे अधिक रोमन भाव और रंग-ढंग पाया जाता है। वह

केवल बहुत बड़ा प्रतिभाशाली कवि ही नहीं है, बल्कि उसके काव्यों में बहुत अधिक ओज है, साथ ही बहुत ऊँचे दर्जे का नैतिक उत्साह भी है, जिसके कारण उसकी कविता संसार की बहुत ऊँचे दर्जे की धार्मिक कविताओं में गिनी जाती है, यद्यपि उसमें एक बहुत बड़ी विशेषता यह भी है कि धार्मिक मिथ्या विश्वासों पर उसमें भीषण आक्रमण किए गए हैं। कटलस (ई० पू० ८४-५४) की कविताएँ संसार के सर्वश्रेष्ठ गीति-काव्यों में गिनी जाती हैं। वरजिल और होरेस की, जो आगस्टन-युग में हुए थे, कविताओं में रोमन-काव्य-कला अपनी पूर्णता को पहुँच गई है। वरजिल अपने समय में आगस्टन सम्राट् का राजकवि था। वरजिल को मृदु, गंभीर, ओज-पूर्ण तथा संगीतमय भाषा लिखने पर पूरा-पूरा अधिकार था। उसकी कविताओं से यह बात पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाती है कि रोमन-चरित्र में सबसे अच्छी बातें कौन थीं। होरेस के सर्वश्रेष्ठ काव्यों को भी आगस्टन सुधारों से ही प्रोत्साहन मिला था। उसके बहुत-से गेय पदों में पूर्ण रूप से यह बतलाया गया है कि जीवन के संबंध में उन दिनों लोगों के विचार कैसे व्यावहारिक और सुंदर होते थे। आगस्टस के शासन-काल में ओविड नाम का एक और लेखक हुआ था, जो कहानियाँ लिखने में बहुत दक्ष था। उसके पद्यों का रूप भी बिलकुल निर्दोष है, पर वह कोई वास्तविक कवि नहीं है। ल्यूकन (सन् ३६-६५ ई०) ने अपनी कविता बहुत-से अलंकारों से लादकर खराब कर दी है। वह केवल इसलिये सुंदर अलंकारों से युक्त पद्य लिखा करता था कि वे सुनने में अच्छे जान पड़ते थे, और इस बात का उसे कुछ भी ध्यान नहीं रहता था कि वे सब बातें सुननेवालों को ठीक और सच्ची जान पड़ेंगी या नहीं। ज्यूवेनेल (सन् ६७-१४७ ई०) के संबंध में भी बिलकुल यही

बात है। फिर भी उसने बहुत ही सुंदर और आश्चर्य-जनक भड़ौए लिखे थे। उसने रोमन-चरित्र के दोषों और दुर्बलताओं पर बहुत कड़ी टीका-टिप्पणी की है। उसके बाद के भड़ौआ लिखनेवाले बहुत-से कवियों ने उसका अनुकरण किया है।

लैटिन गद्य को सीजर और सिसरो ने पूर्णता को पहुँचाया था। सीजर ने अपने युद्धों आदि का जो इतिहास लिखा है, उसमें हमें सबसे अधिक शुद्ध लैटिन भाषा मिलती है। उसके लेख जितने मनोरंजक हैं, उतने ही स्पष्ट और सरल भी। हाँ, उनमें केवल एक ही विषय का विवेचन किया गया है। सिसरो ने सभी प्रकार के विषयों पर बहुत ही दक्षता-पूर्वक लिखा है, और उसकी भाषा भी बहुत प्रशंसनीय है। उसके भाषण प्रायः बहुत ही सुंदर हुआ करते थे। अच्छे-अच्छे जानकारों का कहना है कि इस विषय में डिमास्थिनीज के उपरांत उसी का स्थान है। दर्शन-शास्त्र के संबंध में उसने जो कुछ लिखा है, वह चाहे उतना अधिक गहन और गंभीर न हो, पर फिर भी उसमें यूनानी विचार बहुत ही अच्छी लैटिन भाषा में प्रकट किए गए हैं। उसने भाषण-कला और नैतिक प्रश्नों (सत् और असत्) पर जो विचार प्रकट किए हैं, वे बहुत ही मौलिक और मनोरंजक हैं। पर सबसे अधिक आनंद उसके निजी और व्यक्तिगत पत्र आदि पढ़ने में आता है। इस प्रकार के आठ सौ से अधिक पत्र मिलते हैं, जिनमें कुछ तो बहुत महत्त्व के हैं और कुछ साधारण। वे सब पत्र प्रकाशित करने के लिये नहीं लिखे गए थे, इसलिये उन पत्रों में हमें उसका बिलकुल ठीक-ठीक और सच्चा चित्र मिलता है। उन पत्रों से उसके गुण और दोष सभी प्रकट होते हैं। उनसे यह भी पता चलता है कि उसमें कौन-कौन-सी अच्छी बातें थीं, और कौन-कौन-सी दुर्बलताएँ। इन पत्रों के कारण हमें उसके जितने सच्चे और वास्तविक रूप का पता

सकता है, किसी और प्राचीन व्यक्ति के उतने सच्चे और वास्तविक स्वरूप का नहीं। उसके उपरांत जितने पत्र-लेखक हुए, उन सबका वह जनक और आदर्श है। उसके पत्रों में लैटिन भाषा तो अपने बहुत सुंदर और शुद्ध रूप में मिलती ही है, किंतु वह संग्रह भी आज तक के लिखे हुए परम मनोहर और सुखकारी ग्रंथों में से एक है। उसके समय का इतिहास समझने में उससे अमूल्य सहायता मिलती है।

सिसरो के उपरांत लैटिन गद्य की मुख्य कीर्ति इतिहास के क्षेत्र में देखने में आती है। लिवी (ई० पू० ५९—सन् ई० १७) ने १४२ ग्रंथों या खंडों में रोम का इतिहास लिखा था, जिनमें से इस समय केवल ३५ ग्रंथ या भाग बच रहे हैं। टैसिटस (सन् ५५—१२० ई०) ने अपने श्वशुर एग्रिकोला की एक सुंदर जीवनी और अपने समय के जर्मनी देश और जर्मन लोगों का एक मनोरंजक वर्णन लिखा है। इसके अतिरिक्त उसने आगस्टस की मृत्यु के समय से लेकर सन् ९६ ई० तक का रोम का एक इतिहास, कई खंडों में, लिखा है। यद्यपि इनमें से कोई लेखक प्रथम श्रेणी का इतिहास-लेखक नहीं माना जा सकता, तो भी, इसमें संदेह नहीं, ये दोनो ही प्रथम श्रेणी के लेखक हैं। लिवी ने जो कुछ लिखा है, वह सब आदि से अंत तक बहुत ही मनोरंजक है। वह जितनी सरस और मनोहर रीति से किसी घटना का वर्णन कर सकता है, उतनी सरस और मनोहर रीति से और कोई नहीं कर सकता। टैसिटस का चरित्र-चित्रण बहुत ही आश्चर्य-जनक है। वह छोटे-छोटे, पर अर्थ-गर्भित वाक्य लिखने में बहुत ही सिद्ध-हस्त है। वह बहुत ही थोड़े-से शब्दों में अर्थों का असाधारण भंडार भर देता है।

इनके अतिरिक्त और भी बहुत-से रोमन-लेखक हैं, पर उनमें से कोई प्रथम श्रेणी का नहीं है। यह ठीक है कि यूनानी-साहित्य

के मुकाबले रोमन-साहित्य में बहुत बड़े और नामी लेखक बहुत कम हुए हैं। बहुत-सी बातों में, विशेषतः दर्शन तथा विज्ञान के क्षेत्र में, रोम ने मुख्य कार्य यही किया है कि यूनानी विचारों की व्याख्या करके उन्हें संसार के सामने रक्खा है। मानो इस त्रुटि की पूर्ति करने के लिये रोमन-भाषा ने योरप की शिक्षा पर इतना अधिक प्रभाव डाला है, जिसका पूरा-पूरा अनुमान नहीं हो सकता। यह ठीक है कि रोमन-भाषा उतनी सुंदर नहीं है, जितनी सुंदर यूनानी भाषा है, पर ठीक-ठीक अर्थ व्यक्त करने में कोई भाषा (आजकल की फ्रांसीसी भाषा औरों की अपेक्षा इस विषय में उसकी सबसे अधिक प्रतियोगिता कर सकती है।) लैटिन की कभी बराबरी नहीं कर सकी। लैटिन भाषा को उसकी यह विशेषता मुख्यतः सिसरो की कृपा से ही प्राप्त हुई थी। सिसरो से पहले एक यूनानी ही ऐसी भाषा थी, जिसमें शिक्षित लोग गहन विषयों पर वार्तालाप कर सकते थे। सिसरो के बाद यूनानी-भाषा का यह स्थान लैटिन ने ग्रहण कर लिया था। शताब्दियों तक सारे योरप में या कम-से-कम पश्चिमी योरप में लैटिन ही समस्त शिक्षित लोगों की भाषा थी। सभी लोग उच्च और गहन विषयों पर केवल लैटिन भाषा में ही वार्तालाप करते थे। राज्यों के राजदूत और मंत्री आदि भी इस लैटिन भाषा में ही अपने सब काम करते थे। पश्चिमी योरप के ईसाई-गिरजों में सदा लैटिन भाषा में ही ईश्वर-प्रार्थना होती थी, और रोमन कैथोलिक गिरजों में तो आज तक इसी भाषा में ईश्वर-प्रार्थना की जाती है। योरप की अनेक आधुनिक भाषाओं—यथा इटैलियन, फ्रांसीसी और स्पेनी भाषाओं—का मुख्य आधार लैटिन ही है, और अँगरेज़ी-भाषा का भी अधिकांश लैटिन भाषा से ही निकला है। यदि यूनानियों ने योरपवालों को ठीक तरह से गहन विचार करना सिखलाया, तो रोमनों ने उन्हें स्पष्ट रूप से

ठीक-ठीक अभिप्राय प्रकट करना सिखलाया। एक ने पश्चिमी संसार को विचार करने के लिये प्रोत्साहित किया, तो दूसरी ने उन्हें भाव-व्यंजन का साधन प्रदान किया। उचित रूप से शिक्षित व्यक्ति के विकास के लिये ये दोनों ही बातें ऐसी हैं, जिनके बिना उसका काम नहीं चल सकता।

---

४. रोमन-साम्राज्य

आगस्टस की मृत्यु सन् १४ ई० में हुई थी। उसके बाद ज्यूलि-यन-राजवंश के (इस वंश का यह नाम ज्यूलियस सीज़र के नाम पर पड़ा था।) चार और सम्राट् हुए थे, जिनमें से नीरो अंतिम था। नीरो के शासन-काल के अंत में बहुत-से सैनिक विद्रोह हुए थे। स्पेन, जर्मनी और पूर्व की सेनाओं के सेनापतियों ने एक के बाद एक विद्रोह करके राजसिंहासन पर अधिकार करना चाहा था। बारह महीनों (सन् ६८-६९ ई०) में रोम में एक-एक करके चार सम्राट् राजसिंहासन पर बैठे थे। इनमें से अंतिम या चौथे सम्राट् वेस्पेसियन ने दस वर्षों (सन् ६९-७९ ई०) तक राज्य किया था। इसके उपरांत उसके दो पुत्र क्रम से सिंहासन पर बैठे थे, जिनमें से पहला टाइटस (सन् ७९-८१ ई०) और दूसरा डोमीशियन (सन् ८१-९६ ई०) था। ये लोग फ्लेवियन सम्राट् कहलाते हैं। डोमीशियन की हत्या कर डाली गई थी, और उसके बाद नरवा को सिंहासन मिला था, जिसका निर्वाचन सिनेट ने किया था, और जिसने केवल दो वर्षों तक शासन किया था। पर नरवा ने अपनी मृत्यु से पहले ट्रेजन को अपना दत्तक बनाकर उत्तराधिकारी नियुक्त किया था। ट्रेजन (सन् ९८-११७) ने हेड्रियन को, हेड्रियन (सन् ११७-१३८ ई०) ने एंटोनिनस पायस को और एंटोनिनस (सन् १३८-१६१ ई०) ने मारकस आरेलियस को दत्तक लेकर अपना उत्तराधिकारी बनाया था। आरेलियस (सन् १६१-१८० ई०) के उपरांत उसका पुत्र कोमोडस (सन् १८०-१९२ ई०) सिंहासन पर बैठा था। इस प्रकार प्रायः सौ वर्षों तक राजसिंहासन के

इपीडॉरस के अखाड़े का ध्वंसावशेष

उत्तराधिकार के लिये कोई झगड़ा नहीं हुआ। हम कह सकते हैं, आगस्टस के बाद एक तो वेस्पेसियन और फिर नरवा के पहले चार उत्तराधिकारी रोम के सबसे अधिक योग्य और सबसे अच्छे शासक हुए थे। कोमोडस बहुत ही निकम्मा शासक था। उसके शासन-काल के उपरांत प्रायः सौ वर्षों तक कभी कोई सेना किसी को सम्राट् बनाकर सिंहासन पर बैठा देती थी और कभी कोई सेना किसी को। इनमें से अधिकांश सम्राट् बहुत ही थोड़े दिनों तक शासन करने पाते थे; और कोई दूसरी सेना विद्रोह खड़ा कर देती थी, और अपनी पसंद के किसी नए आदमी को लाकर सिंहासन पर बैठा देती थी। इसी प्रकार डायोक्लेशियन नाम का एक सम्राट् सन् २८४ ई० में लाकर सिंहासन पर बैठाया गया था, जिसने साम्राज्य को फिर से संगठित करने और मर्यादा तथा व्यवस्था स्थापित करने का घोर प्रयत्न किया था। पर जब सन् ३०५ ई० में उसने स्वयं ही सिंहासन परित्याग कर दिया, तब फिर साम्राज्य में गृह-युद्ध होने लगा। सन् ३०८ ई० में तो सिंहासन पर अधिकार करने के लिये एक साथ ही छ सम्राट् उठ खड़े हुए। पर कांसटेंटाइन ने अपने समस्त प्रतिद्वंद्वियों को परास्त करके सन् ३११ से ३३७ ई० तक राज्य किया। उसकी मृत्यु के उपरांत झगड़े और भी बढ़ गए, और सन् ३६४ ई० में साम्राज्य दो बराबर भागों में बँट गया। उन दोनो भागों में अलग-अलग दो सम्राट् शासन करने लगे। ये दोनो विभाग बराबर अंत तक बने रहे।

इस काल के आरंभ के दो सौ वर्ष रोमन-साम्राज्य की उन्नति के हैं। फ्लेवियन सम्राटों और उनके उत्तराधिकारियों के शासन-काल में रोमन-साम्राज्य अपने सुख और वैभव की परा काष्ठा को पहुँच गया था। उनके समय में शासन-कार्य बहुत ही अच्छी और

पूरी तरह से होता था। सीमाओं पर रक्षा की ऐसी व्यवस्था रहती थी कि कोई शत्रु आक्रमण करके सफल नहीं हो सकता था। शांति-काल की कलाओं का बहुत ही अच्छा विकास हुआ था। इन दो शताब्दियों की ये ही मुख्य बातें हैं। इस समय रोमन-कला और वास्तु-विद्या की सर्वश्रेष्ठ कृतियाँ प्रस्तुत हुई थीं, और रोमन-क़ानून को एक निश्चित और नियमित रूप प्राप्त हुआ था।

चित्र और मूर्तियाँ आदि बनाने में रोमन लोग मुख्यतः यूनानियों की नक़ल करके ही रह गए थे। वे लोग या तो इन कामों के लिये यूनानी कलाकारों को ही नियुक्त करते या स्वयं यूनानी कलाओं की नक़ल करते थे। पर न तो वे इस नक़ल में कोई नई बात ही पैदा करते और न असल की बराबरी ही कर सकते थे। रोमन लोगों ने केवल दो ही प्रकार की अच्छी मूर्तियाँ बनाई थीं—

(१) सम्राटों तथा कुछ अन्य बड़े-बड़े लोगों की पूरी या आधी मूर्तियाँ और समाधि-चिह्न आदि जो रोम में स्थापित किए गए थे। इनमें सबसे बड़ी विशेषता यही है कि ये मूर्तियाँ देखने में बिलकुल सजीव-सी जान पड़ती हैं। इनके तैयार करने में बहुत अच्छी कारीगरी ख़र्च की गई है। रोम में जो मारकस आरेलियस की अश्वारूढ़ मूर्ति और हेटराई का जो स्मृति-चिह्न है, ये दोनो इस प्रकार की तक्षण-कला के बहुत अच्छे नमूने हैं।

(२) सम्राटों के जो बड़े-बड़े विजय-स्तंभ बनाए गए थे, उनके खंभों और मेहराबों पर भी बहुत ही अच्छी-अच्छी मूर्तियाँ और दृश्य आदि नक़ाशे गए हैं। इनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध टाइटस की मेहराब, ट्रेजन का स्तंभ और कांसटेंटाइन की मेहराब है, और ये तीनो रोम में हैं। इनके अतिरिक्त बेनेवेंटो-नामक स्थान में इसी तरह की ट्रेजन की मेहराब भी बहुत अच्छी है।

हाँ, वास्तु-कला या भवन-निर्माण में रोम को सबसे अधिक यश प्राप्त हुआ। स्थापत्य-विभाग में रोम ने सुंदर और बड़े मंदिर नहीं बनवाए थे, बल्कि लोगों की सामान्य आवश्यकताओं और सुभीते के लिये बहुत-सी अच्छी और बड़ी इमारतें बनवाई थीं। जैसे रहने के मकान, सड़कें, दीवारें, हम्माम, पुल, राजबहे या बड़ी-बड़ी जल-प्रणालियाँ (जिनके द्वारा बहुत दूर-दूर से पीने का पानी नलों द्वारा शहरों और क़स्बों में लाया जाता था।), पानी रखने के बड़े-बड़े हौज़, बाँध, नल और दीपस्तंभ आदि। इसके अतिरिक्त रोमनों ने एक विशेष प्रकार के बहुत बड़े-बड़े अखाड़े भी बनवाए थे, जो एंफी थिएटर कहलाते हैं। ये अखाड़े आजकल के सरकसों के अखाड़ों की तरह बिलकुल गोलाकार होते और इनमें चारो ओर दर्शकों के बैठने के लिये स्थान बने होते थे। रोमन-साम्राज्य में प्रायः इन्हीं अखाड़ों में बहुत बड़े-बड़े द्वंद्व-युद्ध और हिंसक पशुओं के साथ मनुष्यों के युद्ध हुआ करते थे, जिन्हें देखने के लिये हज़ारों आदमी इकट्ठे होते थे। योरप के बहुत-से भागों में अभी तक ऐसी इमारतें पाई जाती हैं, जो रोमनों ने बनवाई थीं, जिनमें से फ्रांस, इटली और सिसली में ऐसे कई एंफी थिएटर हैं; और सबसे बड़ा फ़्लेवियन एंफी थिएटर है, जो रोम में है, और कोलोसियम कहलाता है। इसके अतिरिक्त मेरिडा या रिमिनी के पुल, निमयेस के पास के सेगोविया के राजबहे या जल-प्रणालियाँ, रोम के सार्वजनिक मैदान की दीवारें, टिवोली के पास हेड्रियन की कोठी, रोम में केराकला और डाओक्लेशियन के स्नानागार तथा अन्यान्य अनेक स्थानों में रोमनों की बहुत-सी इमारतों के खँडहर अब भी दिखाई देते हैं। ये सब बड़ी-बड़ी इमारतें अपने आकार और भव्यता के विचार से तो प्रशंसनीय हैं ही, पर साथ ही इन्हें देखने से यह भी पता चलता है कि

इनके बनानेवालों का वास्तु-कला-संबंधी ज्ञान भी बहुत बढ़ा-चढ़ा था, और इमारतें बनाने के लिये उन्होंने अनेक प्रकार के बहुत बड़े-बड़े यंत्र भी अवश्य ही बनाए थे। प्राचीन काल के सभी राष्ट्रों में रोमवाले इमारतें बनाने में सबसे आगे बढ़े हुए थे। वे अपने मकानों में सिर्फ़ शीशे की खिड़कियाँ ही नहीं लगाते थे, बल्कि मकान के मध्य भाग में ऐसी व्यवस्था भी करते थे, जिससे सारा मकान गर्म रहता था। ईंटों, पत्थरों और मसालों का बना हुआ उनका काम इतना पक्का और मज़बूत है कि इतना समय बीत जाने पर भी उनका बहुत-सा अंश अभी तक ज्यों-का-त्यों बना है। फिर सबसे बढ़कर उन्हें एक ऐसी समस्या का सामना करना पड़ा था, जो स्वयं यूनानियों के सामने भी नहीं उपस्थित हुई थी। वह समस्या यह थी कि इतनी बड़ी-बड़ी खाली जगहें किस तरह भरी जायँ। इस समस्या का निराकरण उन लोगों ने बड़ी-बड़ी गोल मेहराबें, मेहराबदार छतें और गुंबद आदि बनाने की युक्तियाँ निकालकर किया था। पैंथियन नाम की इमारत, जो एग्रिप्पा ने बनवाई थी, गुंबददार इमारतों का आदर्श है, और अभी तक ज्यों-की-त्यों खड़ी है।

विज्ञान की अन्य शाखाओं में रोम ने केवल यूनान के दिखलाए हुए मार्ग का ही अनुसरण किया था। यह ठीक है कि सीज़र ने ३६५ दिनोंवाले साल और अधिमासवाली गणना का रोम में प्रचार करके एक वास्तविक सुधार किया था, और आगस्टस ने सारे साम्राज्य की नाप या पैमाइश कराई थी। पर रोम में कभी कोई ऐसा वैज्ञानिक अथवा वैज्ञानिक लेखक नहीं हुआ, जो प्रथम श्रेणी में रक्खा जा सके। इस प्रकार के जितने लोग वहाँ हुए, वे सब दूसरी ही श्रेणी में रखने योग्य थे। यहाँ तक कि चिकित्सा-शास्त्र-जैसा महत्त्व-पूर्ण विज्ञान भी उन्होंने यूनानियों के ही हाथ में

छोड़ दिया था। पर और-और क्षेत्रों में रोमनों ने अवश्य ही बहुत काम किया था। उन्होंने अपने नगरों में नल और मकानों में पनाले आदि बनाने में बहुत अधिक परिश्रम किया था, और सार्वजनिक स्वास्थ्य ठीक रखने के लिये बहुत बड़े-बड़े काम किए थे। सबसे पहले उन्होंने अपने सैनिकों के लिये और तब बाद में सामान्य नगर-निवासियों के लिये ऐसे विशिष्ट स्थान बनवाए थे, जिनमें रोगी और विकलांग लोग रह सकें। इस प्रकार मानो अस्पतालों की प्रथा चलाई थी। आगे चलकर ईस्वी चौथी शताब्दी में और उसके बाद ईसाई पादरियों ने इस प्रथा का बहुत अधिक विकास किया था, जिससे अंत में इस प्रथा ने आधुनिक योरप के जीवन में एक विशेष स्थान प्राप्त कर लिया।

रोम ने संसार को जो सबसे अधिक महत्त्व की वस्तु प्रदान की, वह उनका दीवानी क़ानून है। फ़ौजदारी क़ानून में उन अपराधों के लिये दंड नियत किए जाते हैं, जो स्वयं राष्ट्र के प्रति होते हैं; जैसे हत्या, चोरी, राजद्रोह आदि। ऐसे क़ानून प्रत्येक देश और प्रत्येक युग में अलग-अलग हुआ करते हैं। जिस युग और जिस देश में इस प्रकार के अपराधों से जनता को बचाने के संबंध में लोगों की जैसी धारणा होती है, वैसे ही फ़ौजदारी क़ानून वे लोग बनाते हैं; और समाज को ऐसे अपराधों से बचाने के लिये वे अपनी समझ से जो उपाय सर्वश्रेष्ठ समझते हैं, वही वे लोग काम में लाते हैं। इस विषय में हम साधारणतः यही कह सकते हैं कि ज्यों-ज्यों समाज अधिक उन्नत होता जाता है, त्यों-त्यों उसके फ़ौजदारी क़ानूनों में से निर्दयता और कठोरता कम होती जाती है। दीवानी क़ानून वह कहलाता है, जिसमें संपत्ति, उत्तराधिकार, व्यापार और नागरिकों के साधारण अधिकारों से संबंध रखनेवाले नियम आदि होते हैं। यह बात स्पष्ट ही है कि मनुष्यों के पारस्परिक लेन-देन और व्यवहार

आदि के संबंध में जैसा न्याय किया जाता है, मनुष्यों का सामान्य जीवन भी वैसा ही रक्षित और सुख-पूर्ण होता है।

रोमनों का दीवानी क़ानून एक साथ एक ही समय में नहीं बन गया था, बल्कि धीरे-धीरे और समय पाकर बना था। एक के बाद एक, इस प्रकार बहुत-से क़ानूनदाँ लोगों और मजिस्ट्रेटों ने मिलकर उसका विकास किया था। वे लोग पुराने न्यायाधीशों के निर्णयों और निश्चित किए हुए नियमों आदि का प्रयोग करते थे, और नए मुक़द्दमों में आवश्यकतानुसार बहुत कुछ परिवर्तन और परिवर्धन आदि भी करते थे। जिस समय रोमन-प्रजातंत्र का अंत हुआ था, उस समय तक इस विषय का बहुत कुछ विस्तार हो चुका था; पर फिर भी उस समय तक दीवानी क़ानून का कोई निश्चित और स्थिर स्वरूप प्रस्तुत नहीं हुआ था। हाँ, हेड्रियन के समय में उसे एक निश्चित स्वरूप दिया गया था, और बड़े-बड़े क़ाबिल क़ानूनदाँ लोगों को यह अधिकार दिया गया था कि वे निश्चित करें कि पुराने नियमों और क़ानूनों आदि का क्या अर्थ और क्या अभिप्राय है। उसी समय से रोमन-क़ानून कुछ निश्चित नियमों के संग्रह के रूप में मान्य होने लगा। इसके उपरांत कुछ तो समय-समय पर पेचीले मुक़द्दमों में बड़े-बड़े क़ानून-पेशा लोगों से उनकी राय माँगी जाती थी, और कुछ मुक़द्दमों में अपील की सबसे बड़ी अदालत अर्थात् स्वयं सम्राट् और उसकी कौंसिल के निर्णय हुआ करते थे। इन्हीं दोनो बातों के योग से इस दीवानी क़ानून का धीरे-धीरे विकास होने लगा। पर यह उन्हीं नियमों और क़ानूनों आदि का विकास था, जो पहले से साम्राज्य में प्रचलित थे।

रोमन-क़ानून में कई बड़ी-बड़ी विशेषताएँ थीं। वह सर्वांग-पूर्ण था, उसमें प्राचीन प्रथाओं और निश्चित अधिकारों का आदर किया जाता था, और मनुष्यों के पारस्परिक व्यवहार में

समानाधिकार का पूरा-पूरा ध्यान रक्खा जाता था। रोमन लोग कभी उन नई बातों या प्रयोगों को पसंद नहीं करते थे, जिनका संबंध लोगों के सामान्य जीवन से होता था। वे समझते थे, यदि मनुष्यों को इस बात का ज्ञान नहीं होगा कि हमारे कौन-कौन-से निश्चित अधिकार हैं, तो उनका जीवन अरक्षित और कष्टकर हो जायगा। वे यह बात बहुत अच्छी तरह समझते थे कि प्रत्येक मनुष्य को अपने साथ उचित और न्याय-पूर्ण व्यवहार कराने का पूरा-पूरा अधिकार है। इसी का यह परिणाम था कि इन्होंने ऐसा सुंदर दीवानी क़ानून बनाया था, जो इतना अधिक बुद्धिमत्ता-पूर्ण, न्यायोचित और सर्वांग-पूर्ण था कि अभी तक योरप के अधिकांश देशों के क़ानून उसी के आधार पर बने हुए हैं। यहाँ तक कि आजकल भी वहाँ जो लोग क़ानून सीखना चाहते हैं, उन्हें पहले रोमन-क़ानून के सिद्धांतों का अध्ययन करना पड़ता है।

अब हम संक्षेप में यह बतलाना चाहते हैं कि आगस्टस ने जो शासन-प्रणाली प्रचलित की थी, उसका विकास या सुधार उसके उत्तराधिकारी सम्राटों ने किन-किन दिशाओं में किया था—

(१) धीरे-धीरे सम्राट् के अधिकार बढ़ते गए, और मंत्रियों, कौंसिलरों आदि का उनमें हस्तक्षेप करने का अधिकार घटता गया। आगस्टस ने यह एक बुद्धिमत्ता-पूर्ण कार्य किया था कि पुरानी प्रजातंत्री प्रणाली की बहुत-सी बातों को उन्हीं पुराने रूपों में रहने दिया था, और सिनेट तथा मजिस्ट्रेटों के हाथ में कुछ अधिकार रहने दिए थे। पर ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, त्यों-त्यों मजिस्ट्रेटों और सिनेट के नए सदस्यों के निर्वाचन का अधिकार सम्राट् के हाथ में आता गया। रोम और इटली में जो सबसे अधिक महत्त्व के सरकारी पद आदि होते थे, उन पर स्वयं सम्राट् के नियुक्त किए

हुए आदमी ही काम करते थे। ऐसे लोग 'प्रिफेक्ट्स' कहलाते थे, जिसका अर्थ होता है कमांडर या सेनापति। इस प्रकार के प्रिफेक्ट्स नगरों में, सम्राट् की अंगरक्षक सेनाओं में, जहाज़ी बेड़ों में, अनाज की मंडियों में और आग बुझानेवाले दलों में होते थे। धीरे-धीरे इन राजकर्मचारियों का महत्त्व बराबर बढ़ता गया, और पुराने मजिस्ट्रेटों, कांसलों और प्रायटरों आदि का अधिकार धीरे-धीरे घटता गया। हेड्रियन ने साम्राज्य का शासन करने के लिये अपनी एक अलग कमेटी बनाई थी, जो बड़े-बड़े राजकर्मचारियों की एक प्रकार की प्रिवी कौंसिल थी। आगस्टस ने जो सिविल सर्विस की प्रथा चलाई थी, उससे आगे चलकर एक ऐसी नियमित व्यवस्था उत्पन्न हुई, जिसमें राजकर्मचारियों का, उनके कार्यों के महत्त्व के अनुसार, एक निश्चित क्रम बन गया; और उन राजकर्मचारियों की पद-वृद्धि केवल सम्राट् ही कर सकता था। अब तक एकतंत्री शासन में जो कुछ कमी थी, वह डायोक्लेशियन ने पूरी कर दी। अब रोम के मजिस्ट्रेटों और सिनेट के सदस्यों अथवा सिनेट की प्रायः वही हैसियत रह गई, जो आजकल साधारणतः नगरों की म्युनिसिपल अथवा इसी प्रकार की और किसी कमेटी या कौंसिल की होती है। साम्राज्य के शासन के आदि से अंत तक सभी काम केवल सम्राट् और उसके द्वारा नियुक्त कर्मचारियों के हाथों ही होने लगे।

(९) परवर्ती सम्राटों ने, विशेषतः क्लाडियस तथा फ्लेवियन सम्राटों ने, वे अधिकार प्रांतों की प्रजा को भी प्रदान कर दिए, जो अब तक केवल रोम के नागरिकों को ही प्राप्त थे। इस काम में जो कुछ कमी रह गई थी, वह सम्राट् करकल्लाकोस्न (२१२ ई०)-वाली उस राजकीय घोषणा से पूरी हो गई, जिसमें उसने अपने समस्त साम्राज्य के स्वतंत्र नागरिकों को (गुलामों को

छोड़कर) नागरिकता के वे सब अधिकार प्रदान कर दिए थे, जो स्वयं रोमन नागरिकों को प्राप्त थे। साथ ही इसका मतलब यह भी समझना चाहिए कि रोमन-क़ानून सारे रोमन-साम्राज्य में समान रूप से प्रचलित हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि अब साम्राज्य के कामों में रोम और इटली का पहले के समान महत्त्व नहीं रह गया, बहुत कुछ कम हो गया। डायोक्लेशियन ने ही सबसे पहले इटली के साथ, शेष सब प्रांतों के समान ही, व्यवहार करना आरंभ किया, और इटली पर भी और प्रांतों के समान ही राजकर लगाया था। इससे पहले इटली पर किसी प्रकार का राजकर नहीं था। इसके उपरांत जिस स्थान पर पहले बाइज़ैंटियम-नगर बसा था, उसी स्थान पर कांस्टेंटाइन ने अपने नाम पर कांस्टेंटिनोपल या .कुस्तुंतुनिया-नामक नया नगर बसाया था, जिसका महत्त्व आगे चलकर सभी बातों में रोम के महत्त्व से बहुत बढ़ गया। उसके बाद जो सम्राट् हुए, वे प्रायः रोम में नहीं, बल्कि और-और स्थानों (जैसे रेवेना और पेविया) में जाकर रहा करते थे। इसके बाद योरप में बहुत दिनों तक रोम का महत्त्व बहुत कुछ घटा रहा, उसकी गणना दूसरी श्रेणी के नगरों में होती रही। फिर जब ईसाई पोपों का अधिकार बहुत बढ़ गया, और उन्होंने रोम को ही अपना प्रधान निवासस्थान बना लिया, तब कहीं जाकर रोम को फिर वह अपना पुराना महत्त्व प्राप्त हुआ।

(३) ज्यूलियन तथा उनके उत्तराधिकारी सम्राटों के शासन-काल में प्रांतों को रोमन ढंग का बनाने का काम बराबर ज़ोरों से जारी रहा। श्रेष्ठतम वर्ग के रोमन नागरिक अब प्रायः इटली में नहीं, बल्कि उसके बाहरी प्रांतों में अधिक संख्या में पाए जाते थे। प्रांतों के व्यापार, शिल्प और विद्यालयों आदि का विशेष

विकास और उन्नति होने लगी। परंतु साम्राज्य के आरंभिक दो सौ वर्षों के अंत में हमें कुछ ऐसे लक्षण दिखाई पड़ते हैं, जिनसे सूचित होता है कि प्रांतों के जीवन में धीरे-धीरे कुछ दोष आने लग गए थे। प्रांतीय प्रजा अब केवल रोम की अच्छी बातों की ही नक़ल नहीं करती थी, बल्कि बुरी बातों की भी नक़ल करने लग गई थी। अब प्रांतीय निवासी भी ऐसे एंफी थिएटर बनाने लग गए थे, जिनमें भीषण रक्तपात-युक्त द्वंद्व-युद्ध आदि होते थे, जिन्हें देखकर लोग अपना मनोरंजन करते थे। धीरे-धीरे ऐसे आदमियों का मिलना कठिन होने लगा, जो नगर के शासन का कार्य अपने हाथ में ले सकें। अब प्रांतों में साम्राज्य के प्रति पहले का-सा अनुराग भी नहीं रह गया था। सन् २०० ई० के बाद, हम देखते हैं, प्रांतीय प्रजाएँ सहज में उसी को सम्राट् मानने के लिये तैयार हो जाती थीं, जो साम्राज्य के केंद्र के पास रहकर अपना दावा पेश करता था। साम्राज्य के शासन में उनका कोई अंश नहीं होता था; और इसीलिये उन्हें इस बात की भी कोई परवा नहीं होती थी कि हम पर कौन शासन करता है। सीज़र की पूजा अब केवल ढोंग के रूप में रह गई थी, उसका सारा प्रभाव नष्ट हो गया था। युद्धों, विद्रोहों और आक्रमणों के कारण जनता पर कर का भार बहुत बढ़ गया था। जो लोग प्रांतों में उच्च तथा उत्तरदायित्व-पूर्ण पद ग्रहण करते थे, उनके प्राणों पर संकट आने की सदा आशंका बनी रहती थी। डायोक्लेशियन और उसके उत्तराधिकारियों के समय में साम्राज्य के प्रमुख व्यक्तियों के पीछे गुप्तचर लगाने की प्रथा भी बहुत बढ़ गई थी। इस आशय के भी कुछ उल्लेख मिलते हैं कि कांस्टेंटाइन के समय में बहुत-से लोग नगर की कौंसिलों में तथा स्थानिक पदों पर काम करने से अपनी जान बचाने के लिये केवल सेनाओं में ही नहीं भरती होने लगे थे, बल्कि

बहुत-से लोग अपनी ख़ुशी से ग़ुलाम तक बनने लग गए थे। इस प्रकार प्रांतों की अवस्था बिगड़ने लगी, उनके नगरों का जीवन दूषित होने लगा। अब साम्राज्य बहुत ज़्यादा पके और सड़े हुए फल के समान हो गया था।

(४) ये सब बातें सन् २०० ई० से पहले नहीं हुई थीं। तब तक रोमन-साम्राज्य का उन्नति-युग था, तब तक वहाँ बड़े-बड़े और योग्य सम्राट् होते थे। पर आरेलियस के बाद साम्राज्य के इतिहास में परिवर्तन होने लगा, वहाँ बड़े-बड़े सैनिक-विद्रोह होने लगे। साथ ही साम्राज्य पर बाहर से बर्बरों के आक्रमण भी होने लगे। इन दोनो ही बातों का वास्तव में परस्पर कुछ संबंध है। ज्यों-ज्यों कोई साम्राज्य निर्बल होता जाता है, त्यों-त्यों शत्रुओं का उस पर आक्रमण करने का लोभ बढ़ता जाता है, और तब बाहरी आक्रमणों के कारण साम्राज्य की लड़ने-भिड़ने और मुक़ाबला करने की शक्ति भी कम होती जाती है। अब साम्राज्य में बहुत जल्दी-जल्दी नए सम्राट् सिंहासन पर बैठाए और राज्य-च्युत किए जाने लगे थे। सम्राटों को सिंहासन पर बैठाने और उतारने का काम या तो सम्राटों की अंगरक्षक सेना करती थी, या प्रांतीय सेनाएँ करती थीं, और कभी-कभी सिनेट भी ऐसा कर बैठती थी। इसका मुख्य कारण यही था कि आरंभ से ही कभी यह सिद्धांत स्थापित नहीं हुआ था कि पिता के मरने के बाद उसका सिंहासन उसके पुत्र को ही मिलना चाहिए। इसलिये जब कोई सम्राट् मरता था, तब सिद्धांततः लोगों के सामने यह प्रश्न उठ खड़ा होता था कि उसका उत्तराधिकारी कौन बने। ज्यूलियन लोगों ने यह कठिनता दूर करने का यह प्रयत्न किया था कि जिन लोगों को वे अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहते थे, उन्हें पहले से ही विशेष रूप से सम्मानित करना आरंभ कर देते थे। नरवा और उसके उत्तराधिकारियों ने इसके लिये

यह उपाय निकाला था कि जिसे वे अपना सिंहासन देना चाहते थे, उसे पहले से ही चुनकर शासन-संबंधी बड़े-बड़े कार्यों में सम्मिलित करने लगते थे, और समय आने पर वही शासक सम्राट् का उत्तराधिकारी होता था। डायोक्लेशियन ने इसके लिये कुछ और भी विस्तृत व्यवस्था की थी। उसने एक आदमी को 'आगस्टस' की सर्वश्रेष्ठ पदवी देकर राजकार्यों में अपना साझेदार बना लिया था। इसके अतिरिक्त उसने दो और आदमियों को सीजर की उपाधि दी थी, जो उप-सेनापतियों के रूप में काम करते थे। अंत में साम्राज्य पूर्वी और पश्चिमी, इन दो भागों में विभक्त हो गया। पर फिर भी इस समस्या का कभी कोई निराकरण नहीं हुआ। साम्राज्य पर सदा किसी एक ही आदमी का शासन रहता और उसका वह शासन केवल सैनिक शक्ति पर निर्भर रहता था। सन् २०० ई० के बाद से कुछ यह प्रथा-सी चल गई थी कि जिसमें अधिक शक्ति होती थी, वही राजसिंहासन पर अधिकार कर बैठता था।

सैनिक-विद्रोहों का परिणाम यह हुआ कि सीमा-प्रांतों की रक्षा का धीरे-धीरे कुछ भी प्रबंध न रह गया। ट्रेजन, हेड्रियन और आरेलियस ने तो साम्राज्य की सैनिक-रक्षा पर बहुत अधिक ध्यान दिया था। वे अपना अधिकांश समय अपनी सेनाओं की व्यवस्था में ही लगाया करते थे। हेड्रियन ने सीमाओं की रक्षा के लिये उन पर जगह-जगह क़िले बनवाए थे, और कुछ स्थानों पर लगातार बहुत दूर तक बड़ी-बड़ी दीवारें भी बनवाई थीं। इस प्रकार की एक दीवार उसने ब्रिटेन में कारलाइल के उत्तर में एक सिरे से दूसरे सिरे तक बनवाई थी, जिसमें पिक्ट और स्काट लोग आक्रमण न कर सकें। पर जब सन् २०० ई० के बाद रोम और इटली दिन-पर-दिन अधिक निर्बल होने लगे, तब सेनाओं और उनके सेनापतियों का विद्रोह करने का हौसला बहुत बढ़ने लगा।

इस कारण सारे साम्राज्य में अव्यवस्था फैल गई, और वे सेनाएँ बहुत कमज़ोर हो गईं, जो मुख्यतः प्रांतों की रक्षा करने के लिये रक्खी जाती थीं। डायोक्लेशियन और कांस्टेंटाइन ने इस प्रकार के विद्रोहों को कम करने के लिये कुछ विशिष्ट उपाय किए थे। उन्होंने प्रांतों की गवर्नरी बाँट दी थी, और प्रांतों के शासन का कार्य एक आदमी को और सेना का सेनापतित्व दूसरे आदमी को सौंपा था। पर इसका भी परिणाम केवल यही हुआ कि सभी प्रांतों में इन दोनो मुख्य अधिकारियों में परस्पर ईर्ष्या-द्वेष बढ़ने लगा ; और बाहरी शत्रुओं का सामना करने की जो बची-खुची शक्ति थी, वह भी धीरे-धीरे कम होने लगी।

इस प्रकार सन् २०० ई० के बाद से बाहरी आक्रमणों का युग आरंभ हुआ। ये आक्रमण पूर्व की ओर से भी होते थे और उत्तर की ओर से भी। सन् २५० ई० के लगभग तो साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने लग गया था। कुछ सम्राटों ने इस स्थिति को सुधारने और आपत्तियों से साम्राज्य की रक्षा करने के लिये विकट परिश्रम किया था ; पर उनके प्रयत्नों का कुछ भी फल नहीं हुआ। यह क्षय स्वयं साम्राज्य के केंद्र से आरंभ हुआ था, और बराबर बाहर की ओर फैलता जाता था। आक्रमणकारी सैनिक ताज़े भी होते थे, और उनके आक्रमण भी बहुत भीषण होते थे, और साम्राज्य में उन आक्रमणों को सहने की कुछ भी शक्ति नहीं रह गई थी। अब रोम के इतिहास में यदि कोई बतलाने योग्य बात रह गई है, तो वह यही कि किस प्रकार बर्बरों ने उस पर आक्रमण किए, और अंत में किस प्रकार उसका पूर्ण पतन हो गया।

---

५. बर्बरों के आक्रमण

बर्बरों के आक्रमणों के युग को प्रायः राष्ट्रों के भटकने का युग कहते हैं। उन दिनों मध्य और उत्तर योरप की जातियों और उनसे भी आगे की रूस और मध्य एशिया में बसनेवाली जातियों में एक विशेष प्रकार की हलचल-सी मची हुई थी, इसीलिये उन जातियों के लोग बड़े-बड़े दल बाँधकर अपने रहने के लिये नए स्थान ढूँढने निकल पड़े थे। वे दल चलते-चलते रोमन-साम्राज्य की सीमाओं के बाहर बसनेवाली जातियों के पास तक आ पहुँचे थे, जिसके कारण सीमाओं पर बसनेवाली वे जातियाँ रोमन-साम्राज्य के भीतरी भागों में पहुँचने लग गई थीं। इन लोगों की गति बाढ़-वाली नदी के समान होती थी। इन लोगों के भ्रमण आदि का इतिहास बहुत ही पेचीला है। कभी कुछ दल यहाँ निकल पड़ते थे, तो कभी कुछ दल वहाँ दिखाई देने लगते थे। कभी-कभी ऐसा भी होता था कि कुछ दल कई छोटे-छोटे भागों में विभक्त होकर भिन्न-भिन्न दिशाओं में चल पड़ते थे। आज गाल पर उनका आक्रमण होता है, तो कल स्पेन पर और परसों आफ्रिका या ब्रिटेन पर। पर सभी आक्रमणों में चाहे पहले हो और चाहे पीछे, रोमन और इटली की ही हानि होती थी। नाम के लिये इटली ही रोम-साम्राज्य का केंद्र था, और उसका नाम ही इन आक्रमणकारियों को बलात् अपनी ओर आकृष्ट कर लेता था।

बर्बरों का पहला आक्रमण आरेलियस के शासन-काल (सन् १६६ ई०) में हुआ था, जब कि मारकोमनी तथा कुछ दूसरी जातियाँ आकर डैन्यूबवाली सीमा के आस-पास के प्रदेशों पर फैल

गई थीं। लगातार तेरह वर्षों तक भीषण युद्ध करने के उपरांत रोमनों ने किसी प्रकार उन्हें अपने साम्राज्य की सीमा से निकाल बाहर किया था। पर फिर भी शांति-पूर्वक उन लोगों के साथ समझौता करने के विचार से आरेलियस ने उनमें से बहुत-से लोगों को साम्राज्य के अंगों के रूप में आकर बसने के लिये निमंत्रित किया, और उनसे कहा था कि जिन प्रांतों पर आप लोगों ने आक्रमण किया है, उनमें आकर आप लोग शांति-पूर्वक बस सकते हैं। यह एक बहुत महत्त्व-पूर्ण उदाहरण था, और परवर्ती सम्राटों ने बराबर इसका अनुकरण किया था। उस समय ऐसा करना आवश्यक भी था, क्योंकि सीमा-प्रांत की भूमि ग़ैर-आबाद तो रक्खी ही नहीं जा सकती थी। यदि वह भूमि ख़ाली और ग़ैर-आबाद रक्खी जाती, तो उन पर बर्बरों का आक्रमण और भी अधिक होता। पर आगे चलकर इसका परिणाम यह हुआ कि अधिकाधिक बर्बर आकर साम्राज्य में बसने लगे। ये लोग अन्यान्य नागरिकों की अपेक्षा बहुत उग्र और बलिष्ठ होते थे। धीरे-धीरे सीमा-प्रांतों की रक्षा करनेवाली सेनाओं में इन बर्बरों की संख्या बहुत बढ़ गई। अब ज्यों-ज्यों उनकी संख्या और महत्त्व बढ़ता गया, त्यों-त्यों उनके सरदार भी साम्राज्य के बड़े आदमियों में गिने जाने लगे। इस प्रकार धीरे-धीरे साम्राज्य, सेना और राजदरबार सभी बर्बरों से भरने और बर्बर होने लगे। अंत में केवल बाहरी बर्बरों की बाढ़ के कारण ही नहीं, बल्कि भीतरी सीमाओं में बसे हुए बर्बरों की शक्ति के कारण भी रोमन-साम्राज्य का अंत हो गया।

साम्राज्य को इन आक्रमणों का सामना करने के लिये जो प्रयत्न करने पड़ते थे, वे उसकी शक्ति के बाहर थे। विशेषतः पूर्व की ओर की अवस्था तो और भी शोचनीय हो गई थी, क्योंकि उधर आरमेनिया के अधिकार के लिये बराबर पारथिया या पारस के बड़े

राज्य के साथ युद्ध होता रहता था। फल यह हुआ कि इटली जल्दी-जल्दी बरबाद होने लगा। इटलीवालों के व्यापार का पूरा-पूरा नाश हो गया, और प्लेग तथा अकाल आदि के कारण वहाँ की आबादी बहुत कम हो चली। बड़े-बड़े ज़िले ग़ैर-आबाद पड़े रहने लगे। पर फिर भी आक्रमणकारी बराबर आते ही चलते थे। गाल, स्पेन तथा आफ्रि़का में बर्बरों ने स्वयं अपने राज्य स्थापित कर लिए थे, जो कहने के लिये तो साम्राज्य के अधीनस्थ प्रांत होते थे, पर वस्तुतः उनकी यह अधीनता तभी तक रहती थी, जब तक उनका कोई मतलब निकलता था। अंत में, सन् ४७६ ई० में, यहाँ तक नौबत आ पहुँची कि स्वयं इटली में ही बर्बरों का एक राज्य स्थापित हो गया। इस प्रकार मानो पश्चिमी साम्राज्य का अंत हो गया। सन् ५०० ई० में स्पेन और इटली में गाथिक-राज्य स्थापित हो गए, आफ़्रिका में एक वैंडल-राज्य स्थापित हो गया, गाल में क्लोविस का फ़्रांकिश-राज्य स्थापित हो गया, और ब्रिटेन में एक सैक्सन-राज्य स्थापित हो गया।

पर एक बात थी। वह यह कि यद्यपि पश्चिमी साम्राज्य का अंत हो गया था, किंतु पश्चिमी सभ्यता का अंत नहीं हुआ था। बर्बरों ने बहुत-सी चीज़ें नष्ट कर दी थीं, पर फिर भी वे सर्वनाश नहीं कर सके थे, और बहुत-सी चीज़ें उनके नाशक हाथों से बच रही थीं। ब्रिटेन में तो बर्बरों ने रोमनों का कोई चिह्न बाक़ी नहीं छोड़ा था, और सभी रोमन बातें नष्ट कर दी थीं, पर और सब स्थानों में, विशेषतः गाल में, उन्होंने रोमन सभ्यता की बहुत-सी बातें बनी रहने दी थीं। बल्कि कुछ दिनों बाद इन नवागंतुकों ने इन बातों को अपनाकर और इनमें थोड़ा-बहुत परिवर्तन करके उनका कुछ उपयोग करना आरंभ कर दिया था। ज्यों-ज्यों साम्राज्य दुर्बल होकर नष्ट होता गया, त्यों-त्यों रोम के ईसाई पोप उसके

स्थान पर अपना अधिकार करने और सभ्यता के संरक्षक बनने लगे। उन लोगों ने बर्बरों को भी ईसाई बनाना आरंभ किया। इस प्रकार उन्हें शिक्षा देने का अधिकार अपने हाथ में ले लिया। जब शिक्षा का सारा काम ईसाई पादरियों के हाथ में आ गया, तब उस नए युग में वे लोग रोमन-संस्कृति का प्रचार करने लगे। तब तक पश्चिमवालों ने जितनी बातें सीखी थीं, उन सबको पश्चिमी योरप में कई शताब्दियों तक केवल ईसाई पादरियों ने ही रक्षित रक्खा और नष्ट होने से बचाया था।

यह एक आश्चर्य की ही बात है कि रोम का पूर्वी साम्राज्य बहुत दिनों तक बना रहा। उसका विस्तार एड्रियाटिक सागर से फ़रात-नदी तक था, और वह पश्चिमी साम्राज्य की अपेक्षा अवश्य ही बहुत अधिक बलशाली और संपन्न था। यह ठीक है कि उसे बहुत दिनों तक पारस के साथ युद्ध करने में अनेक विपत्तियाँ भोगनी पड़ी थीं, और बहुत कुछ व्यय भी करना पड़ा था। उसके उत्तरी प्रांतों को ईस्वी पाँचवीं शताब्दी में हूणों और शकों ने ख़ूब लूटा, और बरबाद किया था; पर फिर भी सम्राट् जस्टीनियन (सन् ५२७-५६५ ई०) के शासन-काल में उसकी बहुत-सी क्षतियों की फिर से पूर्ति हो गई थी, और उसमें नवीन जीवन आ गया था। यद्यपि बलगेरियनों, स्लावनोनियनों और लोंबार्डों ने कई आक्रमण किए थे, पर फिर भी वे लोग किसी प्रकार कुस्तुंतुनिया तक नहीं पहुँचने दिए गए थे; और जस्टीनियन के दो बड़े सेनापतियों ने, जिनमें से एक का नाम बेलिसेरियस और दूसरे का नारसेस था, आफ्रिका में वैंडल-राज्य पर और इटली में गॉथिक-राज्य पर विजय प्राप्त कर ली थी। प्रायः दो सौ वर्षों तक इटली का एक बहुत बड़ा भाग पूर्वीय साम्राज्य का अधीनस्थ प्रांत बना रहा, जिसका शासन एक गवर्नर करता था, जो 'रेवना का एक्सआर्क' कहलाता था।

जस्टीनियन के शासन-काल में ही समस्त रोमन-क़ानूनों का एक बहुत बड़ा संग्रह तैयार किया गया था। उसके शासन-काल में और उसके बाद भी कुछ ही वर्षों के अंदर बाइज़ेंटाइन वास्तु-कला की सर्वश्रेष्ठ इमारतें बनी थीं, जिनमें से क़ुस्तुंतुनिया का सेंट सोफ़िया का गिरजा सबसे बढ़िया और अच्छा नमूना है। यह इमारत बिलकुल रोमन ढंग की बनी हुई है। इसके बीच में एक बड़ा गुंबद है। इसकी दीवारों पर पच्चीकारी और रँगसाज़ी का बहुत ही अच्छा काम किया हुआ है।

साम्राज्य पर एक और बहुत बड़ी विपत्ति मुसलमान अरबों के कारण आई थी (मुहम्मद साहब का जीवन-काल सन् ५६६-६३२ ई० था), जिन्होंने पारस पर विजय प्राप्त करके बग़दाद में अरब-साम्राज्य की स्थापना की थी, आफ़्रिका और स्पेन को जीत लिया था, रोमन-साम्राज्य के एशियाई प्रांतों को उससे अलग कर दिया था, और स्वयं क़ुस्तुंतुनिया पर भी जाकर घेरा डाल दिया था। पर इसके उपरांत अरबों में भी कई विभाग हो गए थे, जिससे उनकी शक्ति क्षीण होने लगी, और रोमन-साम्राज्य ने अपने थोड़े-से खोए हुए एशियाई प्रांतों को फिर से अपने अधिकार में कर लिया था। पूर्वी साम्राज्य सन् ६५० से ११०० ई० तक बना रहा, पर इस बीच में उसका बल भी धीरे-धीरे कम ही होता जाता था। उस पर प्रायः बलगेरियनों, हंगेरियनों, रूसियों और नारमनों के आक्रमण होते रहते थे। यहाँ तक कि अंत में योरप में उसके पास क़ुस्तुंतुनिया और उसके आस-पास के थोड़े-से प्रदेश को छोड़कर और कुछ भी बाक़ी नहीं बच रहा था। इस पूर्वी साम्राज्य में बिलकुल एशियाई ढंग का एकतंत्री राज्य था। सम्राट् प्रायः अपने प्रिय पात्रों के हाथ में ही रहते थे, और उन प्रिय पात्रों का आपस में जो ईर्ष्या-द्वेष चलता था, उसके कारण

शासन बराबर निर्बल होता जाता था। पूर्वी साम्राज्य ने एक तो जस्टीनियनवाला क़ानूनों का संग्रह तैयार किया था, और दूसरे कुछ बहुत बड़ी और अच्छी इमारतें बनवाई थीं। इसके अतिरिक्त उसने और कोई बड़ा काम नहीं किया था। उसके सम्मान की वृद्धि करनेवाली एक और बात यह है कि उसके विद्वानों ने बड़े-बड़े यूनानी लेखकों के ग्रंथों का यथेष्ट अध्ययन किया था, और उन्हें रक्षित रक्खा था। पर जब कुस्तुंतुनिया का पतन हो गया, तब पूर्व के बड़े-बड़े विद्वानों को पश्चिम की ओर आना पड़ा। वे अपने साथ अपने ग्रंथ आदि भी लेते आए थे, जिसके कारण पश्चिमी योरप में यूनानी विद्याओं का फिर से प्रचार आरंभ हुआ।

सन् १०५० ई० के लगभग तुर्क लोग कैस्पियन समुद्र के दक्षिणी प्रदेशों से निकले थे, और उन्होंने एशिया का बहुत बड़ा भाग जीत लिया था। उनका मुक़ाबला करने के लिये ईसाइयों ने धर्म-युद्ध आरंभ किए। इन धर्म-युद्धों का एक फल यह भी हुआ कि ईसाई धर्मयुद्धकारियों ने कुस्तुंतुनिया पर अधिकार कर लिया, और वहाँ एक लैटिन राज्य स्थापित किया, जो सन् १२०४ से १२६१ ई० तक रहा। उस समय पूर्वी साम्राज्य स्वतंत्र तो हो गया, पर उसे वह अपनी पुरानी शक्ति फिर से नहीं प्राप्त हुई। पूर्वी साम्राज्य में जो कुछ बच रहा था, उसे आक्रांत करने के लिये सन् १३०० ई० में तुर्कों की एक नई लहर उठी। कुछ समय के लिये उनकी गति तैमूर ने रोकी थी, जो सन् १३७० ई० में पूर्वी एशिया से अपने साथ बहुत-से मंगोलों या तातारों को लेकर निकला था, और जिसने उस्मानी तुर्कों के सुलतान को सन् १४०२ में परास्त किया था। जब तैमूर की मृत्यु हो गई, और मंगोलों का कोई भय न रह गया, तब उस्मानी तुर्क लोग

फिर आक्रमण करने के लिये निकले, और सन् १४५३ ई० में उन्होंने कुस्तुंतुनिया पर अधिकार कर लिया इस प्रकार पूर्वी साम्राज्य का सदा के लिये अंत कर दिया। यदि सच पूछिए, तो पूर्वी साम्राज्य की और सब बातें तो बहुत पहले ही नष्ट हो चुकी थीं, और उस समय तक उसका केवल नाम बचा रह गया था, पर इस बार वह नाम भी मिट गया।

इस पूर्वी साम्राज्य का पूरा इतिहास बतलाने के लिये हमें आधुनिक काल तक आ पहुँचना पड़ा है। अब हम चाहते हैं, यहाँ संक्षेप में उस ईसाई-धर्म का भी कुछ इतिहास बतला दें, जिसने पुराने रोमन-साम्राज्य के पश्चिमी भाग का स्थान ग्रहण किया था। प्रायः तीन सौ वर्षों तक चारो ओर से ईसाई-धर्म को नष्ट करने या अधिक-से-अधिक हानि पहुँचाने का ही प्रयत्न होता रहा था। रोमन-साम्राज्य के नगरों में कभी-कभी तो यहाँ तक होता था कि नगर की अशिक्षित जनता बलवा खड़ा कर देती थी, और कहती थी कि ईसाई लोग एंफी थिएटर में जंगली शेरों के सामने छोड़ दिए जायँ, और कभी-कभी स्वयं सम्राट् ही ईसाइयों को कुचल डालने के अनेक प्रयत्न करते थे। जैसा कि हम पहले बतला चुके हैं, रोम कभी अपनी प्रजा के धर्म में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करता था, यहूदियों के धर्म में उसने कभी कोई बाधा नहीं डाली थी। पर ईसाई-धर्म के संबंध में कठिनता यह थी कि वह किसी विशिष्ट जाति या राष्ट्र का धर्म नहीं था। ईसाई-धर्म साधारणतः एक सामान्य समाज के रूप में होता था, इसलिये सम्राट् उसकी ओर से सदा सशंकित रहा करते थे। ईसाई लोग भी जब गिरफ़्तार किए जाते थे, तब राज्य के देवताओं या सम्राट् की जीनियस की पूजा करने और उनके आगे बलिदान आदि चढ़ाने से साफ़ इनकार कर देते थे। इसलिये वे लोग राष्ट्रद्रोही और देवद्रोही ठहराए जाते थे, और

उन्हें प्राण-दंड मिलता था। इसीलिये ईसाई-धर्म पर समय-समय पर बड़ी-बड़ी विपत्तियाँ आया करती थीं, और उसके अनुयायियों को अनेक प्रकार के कष्ट भोगने पड़ते थे। लेकिन इतना सब कुछ होने पर भी ईसाई-धर्म के अनुयायियों की संख्या बराबर बढ़ती जाती थी, और उसका प्रभाव विस्तृत होता जाता था। ईसाई लोग कहा करते थे कि हमारे धर्म का केवल इसीलिये प्रचार हो रहा है कि उस पर अनेक प्रकार के प्रहार होते हैं, और शहीदों का ख़ून ही ईसाई-धर्म का बीज है।

ईसाई-धर्म ने लोगों को वही चीज़ दी थी, जिसकी संसार को सन् २०० ई० से सबसे अधिक आवश्यकता चली आ रही थी। अर्थात् (१) जीवन में आशा। उन दिनों ऐसा जान पड़ता था कि सभी चीज़ें नष्ट-भ्रष्ट होती चली जा रही हैं, और ईसाई-धर्म लोगों को यह बतलाता था कि प्रेममय ईश्वर भी कोई चीज़ है, और मृत्यु के उपरांत भी एक प्रकार का जीवन होता है। (२) जीवन-निर्वाह का एक ऐसा ढंग, जिसे सभी लोग काम में ला सकते थे। स्टोइक दर्शन तो केवल कुछ थोड़े-से चुने हुए और शिक्षित आदमियों के लिये ही होता था, पर ईसाई-धर्म सब लोगों को यह सिखलाता था कि चाहे वे किसी श्रेणी और किसी वर्ग के हों, ईसा के आदर्श पर चलकर आपस में एक दूसरे के साथ प्रेम करना चाहिए, और सबको एक दूसरे की सेवा करनी चाहिए, और ईसा की कृपा से सब लोग ऐसा कर भी सकते हैं। (३) एक ऐसा समाज, जिसमें सभी लोग सम्मिलित होकर सुख-पूर्वक जीवन-निर्वाह कर सकते थे। जो पुराना साम्राज्य इधर अनेक शताब्दियों से चला आ रहा था, वह अब ढहने लग गया था; पर ईसाई-धर्म देखने में ऐसा जान पड़ता था कि दृढ़ता-पूर्वक अपने स्थान पर खड़ा रहेगा। नए युग में चारो ओर युद्ध और अव्यवस्था

ही दिखाई देती थी, एकता का कहीं नाम भी नहीं दिखाई देता था। यदि कहीं एकता थी, तो ईसाई-धर्म में जो किसी प्रकार का जातीय या राष्ट्रीय विभेद नहीं मानता था। इस प्रकार ईसाई-धर्म धीरे-धीरे एक देश से दूसरे देश में फैलने लगा, और एक वर्ग की देखादेखी दूसरे वर्ग भी उसे अपनाने लगे। यहाँ तक कि अंत में सम्राट् कांस्टैंटाइन ने उसे अपने सारे साम्राज्य का (जिसमें पूर्वी और पश्चिमी दोनो ही विभाग सम्मिलित थे) राजकीय धर्म बना लिया। बस तभी से ईसाई-धर्म की शक्ति बहुत अधिक बढ़ने लगी, और पश्चिम में रोम-सरीखे नगरों के पादरी और पूर्व में कुस्तुंतुनिया, अलकंदरिया, एंटियोक और एफ़िसस आदि नगरों के पादरी प्रत्येक व्यक्ति की दृष्टि में विशेष रूप से आदरणीय हो गए, और उनका महत्त्व बहुत बढ़ गया।

ईस्वी ग्यारहवीं शताब्दी में रोम और कुस्तुंतुनिया के पादरियों में आपस में कई झगड़े हो गए, जिनके कारण चर्च दो भागों में विभक्त हो गया। इनमें से एक विभाग पूर्वी था और दूसरा पश्चिमी। पूर्वी साम्राज्य में तो चर्च राज्य के अधिकार में चला गया, और वहाँ यह तब तक साम्राज्य का एक विभाग ही बना रहा, जब तक उस साम्राज्य का अंत नहीं हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि चर्च का जीवन दुर्बल होने और उसका कल्याणकारी प्रभाव घटने लगा। यदि पूर्वी चर्च से आधुनिक योरप को कोई बड़ी चीज़ मिली थी, तो वह केवल साधुओं या मठों के जीवन की प्रणाली थी। पूर्व के एक बड़े पादरी ने, जिसका नाम बेसिल था (और जिसकी मृत्यु सन् ३७९ ई० में हुई थी), कई ऐसे मठ या आश्रम स्थापित किए थे, जिनमें पुरुष और स्त्रियाँ सब प्रकार के सांसारिक व्यवहारों का परित्याग करके निवास करती थीं, और केवल अध्ययन तथा ईश्वराराधन में अपना जीवन बिताती थीं। पूर्व में इस प्रणाली का महत्त्व

बहुत बढ़ गया था, और बेनेडिक्ट (ईस्वी छठीं शताब्दी) ने इस प्रणाली का अनुकरण करके पश्चिम में भी इसका प्रचार किया था, और एक प्रकार के संसारत्यागी साधुओं का संप्रदाय चलाया था, जो बेनेडिक्टाइन कहलाता था। तब से पश्चिमी योरप में सभी स्थानों पर ईसाई साधुओं के मठ या आश्रम स्थापित होने लगे, जिन्होंने जनता का बहुत अधिक कल्याण किया।

पश्चिम में साम्राज्य का बहुत जल्दी पतन हो गया था, इसलिये वहाँ चर्च सदा अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने में समर्थ रहा, और चर्च तथा रोम के पादरियों की शक्ति बहुत अधिक बढ़ गई। बहुत दिनों तक उनकी यह शक्ति इतनी प्रबल रही कि और कोई शक्ति उसका मुक़ाबला ही नहीं कर सकती थी। योरप में सबसे अधिक प्रभाव उसी का था। पर धीरे-धीरे पोपों की उच्चाकांक्षा बहुत बढ़ती गई। अब वे और भी अधिक शक्ति अपने हाथ में करना चाहते थे, और धार्मिक विषयों के अतिरिक्त अन्यान्य विषयों पर भी अपना अधिकार बतलाना चाहते थे। पूर्व और पश्चिम के ईसाई-धर्म का इसीलिये विभाग हुआ था। पश्चिम में पोप लोग सदा राजों और बादशाहों से लड़ते-झगड़ते रहते थे, इसीलिये वहाँ धार्मिक भावों का जैसा चाहिए था, वैसा प्रचार नहीं हो सकता था। राजों और बादशाहों के साथ पोपों के जो लड़ाई-झगड़े होते थे, वे आधुनिक काल के इतिहास से संबंध रखते हैं, इसलिये हम यहाँ उन लड़ाई-झगड़ों का कोई उल्लेख नहीं करते। पर रोम का इतिहास समाप्त करते समय हम यहाँ दो मुख्य बातें बतला देना चाहते हैं—

(१) चर्च बहुत-सी बातों में रोमन-साम्राज्य का बहुत बड़ा ऋणी था। ईसाई-धर्म का इतनी जल्दी और इतना अधिक प्रचार केवल इसलिये हो सका था कि रोमनों ने अपने साम्राज्य में बहुत-सी और बड़ी-बड़ी सड़कें पहले से ही बना रक्खी थीं। रोमनों ने

यूनानी दर्शन बहुत दिनों से रक्षित रक्खा था, और चर्च ने उसी दर्शन का उपयोग करके लोगों को यह बतलाया था कि यह दर्शन लोगों को क्या-क्या सिखलाता है। रोमनों ने अपने राज्य में क़ानून और शासन की जो प्रणाली चलाई थी, उसी को आदर्श मानकर चर्च ने भी उसका अनुकरण किया था। फिर जब रोमन-साम्राज्य की कृपा से लोगों में एक साम्राज्य का भाव और धारणा अच्छी तरह फैल चुकी थी, और वे लोग एक विश्वजनीन धर्म या 'कैथोलिक' चर्च की धारणा ग्रहण करने के लिये भी तैयार हो चुके थे।

(२) रोम ने यूनान से जिस सभ्यता की शिक्षा पाई थी, और जिसका उसने अपने ढंग से विकास किया था, उस सभ्यता को सैकड़ों वर्षों तक चर्च ने ही योरप के लिये रक्षित रक्खा था। सैकड़ों वर्षों तक योरप में उस शिक्षा को छोड़कर, जो चर्च की ओर से लोगों को दी जाती थी, जनसाधारण के लिये और किसी प्रकार की शिक्षा का कुछ भी प्रबंध नहीं था। स्वयं ईसाई-धर्म की और व्याकरण, गणित, तर्क, दर्शन आदि सभी विषयों और शास्त्रों की जो कुछ शिक्षा लोगों को दी जाती थी, वह सब चर्च के ही द्वारा दी जाती थी। किसी व्यक्ति अथवा संस्था की ओर से किसी को और किसी प्रकार की शिक्षा नहीं दी जाती थी। सभी विद्यालयों और विश्वविद्यालयों की स्थापना तथा संचालन केवल चर्च के ही द्वारा होता था। चर्च की ओर से लोगों को इस प्रकार की जो शिक्षा दी जाती थी, वह बहुत-सी बातों में उसी संस्कृति के आधार पर होती थी, जो रोमन संसार में रोम के पतन से पहले वर्तमान थी। इस प्रकार ईसाई-धर्म ने पश्चिम में नवीन युग आने पर प्राचीन सभ्यता का प्रचार किया था, और उस सभ्यता को नष्ट होने से बचाकर आधुनिक योरप को सौंप दिया था। पूर्व के प्रकरणों में जो कुछ कहा गया है, उससे पाठकों ने समझ लिया होगा कि आजकल

का पाश्चात्य जगत् उस सभ्यता का कितना और कैसा ऋणी है। एक बहुत बड़े आधुनिक विद्वान ने एक स्थान पर यह सारी बात इस प्रकार संक्षेप में कही है—"आजकल हम लोग जिसे सभ्यता कहते हैं, उसका मूल तो यूनानी है पर तत्त्व लैटिन। हम लोग यूनानियों की तरह नहीं, बल्कि रोमनों की तरह विचार और रचना करते और शब्दों तथा कार्यों में अपने भाव प्रकट करते हैं। हम लोग जहाँ जाते हैं, वहीं हमारे पैर रोमन हाथों से बनी हुई सड़कों पर रहते हैं। अपने साहित्य-क्षेत्र में, राजनीतिक तथा सामाजिक संस्थाओं में, अपने व्यापार, व्यवसाय और शिल्प की मशीनों में, अपने क़ानून और शासन-प्रणाली में, अपने नागरिक और जातीय जीवन में हम लोग उसी कलेवर में वास करते हैं, जो रोम ने हम लोगों के लिये प्रस्तुत किया था, और अपनी आवश्यकताओं तथा व्यवहार में हम लोग उसी में जहाँ-तहाँ कुछ परिवर्तन कर लेते हैं।"